लेखमाला की विषय-सूची

साहित्य

प्रारम्भिक शिक्षा

व्याकरण

मिश्रित

भूमिका

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन से हिन्दी-साहित्य को और उसके द्वारा समस्त देश को क्या लाभ हुआ है और होने की सम्भावना है इस प्रश्न का इस समय उत्तर देना बहुत कठिन है। इसका ठीक उत्तर कुछ समय पीछे दिया जा सकेगा। किन्तु इस बात में तो सभी सहमत होंगे कि सम्मेलन चाहे और जो कुछ काम करे उसके वार्षिक अधिवेशनों में आये हुए महत्त्व-पूर्ण लेखों का संग्रह ही हिन्दी-साहित्य के इतिहास में स्मरणीय रहेगा। वास्तव में प्रथम सम्मेलन के संचालकों ने यह बहुत बुद्धिमानी का काम किया कि उन्होंने हिन्दी-साहित्य के गौरवयुक्त विषयों पर जहाँ तक हो सका चुने हुए लेखकों से लेख मँगवाये और इस तरह से बहुत सी हिन्दी-साहित्य-सम्बन्धी सामग्री एक स्थान पर एकत्र कर दी, जो साधारण रीति से नहीं मिलती। द्वितीय सम्मेलन के कार्यकर्ताओं ने भी इस रीति को हिन्दी-साहित्य के एक अङ्ग की पूर्ति का अच्छा मार्ग समझ इसका अनुसरण किया और महत्त्व-पूर्ण विषयों पर लेख लिखवाने का प्रयत्न किया।

सम्मेलन की अवस्था अभी बहुत थोड़ी है और प्रायः हिन्दी-लेखकों की भी दशा सराहनीय नहीं है। अच्छे लेखक किसी भी भाषा में मारे मारे नहीं फिरते, कहीं भी लाल इतने नहीं होते कि वे थैलियों में भरे जावें। किन्तु हिन्दी-भाषा में थैलियों में भरना तो दूर रहा दीपक से देखने को भी कठिनता से मिलते हैं। तात्पर्य यह कि एक तो हिन्दी के सुलेखक ही बहुत कम हैं और जो हैं वे भी सम्मेलन के उद्देशों को न समझ या आलस्य के कारण समय से अपने अपने निर्वाचित विषयों पर लेख लिखने को तत्पर नहीं होते। इन्हीं कारणों से यह तो नहीं कहा जा सकता कि सम्मेलन में जो लेख आये हैं वे सबही उत्कृष्ट श्रेणी के हैं, किन्तु तो भी इसमें सन्देह नहीं कि कई लेख बहुत ही उत्तम हैं और कुल लेख-माला हिन्दी-लेखकों और हिन्दी के काम करनेवालों के पास सदा रखने योग्य है। लेखों के विषयों के हिसाब से इस प्रकार से विभाग करने का यत्न किया गया है जिसमें मिलते हुए विषयों के लेख एक स्थान पर आ जायँ। जो लेख एक श्रेणी में नहीं आ सकते थे वे मिश्रित की गणना में रक्खे गये हैं। लेख-माला का इस प्रकार विभाग किया गया है:—

१—कविता
२—खोज और इतिहास
३—सामयिक अवस्था
४—साहित्य
५—प्रारम्भिक शिक्षा
६—व्याकरण
७—मिश्रित

द्वितीय सम्मेलन के लिए जो लेख आरंभ में निर्वाचित किये गये थे वे एक विशेष प्रयोजन की ओर दृष्टि कर रक्खे गये थे, अर्थात् यह कि उनके द्वारा सम्मेलन के कार्य के लिए सामग्री एकत्रित हो। पीछे से कुछ सज्जनों ने अपने ही चुने हुए विषयों पर लेख भेजने की कृपा की। अस्तु, वे भी, यद्यपि वे सम्मेलन के चुने हुए विषयों की श्रेणी में नहीं आते थे, तौभी उपकारी जान कर रख दिये गये। इसमें सन्देह नहीं कि धीरे धीरे सम्मेलन को ऐसे लेख लिखवाने चाहिएँ जो स्वयं साहित्य के अंग हों और जो हिन्दी-साहित्य में चिरस्थायी होकर रहें। किन्तु सम्मेलन के लिए लेख-निर्वाचन में, मेरे विचार में, कुछ न कुछ

विशेष ध्यान सदा ही रखना पड़ेगा और रखना चाहिए।

सम्मेलन के लिए लेख-निर्वाचन की कसौटी केवल लेखक की योग्यता, विषय का गाम्भीर्य वा लेख की प्रौढ़ता वा सुन्दरता ही नहीं होनी चाहिए। बहुत से प्रतिभाशाली लेखक ऐसे ऐसे विषयों पर बहुत ही सुन्दर और सदा पढ़ने योग्य लेख लिखा करते हैं जो सम्मेलन के लेखों में उपयुक्त नहीं होंगे। यह अनुमान करना असङ्गत न होगा कि "मच्छड़ की आत्म कहानी" शीर्षक लेख ऐसा सुन्दर लिखा जा सकता है कि हिन्दी-साहित्य में चिरस्थायी होकर रहे और हिन्दी-भाषा के उत्तमोत्तम लेखों के साथ गिना जावे, किन्तु क्या ऐसा लेख केवल इस कारण से कि वह बहुत अच्छा है सम्मेलन के लेखों में स्थान पा सकता है? इसी प्रकार मान लीजिए कि किसी प्रतिभाशाली कवि ने "टर्की और इटली का युद्ध" शीर्षक अथवा "द्रौपदी-विलाप" पर वीर या करुणा-रस-पूर्ण प्रभावशाली कविता की, क्या ऐसी कविता अच्छी होने के कारण सम्मेलन के लेखों में आ सकेगी? अथवा किसी लेखक ने प्रकृति की किसी अनुपम छटा का बहुत मधुर और चित्तग्राहिणी कविता में सुन्दर चित्र खींचा अथवा मनुष्य के भाव-सम्बन्धी, ऐक्य, वीरता इत्यादि, विषयों पर शिक्षाप्रद लेख लिखा या कविता की—इसी प्रकार और भी बहुत से उदाहरण दिये जा सकते हैं—प्रश्न यह है कि क्या ये सब लेख सम्मेलन के लिए उपयुक्त होंगे? मेरे विचार में तो इसका उत्तर एक ही हो सकता है, अर्थात् नहीं। तात्पर्य यह कि सम्मेलन के लेख निर्वाचन के लिए कोई न कोई कसौटी अवश्य होनी चाहिए। स्पष्ट रीति से शब्दों में यह कहना कि कसौटी क्या है और किस प्रकार से लेखों के विषयों को परिमित करना चाहिए यह कुछ मुझे सहज काम नहीं जान पड़ता। प्रायः सभी विचारवान् हिन्दीप्रेमियों के चित्त में इस विषय का भाव अवश्य होगा, और यदि कोई लेख सामने आवे तो अधिकांश लेखों के सम्बन्ध में उन्हें इस बात के निर्णय करने में अधिक संकोच न होगा। किन्तु स्पष्ट शब्दों मे विषय की परिभाषा बाँधनी कठिन है। इसी का से परिभाषा बाँध कर तो नहीं, किन्तु केवल सं की रीति से मैं यह कह सकता हूँ कि यह कसै क्या होनी चाहिए। यों तो यह कहना यथेष्ट है कि सम्मेलन के लेख ऐसे होने चाहिए जिस सम्मेलन के कार्य्य और उनके उद्देश से सम्ब हो। किन्तु यहाँ पर कुछ सज्जन यह शंका उठा स हैं कि क्या सम्मेलन का उद्देश हिन्दी-साहित्य पूर्ति नहीं है और यदि है तो आप किस रीति से उ युक्त "मच्छड़ की आत्म-कहानी", "टर्की-इटली-युद्ध "ऐक्य", "वीरता", "द्रौपदी-विलाप" आदि ले को जो आपही की कल्पना के अनुसार हिन्द साहित्य के रत्न गिने जा सकते हैं, सम्मेलन के लेखो स्थान न देंगे? इसका उत्तर यह है कि अन्तिम उद्दे तो हिन्दी-साहित्य की वृद्धि ही है किन्तु उपस्थि उद्देश ऐसी सामग्री इकट्ठा करने और इस प्रकार स सहायता देने का है जो अलग अलग सम्भ नहीं क सकते। सम्मेलन एक समूह है और समूह के कर्तव्य प्रायः व्यक्तिगत कर्तव्यों से भिन्न होते हैं। जब व्यक्तियों का आपस में किसी विषय पर मतभेद है समूह उन मत-भेदों को निश्चित कर अपना विचा सबों पर माननीय बनावेगा अथवा जो कार्य अल व्यक्ति की शक्ति के बाहर है समूह उसको उठावेगा इस प्रकार सम्मेलन के उपस्थित कर्तव्य, यद्यपि हिन्दी-लेखकों के व्यक्तिगत कर्तव्यों में सहायता के लिये होंगे, तो भी उनसे भिन्न होंगे। जो लेख इन उद्देशों में सहायक हों वे सम्मेलन में आने चाहिएँ। उदाहरण की भाँति मेरे विचार में नागरी लिपि और हिन्दी-भाषा के सम्बन्ध के ऐतिहासिक लेख, हिन्दी लेखकों की समालोचनाएँ, भाषा की सामयिक दश या उसके रूप में परिवर्तन या लिपि या भाष के प्रचार या सुधारसम्बन्धी लेख इस श्रेणी में आवेंगे।

यदि इस कसौटी से देखा जाय तो प्रथम सम्मेलन के दो एक लेख और कवितायें और इस लेख-माला

में भी एक आध लेख सम्मेलन के उपयुक्त नहीं। परन्तु जैसा ऊपर कहा जा चुका है सम्मेलन का अभी प्रारंभ ही होने से लेखों के सम्बन्ध में कठिनाइयां होती हैं और लेख-निर्वाचन में भी बहुत कड़ाई नहीं की जा सकती, तो भी इस लेख-माला से स्पष्ट है कि इस कसौटी की ओर ध्यान रक्खा गया है।

कवितायें जितनी हैं वे सब सम्मेलन से सम्बन्ध रखती हैं। यह तो कहा ही नहीं जा सकता कि वे सब ही उत्तम हैं किन्तु उन सभों का उद्देश सम्मेलन के सम्बन्ध में हिन्दी-प्रेमियों को उत्तेजित करना है। पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी ने "संदेश" शीर्षक कविता में जो सम्मेलन-सम्बन्धी कुतर्कों और कलह-उत्पादक झगड़ों के सम्बन्ध में सम्मति दी है उस पर सब ही हिन्दी-प्रेमियों को विशेष ध्यान देना चाहिए।

इस लेख-माला में "खोज और इतिहास" और सामयिक अवस्था" इन दो श्रेणियों के लेख विशेष ध्यान हैं।

पं० गौरीशंकर हीराचन्द भारतवर्ष-सम्बन्धी प्राचीन बातों के प्रसिद्ध ज्ञाता और खोज करने वाले हैं। "खोज और इतिहास" की श्रेणी में नागरी अंकों के सम्बन्ध में उनका लेख विचार-पूर्ण और रोचक है। प्रथम सम्मेलन में ओझाजी ने जिस रीति से नागरी अक्षरों के आधुनिक रूप का उत्थान दिखाया था उसी प्रकार इस लेख में बहुत ही मनोहर रीति से यह दिखलाया है कि नागरी अंकों में समय समय पर किस प्रकार परिवर्तन हुआ है और उनका आधुनिक रूप किस प्रकार बना है। मुंशी देवीप्रसाद ने अपने राजपूताना में खोजसम्बन्धी लेख में उन हिन्दी की लिखी हुई पुस्तकों में से जिनका उन्हें पता लगा है ३३८ पुस्तकों का ब्यौरा दिया है। जहां तक मुझे मालूम है यह सूची पहले प्रकाशित नहीं हुई थी। मुंशी जी ने हिन्दी-प्रेमियों के सामने इसे उपस्थित कर हिन्दी का बड़ा ही उपकार किया है और हिन्दी के काम करने वालों को इस सूची से बहुत सहायता मिलेगी। क्या यह संभव नहीं कि इस सूची में से चुन चुन कर धीरे धीरे पुस्तकों के प्रकाशन का प्रबन्ध किया जाय? सैयद अमीरअली ने अपने हिन्दी और मुसलमान शीर्षक लेख में यह भली भांति दिखलाया है कि हिन्दी भाषा का प्राचीन काल से मुसलमान सम्राटों और लेखकों से सम्बन्ध रहा है। सैयद अमीर अली का हिन्दी भाषा से प्रेम उनके लेख के एक एक शब्द से टपकता है और अन्य मुसलमान सज्जनों को क्यों हिन्दी भाषा की ओर अधिक ध्यान देना चाहिए यह बहुत ही युक्तिपूर्वक सैयद अमीरअली ने दिखलाया है। आज कल के मुसलमान जिस रीति से हिन्दी के प्रति उदासीनता प्रकट करते हैं इस पर शोक प्रकट करते हुए सैयदजी ने सच्ची देशहितैषिता और दूरदर्शिता की दृष्टि से अपने सहृदय मित्रों को जो परामर्श दिया है वह सोने के अक्षरों में लिखने के योग्य है। सैयदजी के निम्नलिखित गम्भीर वाक्यों को हिन्दू और मुसलमानों को ध्यान से पढ़ना चाहिए:—

"हिन्दू-मुसलमानों में ऐक्य होना बिलकुल असम्भव नहीं, लेकिन धर्म की ऊपरी अन्धभक्ति तथा हठ दोनों दलों को मिलने नहीं देता, यह दीवार 'क़हक़हा' के समान तिलस्म रूप में मध्यस्थ है। सैकड़ों वर्ष व्यतीत होने पर भी हिन्दू-मुसलमानों को मानो महमूद गज़नवी, और मुसलमान हिन्दुओं को शिवाजी रूप में देख रहे हैं; नहीं कह सकते यह कहां की बुद्धिमानी है। सैक्सन जाति ने जर्मनी से जाकर इङ्गलैण्ड में अपना आधिपत्य जमा प्रेमभाव उत्पन्न कर लिया। बौद्धों ने भारत से जाकर तिब्बत, चीन और जापानादि देशों में अपना अस्तित्व सिद्ध कर दिखाया। डच लोगों ने ट्रांसवाल को अपना लिया। स्वयं भारतवर्ष के अनार्यों को आर्यों ने समीप बुला लिया। परन्तु आश्चर्य्य की बात है कि पढ़ी लिखी जाति (हिन्दू-मुसलमान की) अब तक पास रहते हुए पुरैन से पानी के समान पृथक् है। अगर हम लोग चाहें तो अपने अपने धर्म का पालन करते हुए राष्ट्र की भलाई के सम्बन्ध में एक दूसरे के सहायक तथा साथी बन सकते हैं। वर्त्तमान जापान जिसमें

हिन्दो, बौद्ध और ईसाई धर्मपालक प्रजा हैं, साक्षी-रूप वर्तमान हैं; हिन्दो से बौद्ध और दोनों से ईसाइयों की उत्पत्ति हुई, तो भी जन्मभूमि के नाते सब एक चित्त से काम करते हैं। हम भी एक ही हैं। यदि दुराभाव का पर्दा हट जावे तो दोनों का मङ्गल हो सकता है।"

इस दशा को सुधारने और देश के उत्थान करने का वही मार्ग है जो सैय्यदजी के निम्नलिखित वाक्यों से स्पष्ट हैः—

"हम लोग अरबी से फ़ारसी और फ़ारसी से उर्दू सीखने पर लाचार हुए थे। अब हिन्दी की तरफ़ भी झुकना हमारा काम है। विलायत जाकर ग्रेज्युएट होने पर भी घर की प्रारम्भिक शिक्षा और घर में बर्ते आनेवाले आचरण का असर लोगों में रहता ही है। इससे यदि राष्ट्रभाषा हम लोग हिन्दी मान लेंगे तो लाभ के सिवाय कुछ हानि नहीं। हमारा उर्दू साहित्य नष्ट नहीं हो सकता। जिस तरह हम लोगों में से अनेकों ने अँग्रेज़ी राजभाषा समझ कर सीखी है और उससे उर्दू को कुछ बट्टा नहीं लगा, उसी तरह हिन्दी को राष्ट्रभाषा मान लेना अच्छा है। वह हमें कुछ बाधा नहीं पहुँचा सकती, वरंच लाभ होगा। मुसलमानों का जो भाग उर्दू से वञ्चित है उसे हम लोग हिन्दी द्वारा अपने मन्तव्य बतला सकेंगे, और उसे बहकने से बचा सकेंगे, नहीं तो परिणाम यह होगा कि हिन्दी जाननेवाले मुसलमान धीरे धीरे अपने धर्म-सिद्धान्त से कोसों दूर हो जायेंगे।"

सैय्यद जी ने अपनी "आख़िरी अर्ज़" करते हुए जो हिन्दू और मुसलमान दोनों को उपदेश दिया है वह पालन में कार्य में परिणत करने के योग्य है। मैं उसे यहाँ उद्धृत करता हूँः -

"मुसलिम निज़ाम से हमें हिन्दी को अलग देनी ही होगी। यह उसका घर है, उसे हम कैसे दुरदुरा सकते हैं? जब हमारा निज़ाम प्रकाशमान् था तब इसी देश ने प्रजा-मन पर विजय न पाई थी। सम्राट् अकबर के ध्यान में यह बात आई थी। इसी से उसके समय में एतद्देशीय साहित्य की चर्चा उ[illegible] दर्बार में बड़े ज़ोर शोर से होती थी। इसीसे हि[illegible] मुसलमानों में विशेष मेल हो गया था। आज अँग्रे[illegible] रामराज्य के रहते, छापाख़ाना, रेल, तार और जह[illegible] आदि के होते हुए यदि हम लोग परस्पर में मिल [illegible] न रहें तो लज्जा की बात है। मिलकर रहना भाषा[illegible] बिना नहीं हो सकता। इससे मिलने के लिए [illegible] दोनों (हिन्दू-मुसलमानों) को थोड़ा थोड़ा अ[illegible] बढ़ना होगा, अर्थात् संस्कृत और फ़ारसी का मे[illegible] छोड़ हिन्दी और उर्दू का एक मिश्रित सुन्दर स[illegible] रूप बनाना होगा। समाचारपत्रों अथवा नावि[illegible] में उन शब्दों को भी लिखना हम लोगों को छ[illegible] देना पड़ेगा जो इतिहास लिखने के बहाने हम[illegible] तङ्गदिली या गन्दगी ज़ाहिर करते हों, क्योंकि दूर भा[illegible] नेवाले को गाली देकर हम पास नहीं बुला सकते[illegible]

सैय्यदजी ने अपने उपर्युक्त लेख में हिन्दी के प्र[illegible] मुसलमानों के जिस प्रेम का उल्लेख किया है वह मि[illegible] बन्धुओं के "हिन्दी के मुसलमान कवि" शीर्[illegible] लेख से और भी अच्छी तरह प्रकाशित होता है। ऐ[illegible] हासिक अंश में यह लेख सैय्यदजी के लेख से अधि[illegible] पूर्ण है और हिन्दी के इतिहास के सम्बन्ध में क[illegible] करने वालों के लिए बहुत सहायक होगा।

"गोरखपुर विभाग के कवि"-सम्बन्धी ले[illegible] पं० मन्नन द्विवेदी ने उस विभाग के कुछ क[illegible] का हाल दिया है। लेख रोचक है और ऐतिहा[illegible] दृष्टि से भी जो सामग्री उसमें दी गई है वह [illegible] काम की है।

इसी "खोज और इतिहास" शीर्षक भीतर बाबू श्यामसुन्दर दास का "चन्द्रबरदाई" लेख है। चन्द्रबरदाई का नाम हिन्दी-पाठक सुने अवश्य हैं किन्तु उनका तथा उनकी क[illegible] का विशेष ज्ञान बहुत ही थोड़े वरन केवल इने [illegible] लोगों को है। इस कारण बाबू श्यामसुन्दर दास ने चन्द्रबरदाई और उनके लिखित "रासो" संक्षिप्त किन्तु रोचक विवरण लिख हिन्दी जा[illegible] वालों का उपकार किया है। जिस समय यह [illegible]

कलंक के हिन्दी-प्रेमियों पर न आने देगा। साथही हिन्दी-प्रेमियों का भी धर्म है कि वे अपने कलंक मिटाने वाले "मिश्र" के सहायक हों। जिस प्रकार गुप्त जी का दैनिक-पत्र-सम्बन्धी प्रस्ताव एक वर्ष के भीतर ही पूरा हो गया है उसी प्रकार यदि हिन्दी-प्रेमी उन मन्तव्यों की पूर्ति की ओर भी। जिन्हें वे स्वयं पूरा कर सकते हैं, ध्यान दें तो सचमुच हिन्दी का और देश का शीघ्र ही उत्थान हो।

इस लेख-माला के निकालने में कई कारणों से बहुत विलम्ब हुआ। हिन्दी-प्रेमियों से निवेदन है कि वे कृपा कर मेरे अपराध को क्षमा करें।

सम्पादक।

मार्गशीर्ष, १९६९

कविता ।

सन्देश।

——:०:——

[लेखक—पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी]।

(१)

सुनिए सब सज्जन विद्वज्जन,
प्रिय-हिन्दी-भाषा-भाषी,
पूज्य, पवित्र, मातृभाषा की,
उन्नति के अति अभिलाषी।
प्रबल प्रेरणा से हिन्दी की
यहाँ आज मैं आया हूँ,
उसका ही सन्देश आपको
स्वल्प सुनाने लाया हूँ॥

(२)

हिन्दी के सेवक-समूह में
महा तुच्छ मुझको जाना,
इससे यह सन्देश भेजने
योग्य मुझी को अनुमाना।
आप बड़े हैं, बड़े काम सब
कर, साधें उसका परमार्थ,
मैं सन्देश-वहन करके ही
हो जाऊँगा आज कृतार्थ॥

(३)

छोटे हों या बड़े, काम जो
करके कुछ दिखलाते हैं,
यहाँ लोग अपने स्वामी के
सन्देशक कहलाते हैं।
यही सोच, सङ्कोच छोड़ कर,
माना मैंने यह आदेश,
अब मेरे मिषरूप आप से
सुनिए हिन्दी का सन्देश॥

(४)

अर्थ यथार्थ मातृभाषा का
यदि तुम सचले जाना है;
मेरे अन्तर्गत भावों को
यदि तुमने पहचाना है।
तो तुम निःसन्देह करोगे
मुझसे सुत समान व्यवहार,
मेरी सकल आपदाओं का
होगा भी अवश्य संहार॥

(५)

इस अह-अहम जग में सब के
दिन न एक से जाते हैं;
दुःख भोगने पर निश्चय ही
सुख के दिन भी आते हैं।
माता के सुख-दुःख किन्तु सब
होते सन्तति के आधीन,
चाहे भिखारिनी वह कर दे,
चाहे सिंहासन आसीन॥

(६)

दो तो मुझे सहायता तुम
करुणा की इस दिन में देकर,
मेरा हाल न मुँह पर लाओ,
[illegible]।
या मेरी दुर्दशा देख कर
कुछ तो मन में शरमाओ
जो कहती हूँ उसे करो तुम,
अब भी मुझको अपनाओ॥

(१४)

कितना कष्ट तुम्हें मिलता है
उँगली जो कट जाती है;
मेरा तो सब अङ्ग गलित है;
पीड़ा प्रबल सताती है।
ऐसे में भी जो इलाज का
अवसर ढूंढ़ोगे प्यारे,
तो मैं यही कहूंगी, मेरे
सुत न शत्रु हो तुम सारे॥

(१५)

वाणी की पूजा करते हो;
क्या मैं उसका अंश नहीं?
मृतवत् मुझे पड़ी रखने में
क्या स्वधर्म्म विध्वंस नहीं?
फिर क्यों तुम सम्मिलन-कार्य्य में
पखें अनेक लगाते हो?
अत्याचार घोर मुझ पर कर
बातें व्यर्थ बनाते हो॥

(१६)

आर्त्त जनों के परित्राण से
धर्म्म किस तरह जाता है?
क्या कर्त्तव्य-विमुख होना ही
परम धर्म्म कहलाता है?
भरत-भूमि के धर्म्मज्ञों का
यदि ऐसा ही धर्म्म-ज्ञान—
व्याकुल, व्यथित जनों की तो फिर
क्या गति होगी हे भगवान्!

(१७)

यदि तुम कहो शीघ्रता क्या है?
क्यों इतना घबराती हो?
क्यों कातरतापूर्ण कण्ठ से
इतना शोर मचाती हो?
तो मैं अपनी करुण-कथा का
तुम्हें सुना देती हूं सार;
सम्भव है उससे हो आवे
तुममें दया-दृष्टि-सञ्चार॥

(१८)

जब देखती और बहनों को
किये हुए सुन्दर शृङ्गार,
बहु वैभव-मद से मतवाली,
मृदु मुसकाती, सालङ्कार।
तब जो गति मेरी होती है,
कुछ मत पूछो उसका हाल;
फटती यदि पृथ्वी प्रयाग की,
मैं जाती तुरन्त पाताल॥

(१९)

कई करोड़ बोलनेवाले
हैं मेरे भारतवासी;
हतभागिनी हाय तिस पर भी
मरती मैं भूखी प्यासी!
जो सुदृष्टि इन नर-रत्नों की
मेरी ओर न जाती है;
विश्वम्भर! तो क्या तुम को भी
मुझ पर दया न आती है?

(२०)

दुःख-दारिद्र भोग करने से
अच्छा ही मर जाना है—
कवि के इस कठोर कहने को
मैंने तो सच माना है।
जीती हूं, परन्तु, आशा-वश,
बड़े कष्ट से किसी प्रकार;
नहीं तरस तुमको आता है
क्या कुछ भी हे प्राणाधार!

(२१)

यद्यपि तुम विरक्त हो मुझ से,
नहीं फटकने देते पास;
मैं तुम से अनुरक्त पूर्ववत्,
मुझे तुम्हारी ही है आस।
ऐसी निःसहाय अबला को
यदि तुम और सताओगे,
न्यायी नारायण को अपना
मुंह कैसे दिखलाओगे॥

(२२)

जो मेरे प्रेमी, जो मेरी
कभी कभी कर लेते याद।
मत हो भ्रमवश ये मन में
उनसे मेरा नहीं विवाद।
अपनी छोड़ पराई भाषा
में आता है जिनको स्वाद।
उन्हीं कुशिक्षा-कर्कश हृदयों के
सत्पुरुषों से है फ़रियाद॥

(२३)

या उनसे जो मेरे दुःख को
कर सकते हैं कुछ कुछ दूर,
पर जो कर तक नहीं हिलाते,
रहते हैं आलस में चूर।
अथवा उनका दोष नहीं कुछ,
यह मेरा ही पापाचार;
ऐसे भी जिसके सपूत हों
उस माता ही को धिक्कार!

(२४)

तुममें किसी किसी पर व्यापी
जिस भाषा की माया है,
सच कहना किस किस ने उससे
कितना लाभ उठाया है।
उस दिन अभी मधुर मोदक कुछ
पूना से जो आये थे,
कैसे थे वे! मीठे थे क्या!
किस किस ने ले खाये थे!

(२५)

घोर घृणा तुम से जो करती,
पास उसी के जाते हो!
मृत सुन कर भी नाम न लेती,
उसको सदा सजाते हो।
खाते नहीं होते हो, यद्यपि
होता है इतना अपमान,
आत्म-मान का इससे बढ़ कर
हो सकता क्या और प्रमाण?

(२६)

हिन्दू हो कर भी हिन्दी में
यदि कुछ भी न भक्ति का लेश,
दूर देश की भाषाओं से
यदि इतना है प्रेम विशेष।
इंग्लिस्तान, रूस, फ़्रांस को
तो अब तुम कर दो प्रस्थान,
यहाँ तुम्हारा काम नहीं कुछ,
छोड़ो मेरा हिन्दुस्तान॥

(२७)

विश्व देव-वाणी की दुहिता
मैं हूँ यह हिन्दी प्राचीन,
तुलसी, सूर, बिहारी आदिक
रहे भक्ति में जिसकी लीन।
परित्याग उसका ही करके
बनते हो विद्याधारी;
ऐसी अद्भुत गुणज्ञता की
बलिहारी है बलिहारी!

(२८)

कहते हो—मुझमें है ही क्या!
मुझसे कुछ न निकलता काम!
मेरे घावों पर नश्तर सा
चलता है सुन यह इलज़ाम।
इसका दोष तुम्हारे ही सिर,
फिर यह कैसी उलटी बात!
जिसे जानती दुनिया सारी,
वह भी क्या तुमसे अज्ञात?

उन्हें देख कर भी स्वदेश-हित
होते नहीं सशक्त, क्या बात !
करो न अपने ही पैरों पर
सदा कठोर कुठाराघात ॥

(३७)

साहस नहीं, आत्मबल नहीं है,
जिसका मुझे न आता है—
वह युग मेरा कठिन कलेजा
भी टुकड़े हो जाता है ।
विकट विदेशी की भाषायें
विलासिताओं के उपहार !
सब तज और बहाने देकर
किया करो युग के सुविचार ॥

(३८)

इस सम्मेलन की महत्ता
करना काम तुम्हारा है,
जो मैं मैं कहती हूँ, इसमें
तुमको बड़ा सहारा है ।
यहाँ उपस्थित सब मिल सोचो
कोई ऐसा शुभ उपाय,
जिससे मिले मुझे भी थोड़ा
गुणतापूर्ण ग्रन्थ-समुदाय ॥

(३९)

इसकी त्रुटियाँ अपनी समझो,
दोषों को अपने ही दोष,
भाई को अपने भाई पर
करना नहीं चाहिए रोष ।

यदि कुछ भी गौरव रखते हो,
यदि कुछ भी है मुझ में प्रेम,
[illegible] क्यों नहीं
कर देते हो मेरा क्षेम !

(४०)

सारे भारत में व्यापकता
मेरी ही है यद्यपि विशेष,
किन्तु सदन मन्दिर मुझको है
अब भी प्राप्त नहीं प्रवेश ।
निर्दयता, निष्ठुरता तज कर,
हो जाओ कुछ अधिक उदार,
दया द्रवित हो कर सत्वर ही
करदो अब मेरा उद्धार ॥

(४१)

विकल, कातर, आतुर को होता
नहीं उचित अनुचित का ज्ञान,
यदि कटु वचन कहे हों कोई
क्षमा करो हे दयानिधान !
अधिक क्या कहूँ मैं अब तुमसे,
मेरी लाज तुम्हारे हाथ,
चाहे और झुका दो, चाहे
ऊँचा कर दो मेरा माथ ॥

(४२)

हे गोविन्द कृपा के सागर
नारायण अन्तर्यामी !
शरणागतवत्सल तुमसे है
छिपा नहीं कुछ हे स्वामी !
सुमति और सद्बुद्धि दीजिए
सबको करुणा के आगार !
जिसमें इस अभागिनी का भी
हो जावे अब बेड़ा पार ॥

जिसके जिन जिन मंत्र पुस्तिक
रोम मन लाता नहीं ॥

इसके ऐसा झगड़े में भी
काम अग्रज का किया।

"अब भी भाषा के हितैषी
हैं" इसे दिखला दिया॥

एक भाषा के हितैषी
ने भी नाम नहीं लिया।

नागरी के नाम के हित
छः हज़ार चुका दिया॥*

ऐसे भाषा-प्रेमियों का
रामचन्द्र भला करें।

काम दोनों लोक के
उनके सहर्ष चला करें॥

और ऐसे सुजन दिन दिन
भारतीय सदा करें।

जिनका यश संसार भर
सादर सदैव पढ़ा करें॥

यों ही भाषा-प्रेमियों के
यत्न होते जायँगे।

तो समुन्नति-पंथ सभी
हित शीघ्रही हम पायँगे॥

यत्न करने से निरन्तर
युद्धियल सुविचार से।

कार्यसिद्धि अवश्य होती
है सदा संसार में॥

राज काज समाज के सब
काम हिन्दी में करें।

सब शुभगुण सम्पन्न हों
इनको भावी हित यह मिलें॥

भीतरी मैं भेजता हूं
विनय जो कुछ हो सका।

स्खलन भाषा जो हुई
सो कीजिये त्रुटि की क्षमा॥

अधिक भी समयानुसार मैंने
की भी जो अभ्यर्थना।

फिर उसे भी देखने को
आपसे है प्रार्थना॥

जो कि कहना था मुझे
गद्यपद्य मैंने सब कहा।

शुद्धि-विषयक शब्द के कुछ
पाठ्य के बाकी रहा॥

पूर्व पर्व-समान मैं
संक्षिप्त कुछ लिख देता हूं।

दुर्गा पूजा के लिए
फिर और अवसर लेता हूं॥

(अशुद्ध शब्द, वाक्य विन्यास-निदर्शन)

"हम हमारे घर चले
जायँगे तब लिखना हमें

तुम तुमारा पत्र, देखो
भूल मत जाना हमें॥

मेरे घर से भेजूंगा मैं
दूत भी मेरा यहाँ।

आप लिखिये आप का
वृत्तान्त सब पूरा यहाँ॥

ऊपरोक्त न भूलना पर
प्रश्न यह उठता है अब।

आपके घर आप जायँगे
कि पहले मैं ही तब?

*प्रथम हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन में यह कहा गया था कि एक सज्जन ने नागरी-प्रचारिणी सभा के ६०००) रुपये के ऋण को चुका देने की प्रतिज्ञा की है। यहां उसी की ओर संकेत जान पड़ता है परन्तु कदाचित् लेखक को यह मालूम नहीं कि वह ऋण अभी तक चुकाया नहीं गया—
सम्पादक

कर दया-विस्तार यों
सुउपाय अवलम्बन करें।
यह सुअवसर हाथ से मत
जाय ऐसा प्रण करें॥

काम धाये सम्भरण कर
ठीक उन्नति पथ चलो।
करो आन्दोलन यहीं
आरम्भ मत इससे टलो॥

स्यात् हम्लातेर इस मन
पर अगर तुम करोगे।
तो जगत में तुम अवनति
नर्क ऐसा भरोगे॥"

और जो कुछ आप शुभ
प्रस्ताव करते हैं यहाँ।
मान्य है सब निर्विवाद
विचार कर सुभक्त यहाँ॥

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

[लेखक—मैथिलीशरण गुप्त]

(१)

होते हैं सम्मिलित कहीं जब भाई भाई,
होता है वह समय, कहो, कितना सुखदाई ?
अहो भाग्य ! वह समय आज हमने पाया है;
यह शुभ दिन फिर एक वर्ष पीछे आया है।
क्या कुछ कुछ भिन्नाचार से
भ्रातृ-भाव मिटता कभी।
हम जब कि एकदेशीय हैं
भाई भाई हैं सभी॥

(२)

नहीं एक देशीय एक भाषा-भाषी भी,
एक हृदय से एक विषय के अभिलाषी भी;
दूर दूर से आज यहाँ एकत्र हुए हम;
हो सकता बन्धुत्व और क्या इससे उत्तम ?
हाँ एक-व्यक्ति-गत ही नहीं
काम एक भी आज का।
हित अवलम्बित है एक सा
यहाँ समस्त समाज का॥

(३)

कैसे कैसे भाव आज उठ रहे यहाँ हैं ?
क्या ही प्रेमालाप हो रहे जहाँ तहाँ हैं।
"एक वर्ष हो गया, रहे कैसे क्या करते ?"
इसी तरह के प्रश्न यहाँ सब ओर विचरते।
हैं थोड़ा जो कुछ आज हम
नवोत्साह मन में धरें।
निज लाभालाभ विचार कर
भावी का निश्चय करें॥

(४)

ज्ञानालोक विशेष बढ़ेगा जिसके द्वारा,
उन्नति के सिर देश चढ़ेगा जिसके द्वारा,
बन कर विज्ञ, असंख्य अशिक्षित बन्धु ह[illegible]
जिसके द्वारा प्राप्त करेंगे सद्गुण सारे।
उस हिन्दी की हित-कामना
हमको लाई है यहाँ।
इस सम्मेलन की सिद्धि पर
विपुल बधाई है यहाँ॥

(५)

हिन्दी क्या है ? सुनो मातृ-भाषा है अपनी
उन्नति की अत्यन्त अटल आशा है अपनी
यदि माता जग बीच जन्मदात्री है अपनी,
तो हिन्दी वात्सल्यमयी धात्री है अपनी।
बस इसके द्वारा ही प्रकट
होता मनोविचार है;
कम नहीं मातृ-ऋण से कभी
इसके ऋण का भार है॥

(६)

अब बहु-भाषाभिज्ञ भले ही हम कहलावें;
पर वह शैशव-समय कभी हम भूल न जा[illegible]
जब अम्बा-पद-निकट पहुँच घुटनों से चल[illegible]
कहते थे—"माँ, दूध"—तोतले वचन मचल[illegible]
तब "मिल्क" शब्द आकर हमें
दूध दिलाता था नहीं;
होती न मातृ-भाषा कहीं
हम भूखों मरते वहीं॥

(७)

हिन्दी को केवल न मातृ-भाषा ही मानो,
व्यापकता में उसे देश-भाषा भी जानो।
होगी मन की बात परस्पर ज्ञात न जौलों,
होकर भी हम एक भिन्न ही से हैं तौलों।

बस हिन्दी ही यह भिन्नता
दिन दिन करती दूर है;
निःशेष शक्तिमय ऐक्य को
भरती यह भरपूर है।

(८)

जिस हिन्दी की प्रकट हो रही गुरुता ऐसी,
सोचो तो साहित्य-दशा उसकी है कैसी?
बड़ा दुःख है हाय! उधर सन्तोष नहीं है,
पर क्या इसके लिए हमीं पर दोष नहीं है?

बहु पुत्रों के होते हुए
माता की सेवा न हो;
तो होगा उसका दोष क्या
माता के ऊपर अहो!

(९)

जो हिन्दी-साहित्य समुन्नत कर सकते हैं;
निज भाषा-भण्डार भली विध भर सकते हैं;
अब तक उनका इधर यथोचित ध्यान नहीं है;
अन्य जनों में शक्ति और वह ज्ञान नहीं है॥

हैं हममें कितने योग्य जन
उनको गिनिए तो सही,
जो ऐसा पहले था हमें
प्रायः अब भी है वही!

(१०)

सच कहते भी हाय! दुःख होता है दूना:
हिन्दी का साहित्य-सदन अब भी है सूना।
इस पर भी इस बीस ग्रन्थ-वाटिका-मालिनी,
कहला सकती कौन जाति साहित्य-शालिनी?

जिस हिन्दी को अब राष्ट्र
की भाषा मान रहे सभी,
क्या उसका स्वल्पोत्थान
भी सन्तोषप्रद है कभी?

(११)

हैं प्रान्तिक बोलियाँ मराठी, बँगला, फिर भी,
हिन्दी उनके निकट उठा सकती क्या सिर भी
जो उर्दू बदनाम आशिक़ाना नालों से
रखती है साहित्य गर्व हिन्दीवालों से!

जो सबसे उन्नत चाहिए
है सब से अवनत वही:
क्या अब हममें पुरुषत्व की
शेष न कुछ मात्रा रही?

(१२)

हिन्दी के जो लोग सुलेखक कहलाते हैं:
प्रायः वे सब भिन्न भिन्न मत फैलाते हैं:
मत-विभिन्नता बुरी नहीं, वह खोज कराती,
पर हममें यह पक्षपात के पीछे आती।

यदि रखता एक विभक्त है
प्रत्यय और विभक्ति को:
तो उन्हें मिलाकर दूसरा
दिखलाता निज शक्ति को॥

(१३)

स्वर्ण पाद के लिए कौन है अपना मानी?
कह दे कोई एक बात फिर हमसे ज्ञानी:
एक ओर से सभी पत्र करके हम डालें।
खींच खाँच कर हाथ बाल की खाल निकालें।

हम दौड़ पड़ें दल बाँधकर,
वाग्बाणों की वृष्टि हो:
सौजन्यनाश को मान हो,
पद्धतियों की सृष्टि हो!

(१४)

नये नये बहु पत्र यदपि हैं नित्य निकलते ;
पर उनमें से अधिक चार ही दिन हैं चलते ।
इसका कारण नहीं पाठकों का अभाव ही ;
वे समाज पर डाल नहीं सकते प्रभाव ही ।

कुछ इधर उधर से नक़ल कर
काम चलाना और है ;
पर भावों पर अधिकार कर
आदर पाना और है ॥

(१५)

इने गिने ही पत्र हमारे ऐसे होंगे;
औरों के सम्मान्य सैकड़ों जैसे होंगे ।
सच तो यह है कि जो सुमन जैसे सुरभित हैं,
बस वसे ही मधप विमोहित उनके हित हैं ।

सो पत्रों से भी हो सका
समुचित लाभ नहीं अभी;
पर हाँ, विज्ञापन-वीर
वे बन बैठे प्रायः सभी ॥

(१६)

ग्रन्थकार अधिकांश हमारे अनुवादक हैं,
बहुतों के निज भाव मद्य से भी मादक हैं ।
उपन्यास जो यहाँ प्रकाशित होते इतने,
हैं उनमें से कहो, सुरुचि-सम्पादक कितने ?

मुझको जो चाहें दण्ड द
किसी पात्र के व्याज से;
पर उपन्यास-कर्ता न यों
बेसुध रहें समाज से ॥

(१७)

कविता का भी यही हाल हो रहा यहाँ है;
तुकबन्दी ही निरी दीखती जहाँ तहाँ है ।
प्रतिभाशील मनुष्य इधर कुछ दया दिखाते
तो मुझसे मतिमन्द मनुज क्यों कवि कहलाते ?

कर्तव्य-कर्म में योग्य जन
उदासीन रहते जहां,
है प्रायः ऐसी ही दशा
दिखलाई पड़ती वहाँ ॥

(१८)

सच्चे और सुयोग्य समालोचक भी कम हैं;
पक्षपात है जहाँ वहाँ क्या न्याय नियम है ?
ज़रा देखिये, समालोचना की विचित्रता,
यही निभाती यहाँ शत्रुता और मित्रता !

जिन बातों को निज लेख में
हैं वे भूषण जानते;
उनको औरों के लेख में
वे ही दूषण मानते !

(१९)

कहीं काम का समय कलह अपना खोता है;
कहीं वही प्राचीन पिष्टपेषण होता है !
कहीं अर्थ के चोर महाजन बने अकड़ते;
कहीं सुवर्ण-समूह देखकर डाके पड़ते ।

हम, जिनके ऐसे काम हैं,
बीड़ा लिये सुधार का !
क्या हमें प्रचार अभीष्ट है,
ऐसे ही आचार का ?

(२०)

करके बस प्रस्ताव चैन से हम सोते हैं,
पर विचार से काम कहीं पूरे होते हैं ?
हम लोगों ने एक अनोखा स्वाँग रचा है;
हिन्दी में इन दिनों अजब अन्धेर मचा है ।

पर अब भी मिल कर हम सभी
काम करें जो प्रेम से,
तो हिन्दी निज पद शीघ्र ही
पावे कुशल क्षेम से ।

(२१)

न्दी का साहित्य न पूरा होगा जौलों;
ओंन्नति का द्वार खुलेगा कभी न तौलों।
भी हमारे लिए बहुत से विषय नये हैं।
न्दी में सद्ग्रन्थ न जिन पर लिखे गये हैं।
है समय आज विज्ञान का
होती खोज नई नई;
पर हिन्दी में इस विषय की
कितनी चर्चा की गई?

(२२)

किसी जाति की ठीक दशा साहित्य बताता;
चित उसका चरित उसीमें होता जाता।
दपि नहीं हैं आज हमारे पूर्वज प्यारे;
र संस्कृत-साहित्य भाव है उनका धारे॥
यह नष्ट हुआ बहु बार,
पर है अब भी अतुलित घना।
सोचो तो प्यारे भाइयो!
उसका यह उन्नतपना॥

(२३)

ऐसा भी शुभ समय कभी हम देख सकेंगे
जब हिन्दी साहित्य समुन्नत लेख सकेंगे।
आओ! इसके लिए करें हम यत्न हृदय से,
डरें न हरगिज़ कभी कोटि विघ्नों के भय से॥
रुक सकता आवश्यक गमन
कांटों के डर से कहीं?
करना चाहें तो विश्व में
हम क्या कर सकते नहीं?

(२४)

इस प्रबन्ध में स्वयं मुझे कटुता का भय है,
क्षमा कीजिए उसे अन्त में यही विनय है।
गुण न देखकर मनुज प्रथम निज दोष विचारे,
दोष-निदर्शन किन्तु क्यों न कुछ कटुता धारे?
जो हो अब हम सब सजग हो
हिन्दी-हित साधन करें।
विश्वेश्वर बल देकर हमें
सकल विघ्न-बाधा हरें॥

द्वितीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन।

—:०:—

[लेखक—पण्डित सत्यनारायण शर्मा]।

श्री गङ्गाधर प्रेममूर्ति जन-
मङ्गल ललितललामा।
विगत छद्म सुरासम सकल विधि
तव पदपद्म प्रनामा॥

जनमनरञ्जन खलदलगञ्जन
भञ्जनहित भूभारा।
पुनि वन्दौं भारतभुवि जहँ प्रभु
स्वयं लियो अवतारा॥

श्रीपति-जन्म-स्थान शान्तिमय
वेद वितान पुराना।
गुन मण्डित पण्डित रत्ननि को
जासो कोश महाना॥

नसौ यदपि जो नासवान छिन-
भङ्गुर जिह प्रभुताई।
तदपि विमल विलसति जाके हिय
प्रणव वेद निपुनाई॥

अटल भारती प्रभा प्रभाकर
जा भुवि परम प्रकासा।
का आश्चर्य तहां बुधवर मन-
पंकज करहि विकासा?

ज्ञानवान् साहित्य-तत्वविद
सुभग सरल हिय सुन्दर।
क्यों न होहिं तहँ भारतेन्दु सम
पूरण प्रेम-धुरन्धर॥

जिन कीरति की चारु चन्द्रिका
भुवनन कों नित भावे।
जनु हिन्दी-साहित्य रसिक-उर-
उदधि उमङ्गन आवै॥

या साहित्य-सरोज मधुर मधु
चाखन कों ललचाये।
अलबेले अलिवृन्द यहाँ छिति
सों मानौं घिरि आये॥

सरस प्रेमघन स्वाति बूँद के
पीवन कों मतवारे।
'हिन्दी' 'हिन्दी' रटत सबै ये
सज्जन यहाँ पधारे॥

जननी जन्म-भूमि भाषा के
जे अविचल अनुरागी।
तिन दरसन लहि चरन परसि हम-
हूं अतिशय बड़भागी॥

बड़े भाग सों आज जुरयो यह
सम्मेलन मन-भावन।
समयोचित सुप्रयागराज में
पुण्य-हृदय पुलकावन॥

वृद्ध नागरी-भक्त-भक्ति की
लता लहलही प्यारी।
जाकर जनु यह स्वच्छ पुष्प है
सरस सुलभ उपकारी॥

अथवा हिन्दी दुःख दलन कों
बालकृष्ण को रूपा ।
मञ्जुल मधुर मनोमोहन अति
सोहन नवल स्वरूपा ॥

हिन्दी हिन्दू हृदय भाव के
ऐक्य रसहिं बरसावन ।
मुरझाई साहित्य बेलि हित
यह धाराधर पावन ॥

जाके दरसन को हमरो मन
सदा रहत अनुरागत ।
अस नित नव साहित्य देह धर
करत तिहारो स्वागत ॥

हे गोविन्द ! प्रेमघन ! याकी
सब विधि रक्षा कीजौ ।
सुधा सलिल सरिसाय सुहावन
सत्य याहि सुख दीजौ ॥

देशवासियों की सद्‌गति के
कारण यह सम्मेलन है॥
प्रेम एकता सौख्य सुमति के
कारण यह सम्मेलन है।
एक देश भाषा स्वीकृति के
कारण यह सम्मेलन है॥

विविधि-भाव-भाषा-जल-पूरित
प्रेम-प्रवाह सहित सुख-मूल।
करते हुए अतिक्रम लघुता—,
पक्षपात ईर्षा के कूल॥

उत्तर मध्यम दक्षिण तीनों
भारत के प्राकृतिक विभाग।
मिलें त्रिवेणी तुल्य बनाकर
सम्मेलन के तीर्थ प्रयाग॥

भिन्न भिन्न भाषा-नद लेकर
हिन्दी-रूप महाधारा।
बहती हुई सरस कर देवे
जीवन मृत भारत सारा॥

पा नव-जीवन उर्वरतामय
पुण्य-भूमि यह फिर होवे।
शुचि साहित्य-रूप कृषि अवनति
आर्ति दीनता को खोवे॥

हो उन्नत साहित्य, मिले निज
गत-गौरव फिर से आकर।
भारत अपना दुःख विसरावे
पुनः पूर्व गुरुता पाकर॥

क्योंकि एक दिन यही देश था
भूमण्डल भर का सिरताज।
हा! अभाग्यवश पतित हुआ यह
कुटिल काल के क्रम से आज॥

कैसा था यह देश हमारा
विद्यामय सब कला प्रवीन।
किन्तु समय ने मारदीन कर
इसे किया बल-बुद्धि-विहीन॥

यह उन्नत साहित्य हमारा,
यह संस्कृत भाषा विख्यात।
लुप्तप्राय हो रही, हमारे
भाग्य-दोष से अब तो भ्रात

बोल नहीं सकते अब, कोई
भाषा मिल कर हिन्दूलोग।
सात समुद्र पार की भाषा
हम करते घर में उपयोग!

भाषा विषयक घोर दीनता
आर्य-भूमि में छाई आज।
हाय! राष्ट्र-रसना विहीन
हो गये हमारे भाई आज!

भाषा बिना महत्व प्राप्त कर
सकती कभी न कोई जाति।
देशोन्नति का मूल, प्रौढ़-
साहित्य सदा होता सब भाँति

अब है समय, मोह निद्रा हम
तजकर अपना करें सुधार।
अपनी माता मातृ-भूमि को
करें विपद से हम उद्धार॥

माता के उपकार स्नेह शुचि
आत्मत्याग हैं अपरम्पार।
उसके ऋण से कौन, कहो
हे भाई! पा सकता उद्धार!

उसी भाँति है मातृ-भूमि की
महिमा अतुल असीम अनूप।
स्वर्गधाम से भी बढ़ कर है
जिसका शान्ति सौख्यमयरूप

माता है निःस्वार्थ का, मूर्तिमन्त अवतार।
कृतघ्नता है घोर अति, देना उसे बिसार॥

माता के सम देव जगत में और न कोई।
मातृ-भूमि सम सुखद जगत में ठौर न कोई।
मातृ-भूमि है प्राण, प्राण है माता प्यारी।
प्राणहीन हम हुए जहाँ ये गई बिसारी॥
इसीने हो दश मास गर्भ में हमको धारे।
त्यागे भोजन शयन जिन्होंने निज सुख सारे।

से कञ्चनमयी हुई मिट्टी की काया।
नम्र जो भूल जाय उस मा की माया॥
वायु जल दुग्ध मुग्ध मन जिसके करते।
शोक सन्ताप जहाँ के रज-कण हरते॥
जिसका शुचि नाम जाति की विभव भूमिका
है वह जिसको न ध्यान उस मातृ-भूमि का॥
भूमि से भिन्न नहीं हो सकती माता।
अर्थ के तुल्य परस्पर का है नाता॥
यदि तुम एक हुई दोनों की पूजा।
नी से न स्वदेश कभी हो सकता दूजा॥
ा का अति दिव्य दान भाषा है भाई।
सके बल से मिली हमें जग में प्रभुताई॥
ा का सम्मान मान है माता ही का।
ा का अपमान कुटिलता का है टीका॥
प्राणी में श्रेष्ठ ज्येष्ठ सुतवर विज्ञानी।
क मुक्ति के पात्र, सृष्टि के नायक मानी॥
हुए हैं बन्धु आज जो हम मदमाते।
ा बिना कदापि कहो क्या यह पद पाते?
कार्यों के मूल हृदय के भाव हमारे।
व प्रकाशाधीन कर्मफल होते सारे॥
व-प्रकाशन-द्वार जगत में भाषा ही है।
हिमा अपरम्पार जगत में भाषा की है॥
पा के आधीन हमारे सर्व कार्य हैं।
ना सुभाषा नित्य हुआ करते अकार्य हैं॥
से से भी अत्यधिक सुभाषा का प्रभाव है।
स पदार्थ का कहो सुवाणी को अभाव है॥
हित्यों की जगत बीच जननी है भाषा।
उन्नत-साहित्य देश-उन्नति की आशा॥
साहित्य प्रधान शक्ति मानव उन्नति की।
वह दुर्लभ खान जाति के सुख सम्पति की॥
ण है साहित्य देश के विद्या बल का।
ति नीति विज्ञान ज्ञान कृषि कलकौशल का॥

अचल मानसिक शक्ति-रूप साहित्य नित्य है।
जिससे होता दृष्ट पुरातन काल कृत्य है॥
धर्म, कर्म, आचार, बुद्धि-बल, विभव बड़ाई।
है उन्नत साहित्य-कोष इन सब का भाई॥
वेश, भाव, स्वातन्त्र्य, साधुता, उच्च व्यवस्था।
उन्नति-यतन-विधान, दुर्दशा, दीन-अवस्था॥
प्रेम, प्रीति, विद्वेष, नीति कौशल-नृप-समता।
प्रकटाता साहित्य विविध देशों की क्षमता॥
विविध कार्य जो हुए सहस्रों वर्ष पूर्व थे।
जिनके नायक-निकर सभ्यता में अपूर्व थे॥
जिनके विमल चरित्र चित्र समुदय विचित्र है।
इन सब का साहित्य अकेला मानचित्र है॥

अतएव हे प्रिय बन्धुगण!
अब ध्यान इस पर दीजिये।
सब एकमत हो एक भाषा
हिन्द भर में कीजिये॥
साहित्य के प्रत्यङ्ग की कर
पुष्टि साधन प्रेम से।
संसार यात्रा पूर्ण अपनी
कीजिये अति क्षेम से॥

व्यापक भाषा है न यहाँ हिन्दी भाषा सी,
सरस सुबोध सुपाठ्य सरल शुचि सद्गुण राशि
अल्प कष्ट से साध्य अल्प समयागम युक्ता,
मुक्ता सम निर्भ्रान्त नागरी लिपि संयुक्ता॥
अब तज कर वैर विरोध सब हिन्दी को अपनाइये
कर इसको भाषा राष्ट्र की सिद्धि सकल नित पाइये
हिन्दी का साहित्य समुन्नत सब प्रकार हो
उन्नत भाव विचार युक्तगत सब विकार हो।
रीति नीति विज्ञान ज्ञान उपदेश सार हो।
राष्ट्र अभ्युदय मूल मन्त्र शिक्षा प्रसार हो।
हिन्दी का हिन्दुस्थान में घर घर पुण्य प्रचार हो
इस आर्यावर्त पुनीत का शुभमय जय जय कार हो

राष्ट्र-भाषा।

——:o:——

[लेखक—श्रीयुत गोविन्ददास, जबलपुर]

——:o:——

(१)

काव्यकुंज के सुमन सौरभित
भारत कुल उजियारे हो।
प्रिय सज्जन ! तुम कीर्ति गगन के
परम समुज्ज्वल तारे हो।
महा महिम मृदु सुजन माल के
माणिक अति अनियारे हो।
मंगलमूल मातृभाषा के
पुत्र प्राण सम प्यारे हो॥

(२)

जन्म भूमि अनुराग प्रपूरित
हृदय सुकोमल पाये हो।
स्वार्थत्याग, पर-दुःख-दमन के
तरल ताव में ताये हो।
मातृ-क्लेश के करुण-अश्रु सों
तुम सरवोर अन्हाये हो।
कठिन कष्ट प्राविट् यात्रा के
अहो ! झेलते आये हो॥

(३)

माता ऋण ही ऋण समूह में
सब से बड़ा बखाना है।
मुक्ति प्राप्त करना इस ऋण से
स्वर्गद्वार खुलाना है।
हिन्दी, गंगा, जन्मभूमि अरु
निज माता सह मेलन है।
इस प्रयाग में पद-मातृ मिस
मातृ-चतुष्टय सेवन है॥

(४)

देखि समाज आज मेलन को
क्या ही आनंद आता है।
शुभ-संकल्प-पूर्ण हियसागर
गहर मंग लहराता है।
धन्य पुरुष पहिले जिहि सूझा
सद्विचार सम्मेलन का।
जिसके कारण हुआ प्राप्त यह
सुसमय सुजन समागम का।

(५)

अस्तु ! प्रणाम प्रेमयुत सब को
बद्धांजलि हो करता हूं।
परम पवित्र शुभङ्कर पद्रज
निज मस्तक पर धरता हूं।
सुगुण राष्ट्रभाषा बनने के
हिन्दी में जो पाता हूं।
निज लघुमति अनुसार सानुनय
सज्जन ! तुम्हें सुनाता हूं॥

(६)

दक्षिण में हिमगिरि के थल जो
त्रिभुजाकार दिखाती है।
जिसे भानुजा सहित सुरसरी
पावन परम बनाती है।
उत्तर में बद्रीनारायण
देव-देव रखवारे जासु।
दक्षिण में रामेश्वर रक्षा-
हित त्रिशूल कर धारे जासु॥

(७)

पूरब से परिरक्षित रखते
जगत्नाथ जगदीश्वर जाहि।
कर में लिये सुदर्शन राजें
पश्चिम कृष्ण द्वारका नाह।
सुभग नाम इस भू-विभाग का
'हिंद' देश मन भाता है।
देश नाम अनुरूप निवासी
भी 'हिन्दू' कहलाता है॥

(८)

यह अति अलर नाम 'हिन्दू' का
हिन्दू को सुखकारी है।
पावन पूज्य पुरातन महिमा
हिन्दू-कुल की भारी है।
जगत् पिता भगवान राम को
हिन्दू मा ने उपजाया।
त्रिभुवन-पति कंसारि कृष्ण को
हिन्दू-कुल अति मन भाया॥

(९)

जैसा नाम देश का होता,
जैसा देशनिवासी का।
तद्वत् नाम होत तद् प्रचलित
भाषा सद्गुण राशी का।
विद्वद्वर! वस न्याय कीजिये,
हिन्द हिन्दुओं की भाषा।
हिन्दी के अतिरिक्त अन्य हो,
क्या यह कथन न मिथ्या सा?

(१०)

नाम सार्वभौमिक यदि होता
हिन्द देश का दूजा सा।
सकल देशव्यापी तो बनती
सोई नाम नामक भाषा।
रुचिर नाम इस पुण्यभूमि का
होता अथवा 'उर्दुस्तान'।
तो निश्चय 'उर्दू' को मिलना
भारत में अस्थान महान॥

(११)

क्लिष्ट साध्य बङ्गाली भाषा,
उड़िया होश उड़ाती है।
तैलङ्गी जिह्वाहि असुखकर
अमधुर अति गुजराती है।
"ऐन" "ग़ेन" नहिं बनें उच्चारत,
रुचिकर नहीं मराठी है।
अँगरेज़ी महँगी, नैपाली
मानों दुर्गम घाटी है।

(१२)

अतः स्वच्छ सर्वाङ्ग-शिरोमणि
नज़र नागरी आती है।
सरस सुकोमल सुललित मृदुतम
लक्षण श्रेष्ठ दिखाती है।
इस भाषा में जैसा लिखिये
बिनु श्रम वैसा पढ़ लीजे।
'आलू' को 'उल्लू' पढ़ने का
नहिं कदापि संशय कीजे॥

(१३)

पूर्ण वर्णमाला 'हिंदी' की
बिन्दु विसर्ग देख लीजे।
प्रति अक्षर से प्रति अवाज का
पृथक् पृथक् भाषण कीजे।
हों प्रयुक्त उर्दू के अक्षर
जिसके उच्चारण में चार।
एकाक्षर से करे उच्चरित
हिन्दी सो बिनु जिह्वा-भार॥

(१४)

समाधान हो चुकी समस्या
जन-संख्या में बारम्बार।
अन्यअपेक्षा अहैं अधिकतर
देवनागरी बोलनहार।
नहीं पक्षपाती 'हिन्दी' के
युक्त-प्रदेश-निवासी हीं।
अहैं मंगलाकांक्षी इसके
बङ्गाली पंजाबी भी॥

(१५)

शारदचरण मिश्र को देखो,
यद्यपि आप बङ्गाली हैं।
गहरी नींव 'देवि नागरि' की
तदपि आपने डाली है।
उनका पत्र 'देवनागर' जो
होता है प्रति मास प्रकास।
हिन्दी-हित-साधन का उसने
ग्रहण किया पावन उपवास॥

(१६)

वीर-भूमि पंजाब प्रान्त को
उर्दू लिपि अति भाती है।
अब तब पर तदपि नागरी
की झांकी झलकाती है।
है अतिशय आदर 'हिन्दी' का
मध्यदेश बरसाने में।
यदु राजों ने करी नागरी
राइज राजपुताने में॥

(१७)

निश्छल, सरल, सुपाठ्य, सुरूपा,
स्वल्प समय में आती है।
इस विशेष गुण कारण 'हिन्दी'
मेरे मन अति भाती है।
मृदु महिला-समाज में अतिशय
इसका वास सुवासा है।
सस्ती, सरस, सुकोमल, सुखकर,
प्यारी हिन्दी भाषा है॥

(१८)

विविध वर्णमाला में छोटे
बड़े जिते कछु आखर हैं।
उन सब से सादृश्य दिखाते
हिन्दी के अक्षर-वर हैं।
जितनी देर अन्य लिपि-प्रेमी
कर सकते हिन्दी अभ्यास
उतनी देर में हिन्दी-प्रेमी
करें, व्यर्थ यह करना आस

(१९)

महिमा राम कृष्ण की जग में
'हिन्दी' ने फैलाई है।
आर्य्य धर्म की नाव जर्जरित
हिन्दी पार लगाई है।
रामायण कृष्णायण तुलसी
सूर आदि नहिं करते गान।
असंगत इस आर्य्य धर्म का
कैसे होता पुनरुत्थान।

(२०)

मुसलमान कवियों से पाया
हिन्दी ने अति आदर मान।
मेरा कथन समर्थन करते
नबी, रहीम, ताज, रसखान।
अनुयायी हिन्दी कविता का
रहा स्वयं अकबर सम्राट्।
खुसरो को आरम्भ कराया
उसने पहले हिन्दी पाठ॥

(२१)

सूर्य्यकांत, वानैत, केश, घन,
पट, गत, चरण, पारपेरान।
ये सब शब्द बताते, करते
रहे यवन हिन्दी सम्मान।
सखरा, बही, खतौनी, खाता,
नगद बही तिमि बही उधार।
इन सब पत्रों में होता है
अब भी हिन्दी का व्यवहार॥

हिन्दी प्रेमियों से निवेदन।

[लेखक—पण्डित उमाशङ्कर द्विवेदी]

(१)

मातृभाषा के सहायक मान्यवर।
सभ्यगण से है विनय कर जोड़ कर॥
प्रेम के नाते मुदित मन रात दिन।
कीजिए इसकी समुन्नति धर्म गिन॥

(२)

देखिए सब देश हैं कैसे सबल।
मातृभाषा के भरोसे हैं अटल॥
पुण्य जीवन हेतु यह अनुराग है।
मातृभाषा प्रेम भी शुभग पाग है॥

(३)

इसलिये इसमें विविध विज्ञान की।
पुस्तकें दरकार हैं सब ज्ञान की॥
आप लोगों पर य निर्भर भार है।
आपही से इसका बेड़ा पार है॥

(४)

आज दिन जिस देश के कवि ग्रंथकार।
उत्तमोत्तम पुस्तकें लिखते अपार॥
वहीं उनकी श्रेष्ठता का हेतु है।
कर्म जीवन अम्बुनिधि का सेतु है॥

(५)

विविध विद्या का विशद होवे विकास।
विमल हिन्दी चन्द्रिका का हो प्रकाश॥
सरल है अति मधुरता की खान है।
उच्चभाव विचार इसका प्राण है॥

(६)

आज हिन्दी से सभों का मोद है।
देश में सब ठौर इसका शोर है॥
और भाषाओं से इसको अधिकतर।
बोलते औ समझते हैं नारि नर॥

(७)

राष्ट्रभाषा का सभी गुण प्राप्त है।
ललित-हिन्दी-सुयश भारत-व्याप्त है॥
पत्र सम्पादक तथा लेखक-सुजान।
दीजिए इसकी दशा पर नेक ध्यान॥

(८)

हिन्दुओं का देश हिन्दुस्तान जब।
क्यों न हिन्दी का करें सम्मान सब?
मातृभाषा की प्रतिष्ठा है जहाँ।
सर्व सुख सौभाग्य निश्चय है वहाँ॥

(९)

कीजिये इसका सभी पुर में प्रचार।
पुस्तकें लिखिए कि जिनसे हो सुधार॥
जब समुन्नत होगी हिन्दी आप ही।
देश की भी होगी उन्नति साथ ही॥

(१०)

पाले हे प्रियवर सुजान गुणमय करि आशा।
मेटहु सब मिलि हिन्दी की दुःखमयी दुराशा।
आर्य हिन्दुओं की हिन्दी अजहुं लुपि मलिहत।
सोहत भूतल माँहि, जाहि सेवत सब पण्डित।
पर गुण गुण गुणगी, 'सुकवि' हरिचन्द प्रवीन।
रचे विविध ग्रंथन मानस सी हिन्दी किमि दीन।

स्वागत ।

[लेखक—श्रीयुत गङ्गाधर (नम्र)]

———:*:———

(१)

स्वागत स्वागत श्रीयुत सज्जन
जन भारतवासी ॥
हिन्दी हित हेत विचारी,
के पृथक सभा अति भारी,
ये प्रसित अविद्या अँधकार
मद मोह दम्भनासी ॥ स्वागत० ॥१॥
हो आर्य वचन उचारहु,
हिन्दी फिर सों उद्धारहु,
पावै भारत सुख अखिल ओज
अद्वैत सुतारा सी ॥ स्वागत० ॥ ॥२॥

साहित्य निरन्तर सें ही,
थे पूज भाग्य के नेही,
प्राचीन प्रथा अनुकूल ज्ञान गुन
गौरव गरिमा सी ॥ स्वागत० ॥३॥
सानन्द सुधारस पीजे,
है अभय दान यह दीजे,
जेहि सों धन धर्मद धाम नसै
नहिं शक्ती प्रतिमा सी ॥ स्वागत० ॥

लहि कृपा भारती देवी,
हहैं सव सुखके सेवी,
बल विद्या बुद्धि विवेक
"नम्र" उद्योग यशभ्यासी ॥ स्वागत० ॥५॥

———

(२)

आजु दिन भयो परमानन्द ॥
धनि सभा धनि धनि सभापति धन्य श्रोतावृन्द ॥ १ ॥
धन्य यह शुभ कार्यवाही करन अमल अमन्द ॥ २ ॥
प्रीत पागे मुदित मन अनुराग सव सुखकन्द ॥ ३ ॥
करि कृपा या में पधारे हरन सव दुख द्वन्द ॥ ४ ॥
"नम्र" सत पथ पथिकगामी भ्रमत भौंर मदन्ध ॥ ५ ॥

———

खोज और इतिहास ।

नागरी अङ्कों की उत्पत्ति।

—— ० ——

[लेखक—पण्डित गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा]

——:०:——

जैसे नागरी लिपि के प्राचीन और वर्त्तमान अक्षरों के बीच बड़ा अन्तर है (प्रथम हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का कार्य-विवरण, भाग दूसरा, पृ० १६–२६ और नागरी अक्षरों की उत्पत्ति का चित्र देखो) वैसेही नागरी के प्राचीन और वर्त्तमान अङ्कों में भी बड़ा अन्तर है। यह अन्तर केवल अङ्कों के रूपों मे ही पाया जाता हो ऐसा नहीं है; प्राचीन तथा अर्वाचीन अङ्कों की लेखनशैली में भी बड़ा भेद है। इस समय जैसे एकही अङ्क दहाई, सैकड़ा, हज़ार, लाख आदि के स्थानों में आ सकता है वैसे प्राचीन अङ्कक्रम में न था। इस लेख में मुझे भारतवर्ष के प्राचीन अङ्कक्रम का वर्णन करना नहीं है; तो भी हिन्दी के पाठकों को इतना बतलाना आवश्यक है कि प्राचीन अङ्कक्रम में शून्य का व्यवहार न था; एक से नव तक की संख्या बतलाने के लिये ९ अङ्क चिह्न नियत थे और वैसे ही १०, २०, ३०, ४०, ५०, ६०, ७०, ८०, ९०, १००, १०००, १००००० आदि के लिये भी भिन्न भिन्न चिह्न नियत थे। प्राचीन क्रम वर्त्तमान अङ्कक्रम के समान सरल नहीं किन्तु विशेष जटिल था, जिसका विस्तृत वर्णन मैं नागरीप्रचारिणी सभा की लेखमाला की किसी आगामी संख्या में प्रकट करूंगा। इस लेख में केवल यही बतलाने का यत्न किया जायगा कि एक से नव पर्यन्त अङ्कों के प्राचीन रूप क्या थे और किस प्रकार के परिवर्तन होते होते वे वर्त्तमान रूप को पहुंचे हैं।

इस लेख के साथ नागरी अङ्कों की उत्पत्ति का चित्र दिया गया है, जिसमें प्रथम प्रत्येक अङ्क का वर्त्तमान रूप लिख कर उसके आगे = यह चिह्न रक्खा है, जिसके पीछे प्रत्येक अङ्क के भिन्न भिन्न रूपान्तर दिये गये हैं। इन रूपान्तरों के मुख्य दो कारण अनुमान किये जा सकते हैं। वे ये हैं—

(१) अङ्कों को सुन्दर बनाने का यत्न करना।

(२) शीघ्रता से तथा लेखनी को उठाये बिना अङ्क को पूरा लिखना।

उक्त चित्र में दिये हुये प्रत्येक अङ्क के रूपान्तरों का विवरण नीचे लिखा जाता है।

१—इसका चिह्न प्राचीन काल में एक आड़ी लकीर थी (—), जो नानाघाट (पूना ज़िले में), दक्षिण की नासिक आदि की गुफाओं में खुदे हुए आन्ध्रभृत्य (शातवाहन) तथा क्षत्रपवंशी राजाओं के शिलालेखों एवं मथुरा तथा उसके आस पास के प्रदेश से मिलनेवाले क्षत्रप और कुशन (तुर्क) वंशी राजाओं के शिलालेखों तथा साँची, मथुरा, कुड़ा आदि पर खुदे हुए मिलते क्षत्रपवंशी राजाओं के सिक्कों में मिलता है (प्राचीन लिपिमाला, लिपिपत्र ७१, खण्ड १ से ४ पर्यन्त देखो)। [illegible] ईस्वी सन की पाँचवीं शताब्दी [illegible] १ का अङ्क बहुधा यही मिलता है और [illegible] अक्षरों के अङ्कों के [illegible]

का अङ्क लिखना होता है वहाँ इसी चिह्न को काम में लाते हैं। दूसरे रूप में थोड़ा सा घमाव डालकर सुन्दर बनाने का यत्न पाया जाता है।) यह रूप गुप्तवंशी राजाओं के शिलालेखादि में, नेपाल से मिले हुए ई० स० की आठवीं शताब्दी के आसपास तक के शिलालेखों में तथा वल्लभी (काठिआवाड़ में) राजाओं के ताम्रपत्रों में, जो ई० स० की छठी शताब्दी से आठवीं शताब्दी तक के हैं, मिलता है (प्राचीन लिपिमाला, लिपिपत्र ४१, कालम ५, ६,७ देखो)। तीसरा रूप दूसरे से मिलता हुआ ही है, परन्तु उसमें आरम्भ के हिस्से में छोटा सी गांठ लगाने तथा घुमाव को बढ़ाने का यत्न किया गया है। यह रूप बावर साहब को मिली हुई प्राचीन हस्तलिखित पुस्तक (*Bower Manuscript*) में मिलता है। तीसरे रूप को नीचे की तरफ़ अधिक बढ़ाने से चौथा रूप बना है, जो ई० स० की ग्यारहवीं शताब्दी तक की अनेक हस्तलिखित पुस्तकों में पाया जाता है। इसी से पाँचवां तथा छठा रूप बना है जो अब तक लिखा जाता है।

२—इसका चिह्न पहले दो आड़ी लकीरें (=) थीं (जिसका विवरण १ के पहले रूप के अनुसार ही है)। दूसरे रूप में इन लकीरों में कुछ घुमाव पाया जाता है, जो सुन्दरता के विचार से ही डाला गया होगा। इसका विवरण १ के दूसरे रूप के अनुसार ही है। तीसरा रूप बावर साहब से मिली हुई उपर्युक्त हस्तलिखित पुस्तक से उद्धृत किया गया है, जिसमें लकीरों का नीचे की ओर का झुकाव बढ़ा हुआ पाया जाता है। इन दोनों लकीरों के परस्पर मिल जाने से चौथा रूप बना है जो वर्तमान २ के अङ्क से मिलता हुआ है। ... लेखनी को उठाये बिना दोनों लक... लिखने से बना है और अनेक ... हस्तलिखित पुस्तकों, शिलालेखों ... ताम्रपत्रों में मिलता है।

३—इसका चिह्न पहिले तीन आड़ी ... (≡) थीं, जिनमें घुमाव डालने से ... रूप तथा प्रारम्भ में छोटी छोटी स... लगाने से तीसरा रूप बना है ... लेखनी को उठाये लिखने का यत्न ... से चौथा रूप बना है, जो वर्तमान ... अङ्क से मिलता हुआ है। इन भि... रूपान्तरों का विवरण अङ्क २ के ... न्तरों के अनुसार ही है। व्याप... अब तक दो और तीन आनों के ... लिये क्रमशः दो और तीन आड़ी ... (=, ≡) बनाते हैं, जो वास्तव में ... अङ्क ही हैं।

४—इसका पहिला रूप खालसी (दे... ज़िले में) के निकटवर्ती एक चट्ट... खुदे हुए मौर्य (मोरी) वंशी ... प्रतापी राजा अशोक के लेख की ... धर्माज्ञा में मिलता है, जो अर... समय की (प्राचीन) नागरी लिपि ... अक्षर से मिलता हुआ है। दूस... नानाघाट आदि अनेक स्थानों के ... शिला लेखों में मिलता है। (प्रा. ... ४१, कालम १, २.)। तीसरा रूप ... वंशी राजाओं के सिक्कों में मि... जिसमें नीचे की तरफ़ की खड़ी ... के अन्त में घुमाव डाला गया है ... घुमाव को जल्दी लिखने में गाँठ ... देने तथा बीच की आड़ी लकीर के ... उसको मिला देने से चौथा रूप ... जो वर्तमान ४ के अङ्क से बहुत ही ... हुआ है और दसवीं शताब्दी के आ...

की हस्तलिखित पुस्तकों आदि में पाया जाता है (प्रा. लि. लि. ४१ कालम ६)

-इसका पहिला रूप आंध्रभृत्यों तथा क्षत्रियों के लेखों में मिलता है (प्रा. लि. लि. ४१, कालम १, २)। दूसरा रूप गुप्तों के शिलालेखों में मिलता है, जिसमें खड़ी लकीर को कुछ टेढ़ी बना कर सुन्दरता लाने का यत्न पाया जाता है। तीसरा रूप नेपाल के शिलालेखों तथा प्राचीन पुस्तकों में मिलता है। चौथा तथा पाँचवां रूप दोनों ई. स. की नवीं तथा दसवीं शताब्दी के लेखों में मिलता है। (प्रा. लि. लि. ४१, कालम ६), और नागरी के वर्त्तमान पाँच के अङ्क से मिलता है। पाँचवां तथा छठा ये दोनों रूप इस समय लिखे जाते हैं।

-इसका पहिला रूप मौर्यवंशी राजा अशोक के सहस्राम (बङ्गाल के ज़िले शाहाबाद में) तथा रूपनाथ (जबलपुर ज़िले में) के लेखों में पाया जाता है, जो वर्त्तमान ६ के अङ्क से बहुत कुछ मिलता हुआ है। दूसरा रूप पहिले से मिलता हुआ ही है और मथुरा तथा उसके आस पास से मिले हुए कुशन-(तुर्क)-वंशी राजाओं के शिलालेखों में मिलता है (प्रा. लि. लि. ४१, कालम ४)। तीसरा रूप दूसरे से तथा वर्त्तमान ६ के रूप से विशेष मिलता हुआ है और हड्डाला (काठिया-वाड़ में) से मिले हुए कन्नौज के पड़िहार-वंशी राजा महिपाल के समय के शक संवत् ८३६ (वि. सं. ६७१ = ई. स. ६१४) के ताम्रपत्र से उद्धृत किया गया है।

-इसका पहिला रूप आंध्रभृत्यवंशी राजाओं के शिलालेखों में मिलता है (प्रा. लि. लि. ४१, कालम १, २)। दूसरा रूप क्षत्रिय राजाओं के सिक्कों में पाया जाता है (प्रा. लि. लि. ४१, कालम ३) जिसमें खड़ी लकीर के नीचे के हिस्से को कुछ बायें हाथ की ओर घुमा दिया है। इसी घुमाव को कुछ और बढ़ाने से तीसरा तथा चौथा रूप बना है। ये दोनों क्षत्रियों के सिक्कों तथा वलभी के राजाओं के ताम्रपत्रों में मिलते हैं। इन्हींसे वर्त्तमान ७ के अङ्क की उत्पत्ति हुई है।

८—इसका पहिला रूप आंध्रभृत्यवंशी राजाओं के शिलालेखों में पाया जाता है (प्रा. लि. लि. ४१, कालम २)। दूसरा तथा तीसरा रूप गुप्तवंशी राजाओं के लेखों में मिलता है (प्रा. लि. लि. ४१, कालम ५)। इन्हीं से वर्त्तमान ८ का अङ्क बना है।

९—इसका पहिला तथा दूसरा रूप आंध्रभृत्यों के लेखों में मिलता है (प्रा. लि. लि. ४१, कालम १, २)। तीसरा रूप क्षत्रियों के सिक्कों में पाया जाता है। तीसरे को शीघ्रता से लिखने के कारण चौथे रूप का प्रादुर्भाव हुआ होगा। यह रूप तीसरे रूप से और नागरी के 'उ' अक्षर से भी मिलता हुआ है और गुप्तों के लेखों में पाया जाता है। चौथे से पाँचवां रूप बना है, जिसमें बाईं ओर की नीचे के हिस्से की गोलाई बढ़ जाने से वर्त्तमान ९ के अङ्क से कुछ समानता आ जाती है। यह रूप ई. स. की दसवीं शताब्दी के लेखों में मिलता है। इसीका रूपान्तर छठा रूप है, जो वर्त्तमान समय में भी कोई कोई लिखते हैं। इसी से वर्त्तमान ९ का अङ्क बना है।

०—अब का यह रूप हिन्दी तथा बंगला में प्रचलित है। इसके पहिले तथा दूसरे रूप का विकास ऊपर लिखे अनुसार ही है। तीसरा रूप दूसरे से निकला

हुआ है; केवल ऊपर के हिस्से में गांठ लगा दी गई है। इसीमें शीघ्रता से लिखने के कारण चौथे रूप की उत्पत्ति हुई है।

०—शून्य का प्रचार ई. स. की छठी शताब्दी तक के शिलालेखों, ताम्रपत्रों तथा सिक्कों में नहीं पाया जाता, जिसका कारण यह है कि लगभग उस समय तक अङ्क … क्रम से लिखे जाते थे, जिसमें शू… आवश्यकता ही न थी, क्योंकि १०, २… आदि अङ्कों के लिये भिन्न भिन्न … नियत थे। शून्य के विषय में विस्… साथ प्राचीन अङ्कक्रम-सम्बन्धी ले… लिखा जायगा।

राजपूताना में हिन्दी पुस्तकों की खोज।

——:○:——

[लेखक—मुंशी देवीप्रसाद, जोधपुर]

——*——

राजपूताना में हिन्दी पुस्तकों की खोज अभी तक पूरी पूरी नहीं हुई है और यह काम भी बड़ा और बड़े परिश्रम तथा व्यय का है; मुझ जैसे साधारण आदमी के करने का नहीं है। तो भी मैंने इस ओर जैसा मुझ से बन पड़ा है यत्न किया है और करता हूं। इतिहास की खोज के कार्य में, जिसमें मैं बहुत वर्षों से लगा हुआ हूं, मैंने हिन्दी, मारवाड़ी, खड़ी बोली और ब्रजभाषा की बहुत सी हाथ की लिखी हुई पुस्तकें ढूंढ़ीं, देखीं और पढ़ीं हैं। उनकी कुछ सूची भी लिखी है जिसकी कई जिल्दें बन गई हैं। उन्हीं में से यहाँ २४७ पोथियों के नाम और विषय, उनके कर्त्ता के परिचय सहित उदाहरण स्वरूप हिन्दी साहित्यसम्मेलन की सेवा में भेजता हूं। पुस्तकें कहां कहां हैं और उनमें श्लोकों की संख्या कितनी है, यह मैंने विस्तार भय से नहीं लिखा है। इस संक्षिप्त सूची में मरु भाषा के दो एक ग्रन्थों के सिवाय सब ग्रन्थ खड़ी बोली और ब्रजभाषा के हैं। ये दोनों बोलियाँ राजपूताना के बाहर की हैं। राजपूताना में भी एक ही बोली नहीं किन्तु कई हैं जिनमें मुख्य मारवाड़ी, मेवाड़ी, ढूंढ़ाड़ी और नागरचली हैं। यहां लिखा पढ़ी भी इन्हीं में होती है और इन्हीं में साधारण लोग कविता भी करते हैं। औरतें गीतें भी इन्हीं भाषाओं में गाती हैं जो सब की समझ में आ जाती हैं।

खड़ी बोली विशेष करके मुसलमान या रमताराम जोगी और साधुसन्त राजपूताना में लाये हैं, जो प्रायः सबही जगह समझी जा सकती है। यही हिन्दी है और बहुत वर्षों पहिले यहाँ आई है। गोरखपन्थी जोगियों और कबीरपन्थी तथा दादूपन्थी साधुओं की पोथियाँ बहुधा इसी बोली में हैं। मुसलमानों की पुरानी उर्दू भी यही हिन्दी बोली है। ब्रजभाषा इसके बहुत पीछे वल्लभ सम्प्रदाय के प्रसंग से यहाँ पहुंची है और खड़ी बोली से अधिक फैली भी है, क्योंकि पिछले ३०० वर्षों में प्रायः सबही राजपूताना के राजा अपनी अपनी प्रजासहित इस सम्प्रदाय को मानने लग गये थे और सत्रहवीं शताब्दि के कवि सूरदास आदि ने भी इसी भाषा में भक्ति और शृङ्गाररस की कविता की है। इसीलिए खड़ी बोली की अपेक्षा ग्रन्थ भी ब्रजभाषा के यहाँ अधिक हैं, जिन्होंने पीछे से नायिका भेद का विषम रूप धारण करके कृष्णलीला की ओट में बहुत सी खोट भी चला दी है। इसका परिणाम यह है कि साहित्य शिक्षा के ऐसे कम ग्रन्थ मिलेंगे जिन्हें बाप बेटी को या भाई बहन को निशङ्क पढ़ा सके। इसके सिवाय भक्ति वैराग और नायिकाभेद को छोड़ कर और उपयोगी विद्याओं तथा लोक-सुधार के ग्रन्थ भी इन दोनों भाषाओं में राजपूताना के पुस्तकभण्डारों में बहुत थोड़े हैं। हाँ! मरुभाषा और डिंगल कविता में इतिहास और धर्म्म के ग्रन्थ अधिक हैं और कविता भी इसकी ब्रजभाषा से बहुत पुरानी मिलती है, परन्तु उन ग्रन्थों का उल्लेख इस सूची में नहीं किया गया है, क्योंकि साधारण रीति से हिन्दी और ब्रजभाषा बोलनेवाले उनको अच्छी तरह से नहीं समझ सकते।

नंबर	नाम ग्रन्थ	ग्रन्थकर्ता का नाम	विषय
२३	कबीर जी के पद-दो गुटके	कबीर साहब	ज्ञान
२४	कबीर जी की रमैणी	कबीर साहब	ज्ञानोपदेश
२५	कबीर जी की साखी	कबीर साहब	ज्ञान
२६	करुणाभरण	कृष्णजीवन लच्छीराम	नाटक भक्तिभाव
२७	करुणाशतक	चन्द्रकला बाई, बूंदी	करुणारस
२८	कलि वैरागबत्ती	नागरीदास, महाराज किशनगढ़	वैराग्य
२९	कवि जैकृष्ण के कवित्त	जयकृष्ण	शृङ्गार
३०	कविप्रिया	केशवदास	साहित्य
३१	कवित्त माता जी	रसपुंज, सेवक महाराजा अभयसिंह जोधपुर का आश्रित	दुर्गास्तुति
३२	कवित्तसंग्रह	शम्भु आदि ४२ कवि	शृङ्गार
३३	क़ाज़ी कदन की साखी	क़ाज़ी कदन	ज्ञानोपदेश
३४	कीर्त्तनसंग्रह	राजा यशसिंह आदि ३८ कवि	भक्तिभाव
३५	कुंज कौतुक	रसिकदास, नरहरदास के चेले	कुंजलीला
३६	कोकः	आनन्द	कोक
३७	कृष्ण रुक्मिणी-बेल	पृथ्वीराज राठोड़, बीकानेर	कृष्ण-रुक्मिणी-विवाह विलास
३८	कृष्णलीला		कृष्णलीला
३९	कृष्णलीला भाव के कवित्त	रसखान आदि ६ कवि	... ...
४०	कृष्णविलास	मानसिंह महाराजा, जोधपुर	कृष्णलीला
४१	कृष्णविलास	विष्णुप्रसाद कुंवरि बाघेली, जोधपुर के महाराज किशोर सिंह की रानी	कृष्णकथा

नंबर	नाम ग्रन्थ	ग्रन्थकर्त्ता का नाम	विषय
२३	कबीर जी के पद-दो गुटके	कबीर साहब	ज्ञान
२४	कबीर जी की रमेणी	कबीर साहब	ज्ञानोपदेश
२५	कबीर जी की साखी	कबीर साहब	ज्ञान
२६	करुणाभरण	कृष्णजीवन लच्छीराम	नाटक भक्तिभाव
२७	करुणाशतक	चन्द्रकला बाई, बूंदी	करुणारस
२८	कलि वैरागबल्ली	नागरीदास, महाराज किशनगढ़	वैराग्य
२९	कवि जैकृष्ण के कवित्त	जयकृष्ण	शृङ्गार
३०	कविप्रिया	केशवदास	साहित्य
३१	कवित्त माता जी	रसपुंज, सेवक महाराजा अभयसिंह जोधपुर का आश्रित	दुर्गास्तुति
३२	कवित्तसंग्रह	शम्भु आदि ४२ कवि	शृङ्गार
३३	क़ाज़ी कदन की साखी	क़ाज़ी कदन	ज्ञानोपदेश
३४	कीर्त्तनसंग्रह	राजा बखसिंह आदि ३८ कवि	भक्तिभाव
३५	कुंज कौतुक	रसिकदास, नरहरदास के चेले	कुंजलीला
३६	कोकः	आनन्द	कोक
३७	कृष्ण रुक्मिणी बेल	पृथ्वीराज राठोड़, बीकानेर	कृष्ण-रुक्मिणी-विवाह
३८	कृष्णलीला		विलास
३९	कृष्णलीला भाव के कवित्त	रसखान आदि ९ कवि	
४०	कृष्णविलास	मानसिंह महाराजा, जोधपुर	
४१	कृष्णविलास	विष्णुप्रसाद बाघेली	

नंबर	नाम ग्रन्थ	ग्रन्थकर्त्ता का नाम	विषय	संवत्	सूचना
७१	छन्द, जलधर जी के दोहे	महादान मेहूचारण	जलन्धरनाथ जी की स्तुति		
७२	छन्दसंग्रह	तुलसीदास आदि ६ कवि	भक्ति		
	ज				
७३	जगतविनोद	पद्माकर	नायिकाभेद		
७४	जलन्धरनाथ जी का जस	दौलतराम, सेवक मारवाड़	महाराजा मानसिंह के इष्ट देव जलन्धर नाथ जी का यश		
७५	जलन्धरचन्द्रोदय	मानसिंह, महाराजा जोधपुर	जलन्धरनाथ जी की कथा		
७६	जलन्धरचरित्र	" "	" "		
७७	जलन्धरनाथ जी का रूपक	सन्तोकी राम, सेवक रेण	जलन्धरनाथ जी की स्तुति		
७८	जस आभूषण चन्द्रिका	मनोहरदास, सेवक जोधपुर	पिङ्गल और अलङ्कार	१८९६	
७९	जसभूषण	षष्ठी राम गाड़ राम, सेवक मारवाड़	जलन्धरनाथ जी का यश		
८०	जस रूपक	" "	जोधपुर के महाराजा मानसिंह का यश		
८१	जूनी ख्यात (मरुभाषा)	...	पुराना इतिहास राजाओं और बादशाहों का		
८२	जैतावत केसरीसिंह के कुण्डलिये	केसरीसिंह राठौड़, जैतावत, मारवाड़	पशु पक्षी के नाम से उपदेश		
८३	जोगेश्वरी साखी (गड़ी बोली)	गुरु गोरखनाथ जी	उपदेश		
८४	जोरावरप्रकाश	जोरावरसिंह, महाराजा बीकानेर	कविप्रिया की टीका		

नंबर	नाम ग्रन्थ	ग्रन्थकर्त्ता का नाम	विषय	ग्रंथ
५७	गोरखनाथ जी के पद (खड़ी बोली)	गुरु गोरखनाथ जी	योग	
५८	गोरखनाथ जी के फुटकर ग्रन्थ (खड़ी बोली)	गुरु गोरखनाथ जी	योग	
५९	गोरखबोध (खड़ी बोली)	गुरु गोरखनाथ जी	योग-ज्ञान	
६०	गोरा बादल की बात (दूसरा नाम चित्तौड़ की बात)	नाहरखान जटमल	गोरा बादल का वृत्तान्त	
६१	गोवर्धन धारण के कवित्त	नागरीदासजी, किशनगढ़ के महाराजा	श्रृङ्गार	
६२	गोविन्द परचई	नागरीदासजी, किशनगढ़ के महाराजा	श्रृङ्गार	
	च			
६३	चरचरियाँ	नागरीदास, महाराजा किशनगढ़	सङ्गीत	
६४	चन्दन मलयागिर की वार्त्ता	सेन भट	एक रोचक कहानी	
६५	चांदनी के कवित्त	नागरीदास जी,	श्रृङ्गार	
	छ			
६६	छः राग छत्तीस रागनी	विजयराम कलावत	सङ्गीत	
६७	छूटक कवित्त	महाराज नागरीदास, किशनगढ़	श्रृङ्गार	
६८	छूटक दोहा मजलस मण्डण	"	"	
६९	छूटक दोहा	"	"	
७०	पद	"	"	

नंबर	नाम ग्रन्थ	ग्रन्थकर्त्ता का नाम	विषय	संवत्	सूच
	ढ				
८५	ढोला मारुणी	कल्लोल	ढोला मारुणी की कहानी	१६०४	
	त				
८६	तीर्थानन्द	नागरीदास जी, महाराजा किशनगढ़	तीर्थों का वर्णन		
८७	तेजमञ्जरी	महाराजा मानसिंह, जोधपुर	अनेक विषय		
	द				
८८	दत्त गौरख	...	दत्तात्रेय और गौरख सम्वाद		
८९	दयाल जी के पद	हरीदास, महन्त दादूपन्थी, उपनाम दयाल जी	ज्ञानोपदेश		
९०	दसमस्कन्ध	नरहर दास चारण, मारवाड़	दशमस्कन्ध भागवत की भाषा		
९१	दम्पतिविलास	बलवीर	नायिकाभेद	१७५६	
९२	दिवारी के कवित्त	नागरीदास, महाराजा किशनगढ़	शृङ्गार		
९३	दुर्गापाठ	अजीतसिंह, महाराजा जोधपुर	भाषा दुर्गापाठ	१७३६	
९४	दुलहराम के पद	दुलहराम साधुराम सनेही, शाहपुरा	वेदान्त		
९५	दादू जी के पद	दादू जी	ज्ञान		इसमें [illegible] २२ [illegible] पद हैं
९६	दादू जी के पद, दूसरा गुटका	दादू जी	ज्ञान और भजन		
	दादूदयाल जी की [illegible]	दादू जी	ज्ञानोपदेश		

नंबर	नाम ग्रन्थ	ग्रन्थकर्त्ता का नाम	विषय	संवत्
११७	नाथ जी की वाणी (सही नाम-नाथ जी की स्तुति)	मानसिंह, महाराजा जोधपुर	जालन्धरनाथ की स्तुति	
११८	नाथ जी के पद	... . .	नाथ महिमा	
११९	नानक जी की साखी	गुरु नानक	ज्ञान	
१२०	नामदेव जी के पद	नामदेव जी भक्त	ज्ञान	
१२१	नामदेव जी की साखी	नामदेव जी	,,	
१२२	निकुञ्जविलास	नागरीदास, महाराजा किशनगढ़	शृङ्गार	१७९४
१२३	निरवाण दोहा	अजीतसिंह, महाराजा जोधपुर	भक्ति	
१२४	नेहसंग्राम	प्रतापसिंह, महाराजा जयपुर, ब्रजनिधि	राधिका मानगुमान	१८५२
१२५	नौढ़ा वर्णन	आलम आदि २४ कवि	नवोढ़ा नायिका के कवित्त	...
	प			
१२६	पद और कवित्त	सुन्दर कुंवरि बाई, किशनगढ़ के महाराज राजसिंह की बेटी	भक्ति	
१२७	पद्मसिंह के कुंडलिये	गोरधन चारन, बीकानेर	वीररस—बीकानेर के राजवी पद्मसिंहका यश	
१२८	पदमुक्तावली	नागरीदास, महाराजा किशनगढ़	शृङ्गार	
१२९	पदप्रबोध माला	नागरी दास महाराजा किशनगढ़	वैराग्य	
		,, ,,	शृङ्गार	
	संग्रह	आशानन्द आदि ७५ कवि और भक्त	भक्ति	...
	न्ददास के पद	परमानन्ददास	भक्ति,	

नंबर	नाम ग्रन्थ	ग्रन्थकर्त्ता का नाम	विषय
१३३	पंच सहेली	छीहल	विरहव्यथा और संयोग सुख
१३४	पंचावली	मानसिंह, महाराजा जोधपुर	अनेक विषय
१३५	पावसपचीसी	नागरीदास, महाराजा किशनगढ़	वर्षा वर्णन
१३६	पीपा जी की परची	अनन्तदास रामानन्दी साधु	पीपा जी का वृत्तान्त
१३७	पुष्टिदृढ़ा (गद्य ब्रज भाषा)		भक्ति
१३८	पूजाविलास	रसिकदास, नरहरिदास के चेले	पूजा की विधि
१३९	प्रतापकुंवरपद रतनावली	प्रताप बाजाम सुता (?) जोधपुर के महाराजा तख़्तसिंह की रानी	भक्ति
१४०	प्रताप पचीसी	प्रतापकुंवरि बाई, जोधपुर के महाराज मानसिंह की रानी	उपदेश भक्ति
१४१	प्रताप रसमंजरी	नागरीदासजी, किशनगढ़ के महाराजा	भक्ति
१४२	प्रबोधचन्द्रोदय नाटक भाषा (गद्य पद्य)	जसवन्तसिंह, महाराजा जोधपुर	वेदान्त
१४३	प्रश्नोत्तर	मानसिंह, महाराजा जोधपुर	अनेक विषय
१४४	प्रतिबोध (खड़ी बोली)		धूलदेव और पूर्णनाथ संवाद
१४५	प्रीतचौपन आदि २५ ग्रन्थ	ध्रुवदास	भक्तिरस और शृङ्गार
१४६	प्रेमरत्न	रतनकुंवरि बीबी	कृष्णभक्ति
१४७	प्रेमसागर	प्रतापकुंवरि बाई, जोधपुर के महाराजा मानसिंह की रानी	भक्ति

र	नाम ग्रन्थ	ग्रन्थकर्त्ता का नाम	विषय	संवत्	सूचना
७	विराट पुराण (खड़ी बोली)	गुरु गोरखनाथ जी	विराट स्वरूप वर्णन		
८	विष्णुपुर	जगन्नाथादि ९८ कवि	भक्ति	...	संग्रह ग्रन्थ है
९	विहार चन्द्रिका	नागरीदास, महाराजा किशनगढ़	शृङ्गार	१७८९	
०	बिहारी सतसई	बिहारीदास चौबे मथुरा	नायिकाभेद	१७१९	
१	वृन्द सतसई	वृन्द सेवक, मेड़ता, मारवाड़	नीति शिक्षा		
२	वृन्दावन गोपी महातम	सुन्दर कुंवरि बाई, नागरीदास जी की बहिन	भक्ति		
३	वृन्दावन सत	ध्रुवदास	वृन्दावन महिमा	१६८६	
४	वैनविलास	नागरीदास जी	सङ्गीत		
५	ब्रजदासी भागवत	ब्रजकुंवरि बाई, किशनगढ़ के महाराज राजसिंह की रानी बाँकावत जी	भागवत की भाषा		
७६	ब्रजविहार लीला (अपूर्ण)	...	कृष्णलीला		
७७	ब्रजवैकुण्ठ	नागरीदास जी	भक्ति	१८०१	
७८	ब्रजलीला	नागरीदास जी	भक्ति	...	
७९	ब्रजसार	नागरीदास जी	शृङ्गार	१७९९	
८०	ब्रह्माण्ड वर्णन	श्यामराय कायस्थ, मेडता, जोधपुर	भूगोल, खगोल, स्वर्ग, पाताल वर्णन	१७७५	
८१	विरह मञ्जरी	... ...	गोपी विरह वर्णन		
	भ				
१८२	भक्तिमगदीपिका	नागरीदास, महाराजा किशनगढ़	भक्ति	१८०२	
१८३	भक्तमाल-सटीक	नाभाजी और टीकाकार प्रियादास	भक्तों की कथा		टीका का संवत् १७६९

नंबर	नाम ग्रन्थ	ग्रन्थकर्त्ता का नाम	विषय	संवत्	सू
१८४	भगवतगीता भाषा	हरिवल्लभ	ज्ञान		
१८५	भक्तिसार	नागरीदास जी	भक्ति	१८९९	
१८६	भगवद्‌दी के लक्षण (गद्य)	हरिराय	भक्ति महिमा		
१८७	भजन	दादू आदि ५६ भक्त	भक्ति	...	संग्रह ग्र
१८८	भजन पद हर जस	प्रताप कुंवरि, जोधपुर के महाराजा मानसिंह की रानी	भक्ति		
१८९	भजनविलास	लक्ष्मीनारायण घोड़ा, पोकरण ब्राह्मण, जोधपुर	जालन्धरनाथ जी के भजन	१८८३	
१९०	भजन हरजस	सामोजी आदि ३१ भक्त	भक्ति		सं
१९१	भजन सत	ध्रुवदास	भजन महिमा		
१९२	भमर गीत	रसिकराय	कृष्ण गोपी संवाद		
१९३	भमर पचीसी	केसोदास	ज्ञानोपदेश		
१९४	भरथरी वैराग	हरीदास	भरथरी की कथा		
१९५	भरथरी शतक	प्रतापसिंह, महाराजा जयपुर, व्रजनिधि	नीति, श्रृङ्गार, वैराग्य	१८५२	
१९६	भरथरी शब्दी (खड़ी बोली)	भरथरी जी	योगाभ्यास	...	इसमें योगी पद संग्रह
१९७	भवानी सहस्र नाम	अजीतसिंह, महाराजा जोधपुर	दुर्गापाठ	१७६८	
१९८	भावना प्रकाश	सुन्दरि कुंवरि बाई, नागरीदास जी की बहिन	भक्ति	१८४६	
१९९	भाषा भूषण	जसवन्त सिंह, महाराजा जोधपुर	अलङ्कार		
२००	भोगल पुराण	... ...	भूगोल खगोल का वर्णन		
२०१	भोजनानन्दाष्टक	नागरीदास जी	श्रृङ्गार		
२०२	भोर लीला	नागरीदास जी	श्रृङ्गार		

[न]बर	नाम ग्रन्थ	ग्रन्थकर्ता का नाम	विषय	संवत्	सूचना
	म				
०३	मछन्द्रनाथ जी के पद	मछन्द्रनाथ जी	ज्ञान-योग		इसमें और भी कई योगीश्वरों के पद हैं
०४	मधुमालती	चतुर्भुजदास कायस्थ निगम	प्रेमकहानी		
०५	मनोरथमञ्जरी	नागरीदास, महाराज किशनगढ़	वैराग्य	१७८०	
०६	महाराजा अजीतसिंह के दोहे	अजीतसिंह, महाराजा जोधपुर	निज जन्म कथा		
०७	महाराजा अजीतसिंह की कविता का संग्रह	अजीतसिंह, महाराजा जोधपुर	डिङ्गल पिङ्गल कविता		
०८	महाराजा गजसिंह का गुण रूपक	हेमचारण, सामोर, मारवाड़	महाराज गजसिंह और शाहज़ादे सलीम की लड़ाई का हाल	१६८१	
०९	महाराजा मानसिंह की बनावट	मानसिंह, महाराजा जोधपुर	१९ विषय की कविता		
१०	महोत्सव प्रकाश	चन्द्रकला बाई, बूंदी	उत्सव वर्णन		
११	मांड और टप्पे	सर्मारस (महाराजा मानसिंह, जोधपुर)	सङ्गीत		
१२	मानप्रकाश	महादान चारण, मेड़, मारवाड़	जोधपुर के महाराजा मानसिंह का वृत्तान्त		
१३	मानपच्चीसी	तिलोक सेवक, मेड़ता, मारवाड़	राधिका मान वर्णन	१७३६	
१४	मानमञ्जरी नाममाला	नन्ददास	कोश		
१५	मारकण्डे पुराण	दामोदरदास दादूपन्थी	मारकण्डेय पुराण की भाषा		
१६	मुरलीराम के पद	मुरलीराम साधु, राम सनेही, शाहपुरा	भक्ति		
१७	मूरतराम	मूरतराम साधु राम-सनेही, शाहपुरा	,,		

नंबर	नाम ग्रन्थ	ग्रन्थकर्त्ता का नाम	विषय	संवत्
२१८	मैनासत (खड़ी बोली)	...	... मैना नाम एक सती स्त्री की कथा	
२१९	मोहम्मद गिज़ाली का पारस भाग (गद्य खड़ी बोली)	...	... कीमियाए सआदत का उल्था	
२२०	मोहविवेक	गोपालदास दादूपन्थी	ज्ञानोपदेश	
२२१	मोहमरद राजाकी कथा	जगन्नाथ, तुलसीदास का चेला	मोहमर्द आख्यान	१७०६
	य			
२२२	युगल-भक्ति-विनोद	नागरीदास, महाराजा किशनगढ़	राधाकृष्ण प्रेमभक्ति	१८०८
२२३	युगल-रस-माधुरी	नागरीदास, महाराजा किशनगढ़	शृङ्गार	
	र			
२२४	रङ्गझार	सुन्दर कुंवरि बाई, महाराज नागरीदास की बहन	भक्ति	१८४५
२२५	रघुवर सनेह लीला	रानी प्रतापकुंवरि बाई, जोधपुर के महाराजा मानसिंह की रानी		
२२६	रसगुलजार	बदन जी चारण, बूंदी	जोधपुर के महाराजा मानसिंह का इतिहास	
२२७	रसविलास	देवदत्त	नायिका भेद	
२२८	रसपायनायक	राजसिंह, महाराजा किशनगढ़	नायिकाभेद	
२२९	रसपुंज	सुन्दर कुंवरि बाई, महाराजा नागरीदास की बहिन	भक्ति	१८४५

वर	नाम ग्रन्थ	ग्रन्थकर्त्ता का नाम	विषय	संवत्	सूचना
३०	रसरतन सटीक	सुरत मिश्र, आगरा	शृङ्गार रस		
३१	रसिक चमन	महाराना शृङ्गर्सी, उदयपुर	प्रेमवर्णन	१६४८	
३२	रसिकप्रिया	केशवदास कवि	नायिकाभेद		
३३	रसिकविनोद	सज्जनसिंह, महाराना उदपुर	सङ्गीत		
३४	रसिकविहारी-पद-संग्रह	बनी ठनी जी, नागरीदास जी की उप-स्त्री	..		
३५	रसिकरत्नावली	नागरीदास, महाराजा किशनगढ़	नायिकाभेद	१७८२	
३६	राग मलार	लच्छीराम वगैरा ७ कवि	सङ्गीत	..	संग्रह ग्रन्थ है
३७	रागमाला	तानसेन	सङ्गीत		
३८	रागसंग्रह	... ..	सङ्गीत		
३९	रागसंग्रह दूसरा गुटका	८४ कवि	सङ्गीत	...	संग्रह ग्रन्थ है
४०	रागसागर	मानसिंह, महाराजा जोधपुर	सङ्गीत		
४१	राग सोरठ पदसंग्रह	मीरा, कबीर, नामदेव	भक्ति		
४२	राजकीर्त्तन	बाजींद जी	ज्ञानोपदेश		
४३	राजकुमारप्रबोध	जोगी शम्भुदत्त, जोधपुर	राजनीति		
४४	राजनीति के कवित्त	देवीदास	राजनीति		
४५	राजविलास	लक्ष्मीनाथ बोड़ा, पोकरण ब्राह्मण, जोधपुर	महाराजा मानसिंह के राज का वर्णन		
४६	राजा रसालू की बात	... ...	दीचरित्र		
४७	राजा सुमति रानी सत्यरूपा	अजीतसिंह, महाराजा जोधपुर	कहानी	१७६६	
४८	रांझाहीरा (पंजाबी और खड़ी बोली	... ..	हीरा रांझा की कथा		

नंबर	नाम ग्रन्थ	ग्रन्थकर्त्ता का नाम	विषय	संवत्
२४९	रामकृष्ण जस	शेरसिंह, महाराज कुमार, जोधपुर के महाराजा विजयसिंह के बेटे	रामकृष्ण यश	१८४६
२५०	रामचरितमाला	नागरीदास जी	रामावतार वर्णन	
२५१	रामचरित्र	चन्द्रकला बाई, बूंदी	रामायण की कथा	...
२५२	रामचरित्रमाला	नागरीदास जी	राम कथा	
२५३	रामचन्द्रिका	केशवदास कवि	रामायण की कथा	१६५८
२५४	रामचन्द्रगुणसागर	प्रतापकुंवरि बाई, जोधपुर के महाराजा मानसिंह की रानी	... ...	
२५५	रामचन्द्र-नाम-महिमा	प्रताप कुंवरि बाई, जोधपुर के महाराजा मानसिंह की रानी	... ...	
२५६	रामदास वेरावत	... ...	रामदास राठौड़ की वीरता	
२५७	रामप्रेम सुखसागर	प्रताप कुंवरि बाई	भक्ति	
२५८	रामविलास (अपूर्ण)	मानसिंह, महाराजा जोधपुर	रामकथा	
२५९	रामरहस्य	सुन्दर कुंवरि बाई, नागरीदास जी की बहिन	रामावतार की कथा	१८५३
२६०	रामसुजस पचीसी	प्रतापकुंवरि बाई, जोधपुर के महाराजा मानसिंह की रानी	... ...	
२६१	राज-अनुक्रम कवित्त	नागरीदास जी	शृङ्गार	
२६२	रास-अनुक्रम दोहे	नागरीदास जी	शृङ्गार	
२६३	रास के कवित्त	नागरीदास जी	शृङ्गार	
२६४	रास-रसलता	नागरीदास जी	शृङ्गार	
२६५	रूपक	तिलोक बारहट वगैरा ५ चारण कवि, मारवाड़	महाराजा मानसिंह का यश	
	रेखता (खड़ी)	नागरीदास जी	कविता	

नंबर	नाम ग्रन्थ	ग्रन्थकर्त्ता का नाम	विषय
२६७	रेख़ता (खड़ी बोली, उर्दू फ़ारसी मिली हुई)	प्रतापसिंह, महाराजा जयपुर	कविता
२६८	रैदास जी के पद	रैदास जी भक्त	भक्ति
२६९	रैदास जी की साखी (खड़ी बोली)	रैदास जी	भक्ति
२७०	रैनरूपारस	नागरीदास जी	शृङ्गार
	ल		
२७१	लगनाष्टक	नागरीदासजी, किशनगढ़ के महाराजा	शृङ्गार
२७२	लघुपारासरी की टीका	तीजा जी, जयपुर के जोशी मन्नालाल की स्त्री	पारासरी की टीका
२७३	ललितका	जोरावरसिंह, महाराजा बीकानेर	रसिकप्रिया की टीका
२७४	लीलावती	लालचन्द्र जैनी	लीलावती की भाषा-गणित विद्या
	स		
२७५	सदेवच्छ सावलंग्या	केशव मुनि, जैनी साधु	कहानी
२७६	सनेहनिधि	सुन्दर कुंवरि बाई, नागरीदास जी की बहिन	भक्ति
२७७	सरदार सुयस	... ...	कृष्णगढ़ के राजा सरदारसिंह का इतिहास
२७८	सभामण्डल शृङ्गार	ध्रुवदास	शृङ्गार
२७९	सरवङ्गी	दादू आदि ५५ भक्त	... ...
२८०	सवैया सुन्दरकृत	सुन्दरदास दादूपन्थी	ज्ञान-वैराग्य
२८१	संकेत-युगल	सुन्दर कुंवरि बाई	भक्ति

नंबर	नाम ग्रन्थ	ग्रन्थकर्त्ता का नाम	विषय	संवत्	सूच[illegible]
२८२	संग्रहग्रन्थ	मानसिंह, महाराजा जोधपुर	जालन्धरनाथ जी की स्तुतिसंग्रह		
२८३	सञ्जोगता नेम प्रस्ताव	चन्द् बरदाई	संयुक्ता का हाल		
२८४	सहजोप्रकाश	सहजोबाई, चरणदास जी की चेली	ज्ञानोपदेश		
२८५	सांझी के कवित्त	नागरीदास, महाराजा किशनगढ़	साँझीवर्णन		
२८६	सांझी फूलबीन	"	"		
२८७	सातों सरूप की भावना	हरिराय	भक्ति		
२८८	सारसंग्रह	सुन्दर बाई,	भक्ति	१८४५	
२८९	सिखनिख	नागरीदास जी	शृङ्गार		
२९०	सिखनख	बलभद्र	शृङ्गार		
२९१	सिद्ध गङ्गा	मानसिंह, महाराजा जोधपुर	नाथों के तीर्थों का वर्णन		
२९२	सिद्ध मुक्ताफल	मानसिंह, महाराजा, जोधपुर	जलन्धरनाथ जी का माहात्म्य		
२९३	सिद्ध संप्रदाय	मानसिंह, महाराजा जोधपुर	नाथ सम्प्रदाय का वर्णन		
२९४	सिद्धान्तसार	जसवन्तसिंह, महाराजा जोधपुर	वेदान्त		
२९५	सिद्धान्तबोध	" "	ब्रह्मज्ञान		
२९६	सिद्धान्त पद्धति भाषा	... ...	योग		
२९७	सिंह सिंहनी	माहर, गिरधर, गंग, जमाल	वीररस		
२९८	सीतसार	नागरीदास, महाराजा किशनगढ़	शृङ्गार		
२९९	सुजानानन्द	" "	"		
३००	सुदामाचरित्र, सवैयाबन्ध	..	सुदामा की कथा		
३०१	सुरत विचार	.. ..	[illegible]		
३०२	[illegible]	कुंवर [illegible]सिंह, [illegible] ([illegible]) के [illegible]	[illegible]	१८०५	

नाम ग्रन्थ	ग्रन्थकर्त्ता का नाम	विषय	संवत्	सूचना
ुन्दरशृङ्गार	सुन्दर कविराय	नायिकाभेद	१६८८	
ोडस भक्तभाव	रिकवार	भक्ति		
ोपसबोध आत्म-परिचय	पृथ्वीनाथ योगीश्वर	योग		
श				
ाङ्करी पचीसी	रसचन्द आदि १५ कवि	दुर्गास्तुति		
ाकुन विचार	... ...	शकुनों का विचार		
ाक्ति भक्ति प्रकाश	मुंशी माधोराम कायस्थ जोधपुर	दुर्गास्तुति		
ारद की मांक	नागरीदास, महाराजा किशनगढ़	शृङ्गार		
शिवगीतार्थ	जयकृष्ण	वेदान्त		
शिवमहात्म	जयकृष्ण चीसा, पुसकरनी ब्राह्मण	शिवमहिमा	१८२५	
ाुकसम्वाद	खेमदास साधु	शुकदेव जी की कथा		
शृङ्गाररस	ध्रुवदास	शृङ्गार		
शृङ्गारशिक्षा	वृन्द सेवक, मेड़ता, मारवाड़	शृङ्गार	१७४८	
श्रीकृष्ण जी के दोहे	अजीतसिंह, महाराजा जोधपुर	कृष्णस्तुति		
श्री ठाकुर जी के जन्मोत्सव के कवित्त	नागरीदास जी	शृङ्गार		
श्री ठकुरानी जी के जन्मोत्सव के कवित्त	" "	"		
श्री गुसाईं जी	... ...	विट्ठलनाथ जी का वृत्तान्त		
श्री नाथ जी के मत के ६ ग्रन्थ	... ...	नाथों के मत का वर्णन	...	भूचरपुराणादि
श्री वल्लभाचार्य्य के स्वरूप का चिन्तन	... ...	वल्लभाचार्य का वृत्तान्त		

नंबर	नाम ग्रन्थ	ग्रन्थकर्त्ता का नाम	विषय	संवत्	सूचना
३२१	श्रीमद्भागवतपारायणाविधि प्रकाश	नागरीदास, महाराजा किशनगढ़	भक्ति	१८६६	
३२२	श्री हजूर के कवित्त	बांकीदास कविराज, जोधपुर	महाराजा मानसिंह की प्रशंसा		
३२३	श्री हजूर के कवित्त	भूप और रिझवार	,, ,,		
	ह				
३२४	हफ़्त गुलशन (भाषा)	... ...	हिन्दुस्तान के बादशाहों का इतिहास स० १७८६ तक		
३२५	हरिचन्द्र पुराण	... ...	राजा हरिचन्द्र की कथा		
३२६	हरिजस भजन	परशुराम योगीश्वर	भक्ति	...	संग्रह ग्रन्थ
३२७	हरिजस-संग्रह	सूरदास आदि १५ भक्त	भक्ति		
३२८	हरिदास जी का ग्रन्थ	हरिदास निरंजनी साधु	भक्ति		
३२९	हरिरस	आतम	भक्ति		
३३०	हिंडोरे के कवित्त	नागरीदासजी	शृङ्गार		
३३१	होरी के कवित्त	,,	,,		
३३२	होरी की मांझ	,,	,,		
	ज्ञ				
३३३	ज्ञानतिलक	गुरु गोरखनाथ जी	ज्ञान		
३३४	ज्ञानप्रकाश	प्रताप कुंवरि बाई, महाराजा मानसिंह की रानी	ज्ञानोपदेश		
३३५	ज्ञान सागर	,, ,,	,,		
३३६	ज्ञानशृङ्गार	... ...	,,		
३३७	ज्ञान-सिद्धान्त-जोग	गुरु गोरखनाथ	,,		
३३८	ज्ञानसमुद्र	सुन्दरदास दादूपन्थी	,,		

नोट—संग्रह ग्रन्थों में कवियों के जो सैकड़ों नाम हैं उनसे एक अच्छी और बड़ी सूची बन

हिन्दी लिखित पुस्तकों की खोज ।

[लेखक—पण्डित श्यामविहारी मिश्र और पण्डित शुकदेवविहारी मिश्र]

सबसे प्रथम संस्कृत हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज का काम सरकार ने सन् १८६८ ईस्वी में लाहौर-निवासी पण्डित राधाकृष्ण के प्रस्ताव पर प्रारम्भ किया। सन् १८९५ ई० में काशी नागरीप्रचारिणी सभा की प्रार्थना पर एशियाटिक सुसाइटी, बंगाल, ने हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज प्रारम्भ की और प्रायः ६०० पुस्तकों का पता लगाया भी गया, परन्तु सुसाइटी ने फिर यह काम बिलकुल छोड़ दिया, यहाँ तक कि खोजी हुई ६०० पुस्तकों के नाम भी उसने प्रकाशित न किये। सभा ने भारत गवर्नमेंट तथा प्रान्तीय गवर्नमेंट से भी इस विषय पर पत्र व्यवहार किया, और प्रान्तीय सरकार ने शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर को यह आज्ञा भी दी कि संस्कृत ग्रन्थों के साथ हिन्दी के ग्रन्थों की भी खोज हो, पर इसका फल सन्तोषजनक नहीं हुआ। मार्च १८९९ ई० में सभा ने फिर प्रान्तीय सरकार से इस विषय पर लिखा पढ़ी की जिसका फल यह हुआ कि सरकार ने यह काम सभा को ही सौंप दिया और इसके व्यय निमित्त ४००) रु० वार्षिक मंजूर किया, जो कुछ दिनों के पीछे ५००) रु० कर दिया गया। सभा ने १९०० से यह काम प्रारम्भ किया और सभा की ओर से ६ वर्ष तक इसे बाबू श्यामसुन्दरदास ने बड़ी योग्यता और परिश्रम से सम्पादित किया। तदनन्तर उनके काश्मीर में नौकर हो जाने के कारण सभा[illegible] के यह काम छोड़ना पड़ा और १९०८ ई० से यह मुझे (श्यामविहारी मिश्र) को सौंपा गया। बाबू साहब ने खोज की छ: रिपोर्टें और मैंने दो लिखी हैं। इनके अतिरिक्त उन्होंने १९०६ से १९०८ के बाबत एक त्रैवार्षिक रिपोर्ट भी लिखी। इनमें से प्रथम छः रिपोर्टें सरकार ने पूरी पूरी प्रकाशित कर दीं, परन्तु पीछे से यह निश्चय हुआ कि वार्षिक रिपोर्टों का मर्म मात्र प्रकाशित किया जाया करे और प्रति तीसरे वर्ष तीन वर्षों की खोज का हाल पूर्ण रूप से प्रकाशित हो। बाबू साहब की लिखी हुई त्रैवार्षिक रिपोर्ट अभी तक सरकार प्रकाशित नहीं कर सकी है।

खोज में प्रत्येक पुस्तक के विषय निम्न बातें लिखी जाती हैं—

(१) पुस्तक का नाम।

(२) किस वस्तु पर वह लिखी है, अर्थात् कागज़, भोजपत्र, ताम्रपत्र या किस चीज़ पर।

(३) पृष्ठों का आकार।

(४) प्रति पृष्ठ में कितनी पंक्तियाँ हैं?

(५) कुल पुस्तक के (अनुष्टुप) श्लोकों के बराबर आकार में है?

(६) पुस्तक देखने में कैसी प्रतीत पड़ती है? अर्थात् पुरानी या नई, कटी हुई या अच्छी, पूर्ण अथवा अपूर्ण।

(७) किन अक्षरों में पुस्तक लिखी है?

(८) पुस्तक कब बनाई गई थी?

(९) पुस्तक कब लिखी गई थी?

(१०) पुस्तक किसके पास है ?

(११) अंगरेज़ी में विवरण।

(१२) आदि और अन्त से उदाहरण।

(१३) विषय।

(१४) हिन्दी में विवरण।

केवल आदि और अन्त के उदाहरण देने में यह गड़बड़ पड़ता था कि कभी कभी उत्तम पुस्तकों के आदि और अन्त के छन्द परमोत्तम नहीं होते हैं अथवा इसकी विपरीत दशा होती है, सो उन पुस्तकों की उत्तमता या न्यूनता ऐसे उदाहरणों से प्रकट नहीं होती थी। इसी प्रकार गद्य के ग्रन्थों में भी कभी कभी आदि तथा अन्त में दोहे होते हैं, सो यह नहीं ज्ञात होता था कि वे ग्रन्थ गद्य के हैं या पद्य के। इन कारणों से हाल में यह निश्चय किया गया कि मध्य के भी कुछ उत्तम भाग उदाहरण में लिखे जावें।

सभा की ओर से एक महाशय वैतनिक एजंट भी हैं जो सब कहीं घूम घूम कर खोज का काम किया करते हैं। उनसे अब यह भी कह दिया गया है कि जहाँ तक सम्भव हो सभा के लिये उत्तम हस्तलिखित ग्रन्थ एकत्रित करने का भी प्रयत्न करें। पहले भी यह काम कुछ कुछ होता था और काशी नागरीप्रचारिणी सभा ने ग्रन्थमाला में जो ग्रन्थ निकाले हैं उनमें से बहुत से इसी प्रकार एकत्रित किये गये थे। अब ऐसे ग्रन्थ विशेष रूप से एकत्र करने का प्रयत्न होगा। इस स्थान पर बड़े खेद के साथ कहना पड़ता है कि बहुतेरे लोग शायद यह समझते हैं कि सभा खोज के काम से कुछ लाभ उठाती है। ऐसे और अनेक अन्य विचारों से यह लोग इस काम में ठीक सहायता नहीं देते और अपने पास के ग्रन्थ दिखाने में बड़ी आनाकानी करते हैं। "आज हमको फुरसत नहीं, और दिन आइएगा," "आज मैं बाहर जाना है," "आज हमारी तबियत अच्छी नहीं," इत्यादि इत्यादि अनेक करके बहुतेरे लोग सभा के एजंट को बार बार भ्रमाया करते हैं और सैकड़ों के बाद ग्रन्थों की नोटिस लेने देते हैं। नहीं चाहते कि अपना काम छोड़ कर सभा के ही काम में एजंट के साथ पर हमको विश्वास हो गया है कि सज्जन केवल बहाने करके ग्रन्थ दिखाने से चुराते हैं। एजंट ने हमसे स्वयं ऐसा कहा तथा उनकी डायरियों में विस्तृत विवरण कर सदा ही हमें यह बातें विदित होती हैं। सभा के एजंट उसके एक मेम्बर ही उनके कथन के सत्य होने में हमें कुछ भी नहीं, क्योंकि हमने कई बार उसकी जांच और सदा उसे ठीक पाया। हमने यह सब इस कारण लिख दिया है कि यदि के प्रेमी और विद्वानगण अपने अपने स्थानों और उनके आस पास सभा की समुचित सहायता करने की कृपा करें तो इससे बहुत अधिक हो और व्यय कम आशा है कि हिन्दी-प्रेमी-मात्र पर ध्यान देंगे। सभा को सरकार से के लिये ५००) वार्षिक सहायता मिलती है, प्रायः प्रति वर्ष सभा को इससे अधिक करना पड़ता है, यहां तक कि अर्थाभाव हाल में सभा को एजंट के वेतन में १०) कमी करनी पड़ी है, अर्थात् अब उनको ४०) ठौर केवल ३०) मासिक दिया जाता है। सदा ही सफ़र करनेवाले ऐसे काम के कि जिसमें कुछ अँगरेज़ी से परिचित में अच्छी योग्यता रखनेवाले पुरुष की कता हो, कोई उपयुक्त मनुष्य इतने कम पर मिलना कठिन है। एजंट महाशय सभा के मेम्बर हैं और हिन्दी-प्रेम के कारण काम जाते हैं। तात्पर्य्य यह कि सभा इस कुछ भी लाभ नहीं उठाना चाहती और उसने लाभ उठाया है, वरन उलटा बहुत

अपनी ओर से व्यय कर दिया है। हमें आशा है कि इस ओर हिन्दी प्रेमीगण ध्यान देंगे। कुछ महाशय ऐसे भी हैं जो अपने यहाँ के हस्त-लिखित ग्रन्थ गुप्त रखना ही उत्तम समझते हैं। कतिपय लोग तो लोभवश ऐसा करते हैं, क्योंकि वे समझते हैं कि यदि किसी प्रसिद्ध प्रति की नोटिस या प्रतिलिपि हो गई तो उन की पुस्तक देखने लोग कम आवेंगे और उस पर न्यौछावर कम होगी। पर अधिकांश सज्जन इस डर से अप्राप्य ग्रन्थ-रत्नों को प्रकाशित नहीं करना चाहते कि कहीं वे "अनधिकारियों के पास न पहुंच जाँय!" ऐसे सज्जनों से हमारी सविनय प्रार्थना है कि ऐसा करने से वे अपना नाम न होने देने के अतिरिक्त उन ग्रन्थ-कारों के ऊपर बड़ा अत्याचार करते हैं जिनके ग्रन्थ उनके यहाँ आ पड़े हैं! एक तो जैसे भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी ने श्री चन्द्रावली नाटिका लिखने में कहा है, अनधिकारी लोग वैसे ग्रन्थों को पढ़ें एवं समझेंहीगे काहे को? और दूसरे यदि श्री तुलसीदासजी, श्री सूरदास, श्री स्वामी हितहरिवंशजी, इत्यादि महात्माओं की रचनाएँ इसी भाँति छिपा कर रख ली जातीं तो आज दिन उन्हें कौन जानता? उनके नाम सूर्य्य-चन्द्रवत् हिन्दी संसार में क्यों कर देदीप्यमान होते? और उनकी पीयूषवर्षिणी वाणी से हम लोगों जैसे अधम पुरुषों का कसे हित होता? हमारी समझ में जितने कुछ उत्तम ग्रन्थ ठौर ठौर छिपे रक्खे हों उन सबका प्रकाशित हो जाना ही ठीक है। आशा है कि साहित्यप्रेमी-गण लोगों को इस विषय में समझावेंगे और उत्साह देंगे। बहुत स्थानों पर पोथियों के सुरक्षित रहने का उत्तम प्रबन्ध नहीं है और पुस्तकाध्यक्ष के जीवनकाल में ही अथवा उसके पश्चात् ग्रन्थ-रत्नों के नष्ट हो जाने की सम्भावना रहती है। ऐसी दशा में सदा ही उत्तम हो यदि ऐसे महाशय अपने संचित ग्रन्थ सभा के पुस्तकालय में सुरक्षित रहने के लिए दे देवें जिससे उनके और ग्रन्थकारों के नाम अचल हो जाँय! बहुतेरे उत्तम ग्रन्थ इस भाँति प्रकाशित भी हो जायेंगे और हिन्दी का भी उपकार होगा। महाकवि सेनापति जी ने चोरी के डर से अपनी कविता छिपा डाली थी (यथा—"सुनौ महाजन चोरी होत चारि चरन की ताते सेनापति कहै तजि डर लाज को।

लीजियो बचाय ज्यौं चुरावे नहिं कोई सौंपी
वित्त कैसी थाती मैं कवित्तन के व्याज को")।

इसका परिणाम यह हुआ कि जब १९१० की सरस्वती पत्रिका में हमने उनकी रचनाओं पर आलोचना छपवाई, तब एक प्रसिद्ध साप्ताहिक पत्र को आश्चर्य्य हुआ था कि ऐसा उत्तम कवि कैसे इतने दिनों छिपा पड़ा रहा था? हम को तो आश्चर्य्य यह है कि ऐसे कवियों की रचनाएँ अब तक कैसे बची रहीं? निदान प्रत्येक हिन्दी-प्रेमी का कर्त्तव्य है कि यथाशक्ति उत्तम छिपे हुए ग्रन्थों को विदित करता जाय।

अब ग्यारह वर्ष से हिन्दी हस्तलिखित पुस्तकों की खोज हो रही है और इतने दिनों में ही अनेक अज्ञात कवियों का पता चल चुका है, अनेक जाने हुए ग्रन्थकारों की अज्ञात पुस्तकें मिली हैं, अनेक कवियों के समय ठीक ठीक निश्चित हो गए हैं, अनेकों के विषय में नई नई बातें विदित हुई हैं, अनेक उत्तम ग्रन्थ शुद्धता पूर्वक प्रकाशित हो गए, और इसी भाँति बहुत कुछ जानने योग्य सामग्री का पता चल चुका है, और आगे का काम सावधानी से चल रहा है। विस्तार भय से अधिक न लिख कर कुछ विशेष बातें नीचे दी जाती हैं। जिन महानुभावों को अधिक जानने की इच्छा हो वे प्रकाशित रिपोर्टों को गवर्नमेण्ट प्रेस, इलाहाबाद, से मँगा कर देखें। हमारी समझ में यदि सरकार कृपया इन रिपोर्टों का मूल्य कम कर दे तो अति उत्तम हो। जितना मूल्य अभी है उसका आधा मूल्य ठीक होगा।

१—चन्द बरदाई के पृथ्वीराज रासो की कई प्रतियाँ यत्र तत्र प्राप्त हुईं और इसका बड़ा संतोष-दायक परिणाम यह हुआ कि काशी नागरीप्रचारिणी सभा कई साल से रासो का एक उत्तम सटीक संस्करण प्रकाशित कर रही है। आशा है कि यह सम्पूर्ण ग्रन्थ शीघ्र प्रकाशित हो जायगा। इस ग्रन्थ के विषय में विद्वानों में बहुत कुछ वादविवाद हुआ है, क्योंकि कतिपय महाशयों का यह मत है कि रासो एक जाली ग्रन्थ है जिसे बहुत दिन पीछे किसीने चन्द के नाम से बना डाला है; परन्तु अधिकांश विद्वानों ने इसे ठीक चन्दकृत माना है। हमने अपने 'हिन्दी नवरत्न' में, जिसे हाल ही में प्रयाग की 'हिन्दी-ग्रन्थ-प्रसारक-मण्डली' ने प्रकाशित किया है, सविस्तर इसका चन्दकृत होना सिद्ध किया है।

२—गोस्वामी तुलसीदास जी की रामायण की भी अनेक प्रतियाँ देखने में आईं और उस ग्रंथ-रत्न का भी एक परम शुद्ध संस्करण इण्डियन प्रेस, प्रयाग, द्वारा प्रकाशित हो गया। मलिहाबाद, ज़िला लखनऊ, में जो गोस्वामी जी की लिखी हुई रामायण का होना कहा जाता है वह ठीक नहीं हो सकता, क्योंकि स्वयं में (शुकदेवबिहारी मिश्र) ने उस प्रति को देखा है और उसमें गङ्गा-अवतरण-वाला क्षेपक मिला! गोस्वामी जी के अक्षरों से भी (जो विवादरहित हैं) इसके अक्षर नहीं मिलते। शायद इसी कारण पुस्तकाध्यक्ष जी ने उसे बाबू श्यामसुन्दर दास जी आदि को दिखाया तक नहीं।

३—लालकृत छत्रप्रकाश जैसा उत्तम ग्रन्थ छिपा पड़ा था सो भी प्रकाशित हो गया। इस के जोड़ के ग्रन्थ बहुत नहीं मिल सकते। केशव-कृत वीरसिंहदेव-चरित्र नामक नया ग्रन्थ मिला है।

४—अब तक औपन्यासिक काव्य-ग्रन्थों (Romantic poems) में से केवल जायसी की पद्मावत प्रसिद्ध थी, पर खोज से कई और ग्रन्थ भी मिले हैं। यथा लक्ष्मणसेन की प (संवत् १५१६ में रचित), ढोलामारू की (१६०७), कुतबन की मृगावती (१५६०), मुहम्मद की इन्द्रावत, कासिमशाह-कृत हं जवाहिर, शेख़ नबी-कृत ज्ञानदीप, इत्यादि।

५—महाराजा सावंतसिंह (उपनाम नाग दास जी) कृष्णगढ़ाधिपति के कई ग्रन्थ उनकी बहिन श्रीमती सुन्दरि कुंवरि की ग नाओं का पहिले पहिल पता लगा है।

६—बिहारी सतसई की कुछ प्राचीन प्रतियों उनका एक बड़ा ही उपकारी दोहा नहीं मिला

—"सम्वत् ग्रह शशि जलधि छित,
छठि तिथि वासर चन्द।
चैत मास पख कृष्ण में
पूरन आनँदकन्द॥"

जिससे कुछ विद्वानों का ऐसा विचार हु है कि यह दोहा बिहारी-कृत है ही नहीं। हमा समझ में यह विचार ठीक नहीं, क्योंकि ए वो इसकी रचनाशैली बिहारी से बिलकु मिलती है (हम नहीं समझते कि इसके विरु कुछ महाशयों ने कैसे लिखा है); दूसरे प्राचीन प्रतियों में यह दोहा पाया जाता। यदि दो चार में छूट रहा तो कोई आश्चर्य नहीं; और तीसरे बिहारी की अन्य जानी हु बातों से जो समय उनका स्थिर हुआ है उसमें इस दोहे में लिखे हुए सम्वत् (१७१९) से कोई विरोध नहीं पड़ता। अन्त में यदि मान भी लिया जाय कि उक्त दोहा बिहारीकृत नहीं, तो भी कोई सन्देह नहीं कि उसमें दिया हु समय ठीक ही है। तब अवश्य ही किसी ऐसे व्यक्ति ने उसे लिख दिया होगा कि जिसे सत सई के समाप्त होने का समय विदित होगा। बिहारी ने अपने दोहों को ग्रन्थरूप में अपने हाथ नहीं बनाया, पर अन्त में उन्होंने अपने उत्त मोत्तम दोहों को ग्रन्थरूप में कर दिया था। इसमें भी सन्देह नहीं प्रतीत होता। इस विष पर हमारा 'हिन्दी नवरत्न' देखिए।

गोलोकवासी बाबू राधाकृष्णदास जी ने
ने "कविवर बिहारी लाल" में यह लिखा है
बिहारीजी केशवदास के पुत्र थे; पर यह बात
त्य नहीं है। खोज में हरिसेवक कवि कृत
ामरूप की कथा" नामक एक ग्रन्थ मिला है
समें कवि ने अपना वंश यों लिखा है—
ण्द्रवाह, काशिनाथ, केशवदास, परमेश्वरदास,
स, हरिसेवक। यदि बिहारीलाल जी इस
ा में होते तो इतने बड़े कवि का नाम हरि-
वक अवश्य लिखता। वल्लभ जी भी इसी वंश
हुए थे, पर बिहारीलाल के सामने उनकी
णना ही नहीं हो सकती।

७—जोधपुर के महाराजा जसवन्तसिंह-
त केवल एक सुप्रसिद्ध ग्रन्थ (भाषा-भूषण)
व तक विदित था, पर खोज से सात और
न्थों का पता लगा। ऐसे ही महात्मा गोरख-
ाथ, कबीर, रैदास, प्राणनाथ, इत्यादि के कई
क ग्रन्थ मिले हैं। गोरखनाथ जी के ग्रन्थों को
स कर और उनके विषय में अन्य भाँति की
वेषणा करके बाबू श्यामसुन्दरदास ने उनका
मय १४वीं ईसवी शताब्दी स्थिर किया है।
सी भाँति कबीरदास जी का मृत्युकाल
म्वत् १४६७ और १५०७ के बीच में निश्चित
ुआ है।

८—आज़मगढ़ में एक महाशय के यहाँ
ारहवीं शताब्दी की एक पुस्तक सुनी जाती है,
र उन्होंने उसे अब तक दिखलाया भी नहीं!
नेक बहानों से ये बात टाल जाते हैं। देखें
ब सफलता होती है।

९—भूपति कवि कृत भागवत पुराण का
नुवाद प्राप्त हुआ है जो सम्वत् १३४४ में
नाया कहा जाता है। थोड़े दिन हुए जोधपुर
े मुंशी देवीप्रसाद जी ने 'सरस्वती' में लिखा
ा कि भूपति का समय सत्रह सौ चवालीस है,
र इसमें हमको सन्देह होता है कि मुंशी जी
े जिस उर्दू वाली प्रति से यह बात निकाली
है उसमें कदाचित् तेरह के ठौर सत्रह भ्रम से
लिख गया हो, अथवा उन्होंने ही भूल से और
का और पढ़ लिया हो, क्योंकि उर्दू की लिखावट
में १३ के ठौर सत्रह पढ़ लेना कोई बड़ी बात नहीं
है। इसका ठीक निबटेरा तब हो सकेगा जब
सम्वत् १३४४ व १७४४ दोनों के पंचांग बनाकर
देखा जाय कि कौन से वर्ष में "मार्गशीर्ष सुदी
११" "बुधवार" को पड़ती है, क्योंकि जिस प्रति
की नोटिस सन् १६०२ ईसवी की खोज की
रिपोर्ट में लिखी गई है उसमें यह तिथि और
दिन लिखे हैं। इसका अनुसन्धान करके हम
निश्चय-पूर्वक फिर कभी लिखेंगे: अभी हमारी
समझ में उर्दू वाली प्रति के सामने हिन्दी-
वाली अधिक मान्य है। यदि यह बात ठीक है
तो भागवतपुराण बोपदेव जी की बनाई नहीं
हो सकती है, क्योंकि उनका समय भूपति जी से
प्रायः मिलता जुलता पाया जायगा और पुराने
समय में यह असम्भव था कि कोई ग्रन्थ दस
बीस पचास वर्ष में ही इतना नामी हो जाता
कि उसके अनुवादक प्रस्तुत हो जाते।

१०—लल्लूलाल-कृत एक कोश का पता चला
है जिसमें ३००० अंगरेज़ी शब्द हिन्दी व उर्दू
अर्थ सहित लिखे हैं। इसी भाँति अन्य अनेक
उत्तम ग्रन्थ मिले हैं जिनका हाल लिखने से
लेख का कलेवर बहुत बढ़ जायगा। विदित
हुआ है कि राजपूताने में ईसवी बारहवीं और
सोलहवीं शताब्दियों के बीच में चारण और
बन्दीजनों ने अनेक ऐतिहासिक काव्य रचे हैं।
उक्त प्रान्त में समुचित प्रकार से खोज होने पर
उनका अवश्य ही पता चलेगा जिससे भारत-
वर्ष के इतिहास विषयक बहुत सी अमूल्य
सामग्री प्राप्त होने की आशा की जा सकती है।

इस सम्बन्ध में यह सूचित कर देना आव-
श्यक है कि हमारी प्रान्तिक सरकार ने अभी यह
कहा है कि संयुक्तप्रान्त मात्र के भीतर जो खोज
का काम किया जाय उसीके लिए यह सहायता

दे सकती है, पर हमको दृढ़ विश्वास है कि ऊपर की बात जान कर, और इस विचार से कि देश भर में इस खोज के होने पर अनेकानेक प्रकार के विद्या-सम्बन्धी लाभ प्राप्त होंगे, हमारी विवेकी सरकार इस काम को बन्द न होने देगी। यदि किसी कारण प्रान्तीय सरकार इस प्रान्त के बाहरवाले काम के लिए धन व्यय करना उचित न समझे तो इसमें सन्देह नहीं कि उस के द्वारा भारत-सरकार से अवश्य ही सहायता मिल सकेगी।

अब तक खोज में जो पुस्तकें मिली हैं वे अधिकांश में १७वीं, १८वीं और १९वीं शताब्दियों में लिपि-बद्ध हुई हैं। केवल थोड़ी सी पुस्तकें १६वीं शताब्दी में लिखी हुई पाई जाती हैं। अधिकांश ग्रन्थ देवनागरी में ही लिखे पाए जाते हैं। पर कोई कोई कैथी और मारवाड़ी मिश्रित अथवा गुरुमुखी लिपियों में भी यत्र तत्र मिलते हैं। खोज में जो ग्रन्थ मिलते हैं उनमें से उत्तम ग्रन्थों की नोटिसें ली जाती हैं और जिन ग्रन्थों की नोटिस पहले ली जा चुकी हो, अथवा जो बिल्कुल शिथिल व बेकाम हो, उनको या तो छोड़ दिया जाता अथवा परिशिष्ट में नोट कर लिया जाता है।

यह विदित ही है कि विक्रमीय १६वीं, १७वीं और विशेषतः १८वीं शताब्दी में हिन्दी के उत्तमोत्तम कवि वर्त्तमान थे। गद्य में यों तो चिट्ठी, परवाने, इत्यादि पृथ्वीराज के समय से मिलते हैं, पर उसके प्रथम लेखक महात्मा गोरखनाथ जी हुए। उनके पश्चात् गोस्वामी विट्ठलनाथ जी एवं गोकुलनाथ जी ने गद्य ग्रन्थों की रचना १७वीं शताब्दी में की। लोगों का विचार था कि सदल मिश्र और लल्लूलाल खड़ी बोली में गद्य के प्रथम लेखक हैं, पर १७वीं शताब्दी (सम्वत् १६८०) में जटमल ने गोराबादल की कथा इसीमें लिखी थी, और १८वीं विक्रमीय शताब्दी में सूरति मिश्र ने भी बैतालपचीसी नामक गद्य-ग्रन्थ रचा था। इनके बहुत दिनों पीछे संवत् १८६० के आस पास लल्लूलाल व सदल मिश्र हुए। फिर भी कहना ही पड़ता है कि वास्तव में हिन्दी गद्य का विकाश राजा लक्ष्मणसिंह, राजा शिवप्रसाद और बाबू हरिश्चन्द्र के समय से ही हुआ।

कुल मिलाकर ११ वर्ष की खोज से प्रायः ३२०० हस्तलिखित पुस्तकों की जाँच हुई जिनमें प्रायः २२०० ग्रन्थों के नोटिस लिए गये। इनके रचयिताओं में से प्रायः १३०० कवियों का पता चला है जिनमें केवल दो (चन्द और जल्ह) बारहवीं शताब्दी में हुए, दो (नरपति ना और भूपति) १३वीं में, दो (नारायणदेव और गोरखनाथ) १४वीं में, और ७ (कबीर, दा रैदास, धर्मदास, नानक, लालसा और वि दास) १५वीं में थे। सोलहवीं शताब्दी कविता का श्रोत ही फूट निकला और उसकी अटू धारा बह चली। अतः १६वीं शताब्दी के कवियों के ग्रन्थों की नोटिसें ली गईं, १७वीं १७५, १८वीं के १७१ और १९वीं के २८७ इनके अतिरिक्त प्रायः ४५० कवियों का सम विदित न हो सका। काम बराबर हो रह है। अब यह लेख बहुत बढ़ गया, इससे खोज विषयक चक्र के साथ हम इसे समाप्त करते हैं।

हिन्दी हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज से प्राप्त पुस्तकों व कवियों का समयचक्र ।

	कितनी पुस्तकों की जाँच हुई	कितनी पुस्तकों के नोटिस हुए	कितने कवियों के ग्रन्थ मिले	किन किन शताब्दियों (ईसवी) में कितने कवि हुए									
				१२वीं	१३वीं	१४वीं	१५वीं	१६वीं	१७वीं	१८वीं	१९वीं	२०वीं	कुल
०	२५७	१६६	९०	१*	१†	१‡	१§	२२	१८	१८	१२	...	१६
१	२५०	१३६	७३	१*	...	...	१¶	१२	१२	१९	१५	...	१३
२	३२१	१२५	७३	१*	१††	१‡‡	२¶¶	६	१५	१६	१३	..	१८
३	१९४	१३५	७७	..	...	१‡‡	..	३	१८	२६	२३	..	६
४	१७७	११४	८१	...	...	..	...	१	१५	१८	३८	..	९
५	१७२	९८	७७	...		..	.	५	१२	३४	२१	...	५
६	२५०	२११	१३७	...	..	...	३***	९	२०	२२	३९	..	४४
०७	२९३	२२१	१४१	१‡	...	.	.	१५	२९	२५	२९	...	४२
०८	६००	४६९	२६१	...	...	...	२†††	४	१८	४३	४२	...	१५२
०९	३६५	२५६	१५८	..	...	.	१¶¶	३	९	२९	३०	१२	७४
१०	२८४	२४९	१२२	...	.	.	१¶¶	४	९	२१	२५	२	६०
ल धर्व	३१६२	२१८३	१२९०	४ (२)**	२	३ (२)	११(७)	८४	१७५	२७१	२८७	१४	४३९

न्द (और उसीके साथ जल्ह जिसने रासो
समाप्त किया) ।

नरपति नाल्ह

नारायणदेव ।

दासो ।

कबीरदास ।

भूपति ।

‡‡ गोरखनाथ ।

¶¶ कबीर व रैदास ।

*** कबीर, धर्मदास व नानक ।

††† लालसा व विष्णुदास ।

** वास्तव में कुल १२८३ कवि हैं, परन्तु दो दो तीन तीन बार उसी कवि के ग्रन्थ और और सालों में अन्य अन्य स्थानों में देखे जाने से गणना में ७ का अन्तर पड़ गया ।

हिन्दी और मुसलमान।

लेखक—सैयद अमीर अली (मीर)

"समय समय सुन्दर सबै, रूप-कुरूप न कोय।
मन की रुचि जेती जितै, तितै तिती रुचि होय" ॥ (तुलसी सतसई)

प्रस्तावना।

भारतवर्ष पुराने धनी मानी और उदार पुरुष हैं। कुछ दिनों से आप अस्वस्थ हैं। आपकी अस्वस्थता का समाचार सुन कर कविराज हिन्दूराम, हकीम इस्लाम ख़ां और डाक्टर क्रिश्चियन प्रभृति अनुभवी लोग आये। बहुत कुछ उधेड़-बुन के पश्चात् रामकृपा से रोग की पहिचान हुई, मालूम हुआ कि वृद्धावस्था में भी आप अविश्रान्त परिश्रम करते रहते हैं, इससे इनका मस्तिष्क कुछ विकृत हो गया है; वे ऐसी बातें करते हैं कि उनका अभिप्राय एक ही समय में एक ही रूप से सब लोग नहीं समझ सकते। जिस समय वैद्य समिति एकत्रित थी और सब लोग रोग-परिज्ञान-चेष्टा कर रहे थे, आप कुछ ऐसी भाषा में बात-चीत करते थे कि लोग सहज में समझ न सकते थे। इसीसे रोग की पहिचान विशेष रूप से हुई। निदान निश्चय हुआ कि इन्हें एक-राष्ट्र-भाषा-वटिका का सेवन लगातार कराया जावे तो यह रोग समूल दूर हो जावे। सब लोगों ने अनेक भाषा बूटियों से (नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा) तैयार की हुई हिन्दी-भाषा वटिका को चुना। औषधि तो किसी तरह खींचा तानी के बाद तय हुई, लेकिन किस अनुपान से दी जाये ! जब यह सवाल पैदा हुआ, तब बड़ा गोलमाल उपस्थित हुआ। कविराज ने कहा कि नागरी के 'क्वाथ' में देने से शीघ्र लाभ होगा, क्योंकि यह अनुपान यहाँ के जल-वायु के अनुकूल है। हकीम जी बोले, नहीं, "फ़ार्सी के अर्क़ में मुरक्किब करके देना चाहिये, जल्द सेहत हासिल होगा, मैंने इसे आज़मा कर देखा है, कभी नाकामयाबी नहीं होगी"। उधर डाक्टर साहब अपनी जुदी ता-ना-री-री लगाये थे। आपका मत था कि "नहीं, सिर्फ़ रोमन नरवाइन टानिक और एका के साथ हल करके देने से इनका 'ब्रेन (दिमाग़) ठीक काम करने लगेगा, क्योंकि इन दिनों हवा का रुख़ बदल गया है, मेरे अनुपान द्वारा औषधि दी जावे, तो अवश्य लाभ होगा"। देखते देखते बात का बतङ्गड़ बन गया, अपनी अपनी ढपली अपना अपना राग गाने लगे, ख़ैर हुई कि हाथा-पाँही की नौबत नहीं आई, रोगी बिस्तर पर रहा, समिति के योग-दाता नौ-दो-ग्यारह हुए. लेकिन वे लोग निश्चेष्ट नहीं हुए। भारतवर्ष से उन तीनों का घना सम्बन्ध है, तीनों उसी के दिये सहारे से जीते जागते हैं, इससे वे तीनों पृथक् पृथक् उपाय विचारने लगे। हिन्दूराम ने झट से 'एक-लिपि-विस्तार-परिषद्' नामक सभा खोल कर 'देवनागर' द्वारा अपना मत प्रकाश करना प्रारम्भ कर दिया। उधर हकीम जी की प्रेरणा से 'मुस्लिम लीग' तैयार हुआ जो ईरानी

लिबास में हिन्दी (उर्दू) रानी को सजा कर, आँखें ठगढी करने लगा। डाक्टर साहब से कुछ न बन पड़ा तो 'मुल्ला की दौड़ मसजिद तक' की कहावत के अनुसार आप एक दो अँग्रेज़ी अखबारों के एडीटरों से मिले, जिन्होंने सरकार को तथा भारतवर्ष को सलाह दी कि वह हिन्दी को लैटिन गौन पहिनाकर ख़ासी मेम साहिबा बना देवें।

यह सब झगड़े देख कर भारतवर्ष के सच्चे शुभचिन्तकों का कलेजा दहल उठा। अतः गत वर्ष से उन्होंने हिन्दूराम जी का पक्ष लेकर एक 'हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन' स्थापित कर लिया। गत वर्ष उसने भारतवर्ष के ज्ञान-भाण्डार-स्थल काशी में अपने विचारों की खिचड़ी पकाई थी। इस वर्ष उसका द्वितीय सम्मेलन प्रयाग में होगा। उसमें हकीम इस्लाम ख़ाँ ने जो अनुपान बताया है उस पर तथा हिन्दूराम जी के अनुपान पर विचार करने का अल्प भार सम्मेलन ने इस दास के सिर पर रक्खा है। अतः उचित है कि अपने स्वतन्त्र विचार सम्मेलन द्वारा समस्त देशभाइयों के सामने निवेदन करूँ।

तात्पर्य यह है कि इन दिनों एक नवीन लाभदायक आन्दोलन एक-राष्ट्र-लिपि तथा एक-राष्ट्र-भाषा के प्रचारार्थ चल रहा है। देश में दो समुदाय विशेष बड़े हैं, वे हिन्दू और मुसलमान हैं। इन्हीं दोनों जातियों में मतभेद है। यद्यपि दोनों का एक लक्ष्य है, तो भी दोनों दो पृथक पृथक मार्ग का अनुसरण करना चाहते हैं। विगत वर्ष इयाजातीय समिति के प्रेसीडेण्ट सर हेनरी काटन साहब (भूतपूर्व चीफ़-कमिश्नर, आसाम) ने अपने व्याख्यान में ऐसे भाव के कुछ वाक्य कहे थे कि "अभी तक आप लोग 'जातीय समिति' इस नाम को सार्थक नहीं कर सके हैं, चन्द पढ़े-लिखे हिन्दू लोग ३० कोटि जन-संख्या-वाले देश के (जिसमें अनेक जातियाँ हैं) प्रतिनिधि होकर काम नहीं कर सकते जब तक सब जातियों के मुखिया संयुक्त न हों। विशेष करके आपके पड़ौसी मुसलमान लोग जब तक आपसे न मिलें, तब तक आप लोग बहुमत प्राप्त नहीं कर सकते, और जब तक ऐसा न हो तब तक सरकार आपकी बातों पर विशेष ध्यान नहीं दे सकती", आदि आदि।

बात ठीक है लेकिन सुनता कौन है? हिन्दू भाई सोचते होंगे, वाह जी! यह तो हमारा घर है, हमारी ख़ुशी है, हम चाहे जिस तरह रहेंगे, और चाहे जिससे जैसा कहेंगे। उधर मुसलमान भाई सोचते होंगे कि ऐसा क्यों! अभी कल हमारे हाथ से मुल्क गया है और हम भी यहाँ के अब बाशिन्दे हैं, इससे हमारा इसमें हिस्सा है; अतः हम भी अपनी मनमानी करेंगे। भाइयो! बात दोनों की ठीक है, पर थोड़ी भूल है। पिछली बातों को भूल कर वर्तमान काल पर दृष्टि करके आप जिस घर में रहते हैं, मिल कर उसकी रक्षा कीजिए। अब समय मत-भेद का नहीं है। अङ्गरेज़ी राम-राज्य वर्तमान है। हम दोनों (हिन्दू-मुसलमान) उसकी प्रजा हैं। ऐसी अवस्था में एक देश के निवासी होने से नैतिक तथा दैविक घटनाओं का असर हम दोनों पर समान रूप से पड़ता है, तब बुद्धिमानी इसीमें है कि दोनों मिल कर काम करें, जिससे घर बना रहे। अन्यथा घर गिरने पर व्यर्थ धूप, पानी और शीत का कष्ट उठाना पड़ेगा।

'मेल करो' ऐसा कहना जितना आसान है, उतना ही करके दिखाना कठिन है। गुसाईं जी ने ठीक ही कहा है—

पर उपदेश कुशल बहुतेरे।
जे आचरहिं ते नर न घनेरे॥

हिन्दू-मुसलमानों में ऐक्य होना बिल्कुल असम्भव नहीं, लेकिन धर्म की ऊपरी अन्ध भक्ति तथा हठ दोनों दलों को मिलने नहीं देता। यह दीवार 'क़हक़हा' के समान निलम्ब रूप में

सम्बन्ध है। सैकड़ों वर्ष व्यतीत होने पर भी हिन्दू मुसलमानों को मानो महमूद गज़नवी, और मुसलमान हिन्दुओं को शिवाजी रूप में देख रहे हैं; नहीं कह सकते, यह कहाँ की बुद्धिमानी है। सैक्सन जाति ने जर्मनी से जाकर इङ्गलेण्ड में अपना आधिपत्य जमा प्रेमभाव उत्पन्न कर लिया। बौद्धों ने भारत से जाकर तिब्बत, चीन और जापानादि देशों में अपना अस्तित्व सिद्ध कर दिखाया। डच लोगों ने ट्रांसवाल को अपना लिया। स्वयं भारतवर्ष के अनार्यों को आर्यों ने सर्वथा घुला लिया। परन्तु आश्चर्य की बात है कि यहीं स्थिर जाति (हिन्दू-मुसलमान की) अब तक पास रहते हुए पुरैन से पानी के समान पृथक है। अगर हम लोग चाहें तो अपने अपने धर्म का पालन करते हुए राष्ट्र की भलाई के सम्बन्ध में एक दूसरे के सहायक तथा साथी बन सकते हैं। वर्तमान जापान जिसमें शिन्तो, बौद्ध और ईसाई धर्मपालक प्रजा है, साक्षीरूप वर्तमान है, शिन्तो से बौद्ध और दोनों से ईसाइयों की उत्पत्ति हुई, तो भी जन्मभूमि के नाते सब एक चित्त से काम करते हैं। हम भी एक ही हैं। यदि दुराभाव का पर्दा हट जावे तो दोनों का मङ्गल हो सकता है। न्यायशीला अँग्रेज़ गवर्नमेण्ट ने शिक्षा का प्रचार इसी अभिप्राय से भारत में किया और कर रही है कि लोग विचारवान हों और अपना हित-अनहित विचार कर योग्यतापूर्वक काम करें।

एतद्देशीय भाषा और हिन्दी की व्युत्पत्ति।

आदमी का आदिमस्थान कौन है? उन्होंने सब से पहिले इशारों को छोड़ कर किस प्राकृत भाषा का प्रयोग किया? धीरे धीरे वह पृथ्वी पर किस तरह फैले? और इस परिवर्तन के कारण उनकी भाषा में कितना अन्तर होता गया? तथा उन्होंने अक्षरज्ञान कब प्राप्त किया जिससे उनकी भाषा को कुछ प्रौढ़ रूप प्राप्त हुआ? इत्यादि प्रश्नों के विषय में यहाँ पर विचार करने की आवश्यकता नहीं। मैं इस स्थान में केवल साधारण विचार इस देश की उस भाषा पर करता हूं जो देश का नाम सार्थक करनेवाली है।

जापान के लोग प्रान्त प्रान्त में चाहे जिस प्रान्तिक भाषा का प्रयोग करते हों, पर वहां की राष्ट्रभाषा जापानी है। इसी तरह चीन की चीनी, ब्रह्मदेश की ब्रह्मी, तातार की तातारी और अफ़गान की अफ़ग़ानी भाषा कहलाती है। यही बात और देशों के सम्बन्ध में है। देश की भौगोलिक परिभाषा में भी देश भर की एक प्रधान भाषा का होना संयुक्त है। तब 'हिन्दुस्थान' को इस नियम से देश कहें चाहे महादेश, परन्तु उसका नाम यह मानने को बाध्य करता है कि यहां की भाषा का नाम 'हिन्दुस्थानी' होना चाहिये। यही हिन्दुस्थानी भाषा थोड़े से परिवर्तन के साथ हिन्दी कहलाती है। इसके सिवाय प्रायः देश की भाषा और जाति का एक ही सङ्केत रहता है। जब सबसे पहिले मुसलमान इस देश में आये तब वे सिन्धु नद से आगे न बढ़ सके, एतदर्थ सिन्ध देश का बहुत सा भाग जीत कर सरदार मुहम्मद क़ासिम ने अपना राज्य स्थापित किया। यह सन् ७१२ ईसवी की बात है। कुछ लोग कहते हैं कि उस समय से ही 'सिन्धु' देश के रहनेवालों को 'हिन्दु' और उनकी भाषा 'सिन्धी' को 'हिन्दी' नाम मिला, 'सकार' तो 'हकार' से बदला गया, और 'धकार' 'दकार' से। इसकी दलील में लोग 'सप्ताह' को 'हफ़्ता' से मिला कर बताते हैं। मुहम्मद क़ासिम ने सिन्धु देश में जिस जगह अपना क़याम इख़्तियार किया था, वह सिन्धु नदी का एक पहाड़ी दर्रा था। मुहम्मद क़ासिम की हुकूमत लगभग तीन वर्ष सिन्धु देश में रही। इस मध्य में उसने अपने राज्य का दफ़्तर सिन्धु देश की प्रचलित भाषा सिन्धी में ही रक्खा था, और वह सिन्ध देश के रहनेवालों के ही हाथ में था। उसी 'सिन्धी'

शब्द को 'हिन्दी' नाम से मशहूर किया। इस तरह मुल्क का नाम हिन्दुस्थान, रहनेवालों का हिन्दू और भाषा का हिन्दी पड़ा। क्या अजब है कि यूरोप के लोगों ने भी मुसलमानों का अनुकरण किया हो। सिन्धु नदी का नाम अंग्रेज़ी में 'इण्डस' (Indus) है। इसी शब्द से देश का नाम इण्डिया और रहनेवालों तथा भाषा का नाम 'इण्डियन' पड़ा हो, ऐसा मालूम होता है। परन्तु मुझे यह मत पसन्द नहीं और यह विश्वास-योग्य भी नहीं, क्योंकि क़ासिम के पहिले भी खलीफ़ा उस्मान ने सन् ६३६ ईस्वी में अपनी फ़ौज हिन्दुस्थान में सूरत और भड़ौंच को लूटने के लिए भेजी थी। इसके सिवाय 'शब्द-कल्पद्रुम कोष' में 'हिन्दू' शब्द (हिन्दुः) मौजूद है, जिसका अर्थ 'हीन-जाति-घातक' अथवा 'हीन जाति को सताने वाला' है। यह नाम आर्य्य लोगों को शायद उस समय मिला हो जब उन्होंने मध्य एशिया से आकर इस देश को लिया था, और यहाँ के अनार्य्यों (मूल निवासियों) को पहाड़ों में भगा दिया था। इन्हीं आर्य्य जाति के राजाओं से मुसलमानों को लड़ना पड़ा था। सम्भव है, उन्हींके नाम से मुसलमानों ने देश का नाम हिन्दुस्थान और उनकी भाषा का हिन्दुस्थानी या 'हिन्दी' रक्खा हो। इस 'हिन्दी' शब्द से वर्त्तमान में प्रचलित हिन्दी का अर्थ ग्रहण न करना चाहिए, हिन्दी को वर्त्तमान रूप कई सौ वर्षों के बाद मिला है, उस समय की हिन्दी का नमूना मुझे प्राप्त न हो सका।

मुंशी देवीप्रसाद जोधपुरी एक विद्वान इतिहास-लेखक हैं। आपके अतुल परिश्रम से ही हिन्दी-साहित्य को मुसलमानों के राज्य काल की सच्ची घटनाओं का अनुभव प्राप्त हुआ है। आपने प्राचीन मुसलमानी इतिहास का जो कुछ पता लगाया है उससे सिद्ध है कि मुसलमानों के आगमन से बहुत पहिले यहाँ हिन्दी भाषा जारी थी, राज-काज सब हिन्दी भाषा में ही होते थे। जब मुसलमान आये, तब उन्होंने जितना जितना भाग (प्रान्त) इस देश का जीता, उतने उतने में प्राचीन दफ़्तर उनके कर्मचारियों सहित 'हिन्दी' बोली में रहने दिये। इस युक्ति से उन्हें बड़ी सहायता मिली। मैं समझता हूँ कि इस 'हिन्दी' शब्द से वैसा ही अर्थ ग्रहण करना चाहिए, जैसा अरब से अरबी और ईरान से ईरानी आदि का हो सकता है, अर्थात् यह कि देश के नाम के साथ यहाँ की भाषा का नाम (हिन्द से) 'हिन्दी' हुआ। तब हिन्दी शब्द के अन्तर्गत देश भर की भाषाएँ आ सकती हैं, लेकिन ऊपर कहे हुए हिन्दू लोग उस समय जिस बोली का प्रयोग करते रहे होंगे 'हिन्दी' नाम उसी भाषा को मिलना न्यायसङ्गत है। प्राचीन हिन्दी का नमूना देने का एक अलग साधन बादशाही ज़माने के सिक्के हैं। मुसलमानों से पहिले राजाओं के समय में जो सिक्के चलते थे उन्हींका अनुकरण मुसलमानों ने किया; नाम बदलने के सिवाय और कुछ फेर-फार सिक्कों में नहीं किया। बादशाहों के सिक्कों पर क्या लिखा रहता था उसका नमूना नीचे दिया जाता है—

नम्बर	नाम बादशाह	सिक्के पर हिन्दी अक्षरों में नाम	समय
(१)	मुईजुद्दीन मुहम्मद	(१) श्री महम्मद बिन साम	सन् ११९३ ईसवी के बाद १२०६ तक
	साम व शहाबुद्दीन गोरी	(२) श्रीमद हमीर श्री महमदसाम	
(२)	शम्सुद्दीन अलतमश	श्री हमीर श्री समसदिण	१२११ से १२३६ तक
(३)	सुल्ताना रज़िया बेगम	श्री हमीर, श्री सामन्तदेव	१२३६ से १२३९ तक
(४)	गयासुद्दीन बलबन	श्री सुलतां गयासुदी	१२६५ से १२८७ तक
(५)	जलालुद्दीन फ़ीरोज़ खिल्जी	• श्री सुलतां जलालुदी	१२९० से १२९५ तक
(६)	अकबर बादशाह	श्रीराम	१५५६ से १६०५ तक

उल्लिखित तालिका से उस समय हिन्दी कैसी लिखी जाती थी और मुसलमान बादशाह उसे किस दृष्टि से देखते थे, जाना जाता है। १२वीं सदी में जसी हिन्दी लिखी जाती थी, वैसी १६वीं सदी शुरू होते तक न रही, 'स्री' के बदले शुद्ध 'श्री' शब्द हो गया।

सच तो यों है कि 'हिन्दी' की जैसी क़दर मुसलमान बादशाह और सरदारों ने की, वैसी कदाचित् हिन्दू राजा-महाराजाओं से भी न बन पड़ी होगी; तो भी आज 'हिन्दी' के ढटने को यथोचित स्थान नहीं मिलता जो अपने घर की क़दीम हक़दार है। इसका कारण आगे चलकर स्पष्ट होगा। हिन्दी बहुत दिनों तक मुसलमान बादशाहों के मुँह-लगी रही, परन्तु सर्व-देश-व्यापी बोली न हो सकी, इसका कारण क्या है!

हिन्दी राष्ट्रभाषा क्यों नहीं हो सकी!

एक चक्रवर्ती राजा के राज्य में जिस तरह अनेक अधीन (करद) राजा रहते हैं, इसी प्रकार एक चक्रवर्ती भाषा का भी अनेक प्रान्तिक भाषाओं पर आधिपत्य रहता है। हिन्दुस्थान को छोड़ कर दूसरे सभ्य देशों में ऐसा कोई अन्य देश नहीं है जहां कोई राष्ट्र-भाषा न हो। 'हिन्दी' देश-व्यापी भाषा क्यों नहीं हो सकी इसका कारण मेरी समझ में हिन्दुओं का आधिपत्य न रहना ही है। देश की राष्ट्रभाषा का घना सम्बन्ध राजा से रहता है। प्रकृति इसकी गवाही देने को तैयार है। ग्रीष्म काल में वायु-मण्डल तप्त, वर्षा में आर्द्र, और शीत काल में शीतल अपने आप हो जाता है। यही बात भाषा के लिए है। यहाँ जिस भाषा पर राजा की इच्छा का प्रभाव पड़ता रहता है, वह उसी रूप में परिवर्तित हो जाती है।

जिन दिनों इस देश में हिन्दुओं का राज्यकाल था, उस समय समयानुसार प्राकृत और संस्कृत इस देश की प्रधान भाषाएँ रहीं। धार्मिक चर्चा राजकाज और पारस्परिक-व्यवहार इन्हीं भाषाओं में होते रहे। बौद्धों के राज्य में 'पाली' भाषा का अधिकार हुआ। इसके सिवाय बोलियों (प्राकृत और संस्कृत के आधार से) अन्य अपभ्रंश भाषाएं बन गईं। हिन्दी भी इनमें से एक है। जिस समय हिन्दी भाषा का जन्म हो चुका था और वह हिन्दुओं की गोद में पाली जा रही थी, उसी समय दूसरे देशवालों का आगमन इस देश में हो गया। यदि वो अब तक भी यहाँ तक भी हिन्दी भाषा पर हिन्दुओं के

प्रेम का प्रभाव पड़ कर वह राजमान्य भाषा हो जाती तो निश्चय हिन्दी राष्ट्र-भाषा बन जाती; परन्तु ऐसा न हो सका। मुसलमान बादशाहों के आगमन से उसका अस्तित्व तो बना रहा, परन्तु बढ़ती कुछ काल के लिए रुक गई। स्मरण रहे, यह बढ़ती तुरन्त ही नहीं वरन् बहुत काल पीछे रुकी। इसके साथ ही गद्य की न्यूनता और छापाखानों का अभाव भी हिन्दी के प्रस्तार में बाधक हुआ।

हिन्दी का उत्पत्तिकाल।

डाक्टर ग्रियर्सन साहब के मत को लेकर पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी की पैदायश का समय हज़रत ईसा की ११वीं शताब्दी बताया है। यह एक नयी खोज है। इससे सहसा इस पर अविश्वास नहीं होता, लेकिन सन्देह अवश्य होता है। कारण यह है। "शिवसिंहसरोज" के कर्त्ता ने 'पुष्य' नामक व्यक्ति को भाषा का पहिला कवि माना है। कहना नहीं होगा कि 'भाषा' शब्द का अर्थ आजकल 'हिन्दी' बोली ग्रहण होता है। पुष्य कवि ने संवत् ७७० में संस्कृत अलङ्कार को भाषा के दोहरों में लिखा। 'दोहरा' शब्द डिङ्गल भाषा का स्मरण दिलाता है। पहिले पहिल कदाचित् डिङ्गल भाषा में ही कविता हुई हो। डिङ्गल भाषा हिन्दी से बहुत निकट सम्बन्ध रखती है। इससे शिवसिंह ने उसे 'हिन्दी' के अस्तित्व में आना कविता लिखी होगी। मुग़ल बादशाह जिस प्रकार हिन्दी की कविता के अनुरागी थे, उसी प्रकार डिङ्गल के भी।

मुन्तखिब-उत्तवारीख में एक दोहरा डिङ्गल भाषा का औरङ्गजेब ने लिखा है, वह यह है:—

होली में है चाकरी है ह बड़े [illegible]।
[illegible]

फिर संवत् ९०० में रावल खुमानसिंह सिसौदिया चित्तौर-नरेश ने खुमान-रासा नामक भाषा कविता का ग्रन्थ निर्माण किया। यह ग्रन्थ भी मारवाड़ प्रदेश का होने से निश्चय डिङ्गल भाषा में लिखा गया होगा। 'पृथ्वीराज रायसा' और मुसलमानों के इतिहास से भी सिद्ध है कि इस देश के राज-काज में वह हिन्दी भाषा थी जिसे मुसलमान हाकिम क़ासिम ने इस देश में पाई थी और क़ायम रक्खी थी और जो अकबर के समय तक बराबर जारी रही। तो सिद्ध होता है कि सातवीं सदी में इस देश में हिन्दी का प्रचार था। यदि द्विवेदी जी ने शुद्ध हिन्दी की उत्पत्ति ९०० वर्ष पहिले मानी हो तो भी उसके पहिले किसी ऐसी हिन्दी का प्रचार होगा जिससे वर्त्तमान हिन्दी का जन्म हुआ है। 'हिन्दी' यह एक असीम सरिता है, इसके उद्गम-स्थान का पता तो मिलता है कि हिन्दुओं के घर से इसका जन्म हुआ, लेकिन आगे बढ़ने पर इसमें कितनी सहायक बोलियां मिलीं हैं और इसका पतन-स्थान कहां होगा यह जानना कठिन है। 'हिन्दी' बोली को एक प्रकार का पेटेण्ट 'टानिक मिक्सचर' कह सकते हैं जो प्रत्येक प्रकार के रोगी को दिया जा सकता है। भारत के प्रत्येक प्रान्त में इसके द्वारा काम चल सकता है, यही इसकी उत्तमता का प्रमाण है। अब हिन्दी की उत्पत्ति का ठीक समय ठहराना कठिन है। परन्तु इतना निश्चय है कि आज से १२०० वर्ष पहिले भी इस देश में हिन्दी बोली का प्रचार था। वह बस्तों में थी, उसमें कविता होती थी, लेकिन उसमें राजाओं के अधिकार शिलालेख, ताम्रपत्र और धर्म-ग्रन्थों का लिखा जाना नहीं पाया जाता। इसीसे उसके राज भाषा होने में सन्देह है। मुसलमानों के आगमन के पहिले तक हिन्दी का पहिला विकास काल और पश्चात् दूसरा हुआ, ऐसा कहना अनुचित।

विजित जाति की भाषाओं पर विजेता की भाषा पर असर।

पूर्व में यह बात बतलाई गई है कि वायुमण्डल पर ऋतु-प्रभाव के समान भाषा पर राजा की इच्छा का असर स्वाभाविक रीति से पड़ता है। परन्तु यह बात भी स्वभावतः सिद्ध है कि यद्यपि सूर्य-किरणें वायु-मण्डल को ऋतु के अनुसार तप्त अथवा शीतल तो कर देती हैं, तथापि स्थानीय भूमिजन्य विकार वाष्प द्वारा उसमें मिले बिना नहीं रहते, फिर चाहे उनका जैसा प्रभाव हो। इस बात की सिद्धि के लिए मैं इतर देशों की बात न कह कर इसी (हिन्दुस्थान) देश की बात कहता हूं।

सार्थक बोलना यह मनुष्य का स्वाभाविक धर्म है। यदि उसे प्रकृति से बोलने की शक्ति प्राप्त न हुई होती, तो वह इतर जीवधारियों के समान सृष्टि के अनादि काल से अब तक अवनतिशील रहता। उसकी भाषा उसके हृदय के अभिप्राय को उसी प्रकार प्रकट करती है जैसे अग्नि उष्णता को अथवा चन्द्रमा शीतलता को। परन्तु जब दो भिन्न-भाषी एक जगह एकत्र होते हैं तब बहुत बड़ी कठिनाई का सामना पड़ता है। कुछ दिनों तक विवश उन्हें इशारों से काम लेना पड़ता है, जो स्वभावतः समस्त पृथ्वीवासी मनुष्यों के एक से हैं। पश्चात् एक दूसरे का सामीप्य और नित्य नैमित्तिक व्यवहार एक ऐसी भाषा उत्पन्न कर देते हैं कि दोनों का काम चलने लगता है। ऐसे नमूने इतर प्रान्त अथवा देश से आये हुए (पञ्जाबी, मद्रासी, बङ्गाली, अफ़ग़ान और अङ्गरेज़ आदि) लोगों में सदा पाये जाते हैं। अतः जब मुसलमानों के राज्य की नींव यहां दृढ़ हो गई, तब सर्वसाधारण की भाषा का कायापलट हुआ। नित्य का व्यवहार हिन्दू-मुसलमानों को एक कर दिखा देने लगा। इस समय यदि मुसलमान बादशाह चाहते तो हिन्दू-प्रजा की भाषा को उत्तेजना देकर उसमें स्वयं अभिज्ञता प्राप्त कर सकते थे। उससे उन्हें बहुत लाभ भी पहुंचता, वे विजित-जाति के धर्म्म-कर्म्म व्यवहार और इच्छाओं को भली भाँति जान कर उन्हें पूर्ण रीति से समझ अपना सकते थे। इस बात को कौन नहीं जानता कि वार्त्तालाप करनेवालों की भाषा यदि एक हो तो वह आपस में प्रेम पैदा करती और मन के भाव एक दूसरे पर अच्छी तरह प्रकट कर देती है। आज जो लोग इङ्गलैण्ड अमेरिका अथवा जापान आदि देशों में जाते हैं, उन्हें वहां आराम मिलने एवं अभीष्ट-साधन के लिए वहां की भाषा विवश सीखनी ही पड़ती है।

तात्पर्य यह कि मुसलमानों ने हिन्दुस्थान की भाषा को एक नया ही रूप दिया। उस समय पञ्जाब और पश्चिमोत्तर देश (अब संयुक्त प्रान्त) में जो जो प्रान्तिक भाषाएं हिन्दी के रूपान्तर में चल रही थीं, उन सबके मिश्रण में फ़ार्सी, अर्बी और तुर्की ज़बान के शब्दसमूह मिल गये, जिससे 'हिन्दी' का परिवर्तित नाम 'उर्दू' हो गया। इस तरह हिन्दी का लँहगा सुथना (सुतनी) और फ़ार्सी आदि की इज़ार-ओढ़नी अलग कर के उसे धोती पहनाई गई। धीरे धीरे फ़ार्सी का असर गुर्जर, मराठी, बुंदेली, बघेली और बङ्गला आदि भाषाओं पर भी पड़ा, अनेक फ़ार्सी भाषा के शब्द किसी न किसी रूप से इन भाषाओं में और उन भाषाओं के शब्द उर्दू भाषा में मिलते गये। इसके पश्चात् जब अङ्गरेज़ों का आगमन इस देश में हुआ, तब उर्दू अथवा हिन्दी भाषा का एक तीसरा विकासकाल आरम्भ हुआ। धीरे धीरे अङ्गरेज़ी के सैकड़ों शब्द हिन्दी-उर्दू में आ गये और केवल अङ्गरेज़ी ही नहीं, कुछ फ्रेंच और पोर्चुगीज़ों के भी शब्द हिन्दी भाषा में मिल गये। विस्तारभय होने से मैं इस प्रकार के उदाहरण दिये बिना ही इसको यहीं छोड़ देता हूं कि सर्वत्र विजित जाति की भाषा पर विजेता की भाषा का असर पड़ता है और इस

से विजित जाति की भाषा में बहुत फेर फार हो जाता है। फिर उन शब्दों को जो अन्य भाषा से किसी भाषा में आकर मिल जाते हैं जुदा करना कठिन हो जाता है।

क्या हिन्दी और उर्दू एक नहीं हैं ?

विषय बढ़ रहा है। इस लिए मैं संक्षेप में हिन्दी और उर्दू की समानता अथवा विभिन्नता पर साधारण विचार करके सर्वसाधारण के सामने यह बात पेश करता हूं कि यदि द्राविड़ी प्राणायाम न किया जावे तो दोनों एक हैं। इस बात को डाक्टर ग्रियर्सन साहब और पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी जी ने भी माना है कि फ़ारसी एवं संस्कृत के शब्दों का समावेश कम करके यदि हिन्दी अथवा उर्दू भाषा लिखी जावे तो दोनों एक हैं। उदाहरण के लिए मैं एक वाक्य लिखता हूं।

"मुतज़किरा बाला नज़ीर मेरी रास्तगोई की शहादत के लिये क़ाफ़ी है"।

यह हुआ उर्दू का कठिन रूप। अब हिन्दी का मुलाहज़ा फ़रमाइये—

"उल्लिखित प्रमाण, मेरे सत्यभाषण के साक्षी के लिए अलम् है"।

और जब यही वाक्य इज़ार-ओढ़नी अथवा लहँगा-चुनरी को उतार कर धोती पहनता है, तब का रूप देखिये—

"ऊपर लिखा हुआ सुबूत, मेरी सचाई की गवाही के लिये बस है"।

अब इसे चाहे कोई हिन्दी-रानी कहे अथवा उर्दू-बेगम। ऐसी दशा में लिपि-भेद को छोड़ कर और दूसरा भेद नहीं कहा जा सकता। मैंने इस प्रसङ्ग को इस स्थान में इस अभिप्राय से लिखा है कि यदि बुद्धिमान् लेखक, कवि अथवा सम्पादक चाहें तो शब्द-काठिन्य को छोड़ हिन्दी अथवा उर्दू भाषा को ऐसा रूप दे सकते हैं, कि सर्व-साधारण उसे सहज में समझ सकें। 'शब्द-काठिन्य से अर्थ की क्लिष्टता के सिवाय लिखने या कहनेवा की तंगदिली भी जानी जाती है और यह जा पड़ता है कि वह अपनी लिखी या कही ब बात दूसरे को समझाने का तो यत्न नहीं कर किन्तु केवल यह दिखलाना चाहता है कि कैसा पण्डित या आलिम-फ़ाज़िल हूं। संक्षेप यह कहने की भी आवश्यकता है कि हिन् और उर्दू का व्याकरण प्रायः (लिङ्ग-भेद छो कर) एकसा है। विशेषकर कर्त्ता (फ़ाइल और क्रिया (फ़ेल) का रूप तो सदैव दोन भाषाओं का एकसा ही रहता है। शब्द-भेद क अर्थ भी मिलता हुआ है, जैसे हिन्दी में संज्ञ का अर्थ जिस तरह नाम कर्त्ता का करनेवाला और क्रिया का काम है; उसी तरह उर्दू मे इस्म (संज्ञा) का मतलब नाम फ़ाइल (कर्त्ता का करनेवाला, और फ़ेल (क्रिया) का काम है इसी तरह और भी समझिए। इस सादृश्य से हिन्दी और उर्दू के दो नाम केवल इतना ही भेद उत्पन्न करते हैं जितना नीम और बकायन नाम के वृक्ष नाम और रूप जुदा रहने पर भी गुण में दोनों समान हैं और यदि हम लिपि भेद को छोड़ दें तो हिन्दी और उर्दू की दाहिनी और बाईं आँख की उपमा दे सकते हैं एक से दूसरे का घना सम्बन्ध है। मैं तो दोनों भाषाओं में साधारण रीति से कुछ अन्तर नहीं देखता हूं।

मैं आशा करता हूं कि सम्मेलन के सभ्य इस विषय पर विचार करके लेखन-शैली (कठिन के बदले सरल) बदल देने के उपाय चिन्तन करेंगे। विशेष कर, समाचार और मासिक पत्रों में तो सरल भाषा का प्रयोग ही हितकर है। जहां किसी शास्त्रीय अथवा गहन विषय पर विचार करने की आवश्यकता हो वहां की बात निराली है।

क्या मुसलमान हिन्दी के प्रेमी नहीं ?

आन्नाम के भूतपूर्व छोटे लाट मिस्टर फुलर की उक्ति को लेकर समाचारपत्र अब भी कभी मज़ाक (हँसी) में, कभी जान बूझ कर उपहास करने में, कभी गाली देने के बहाने दिल के फ़फोले फोड़ने में, हिन्दू और मुसलमान प्रजा को दो सौतों के रूप में स्मरण कर लिया करते हैं। अफ़सोस की बात है कि वही सौतिया भाव यहां भी उपस्थित है। बहुतेरे नासमझदार हिन्दू भाई भी यह कह बैठते हैं कि मुसलमान हिन्दी नहीं चाहते। और यह बात वह केवल सादगी से नहीं वरन उर्दू को नीचा दिखाने के लिये नाटक बना कर, फ़ार्स करके, भाट और भांड़ बन कर कहा और चिढ़ाया करते हैं; व्यर्थ दूसरे को मैला करने के लिये पहिले अपने हाथ में कीचड़ लेते हैं। यही बात उन मुसलमान भाइयों को लागू है जो प्रकृति तथा नैतिक बल से एक ही सूत्र में जकड़े हुए अपने पड़ोसी हिन्दू भाइयों को चिढ़ाने की कोशिश करते हैं। मैं इस स्थल में यह दिखलाने की चेष्टा करूंगा कि मुसलमान हिन्दी को चाहते थे, चाहते हैं, और चाहेंगे।

भूत काल की बात इतिहास द्वारा, वर्त्तमान की देख कर और भविष्य की कल्पना या अट-कल से जान सकते हैं। मैं भी इन्हीं तीनों की शरण लेता हूं।

बादशाही ज़माने में हिन्दी की क़दर।

सचमुच इतिहास का ज्ञान मानव-जाति के लिए अत्यन्त लाभकारी है। जो लोग इतिहास-ज्ञान से वञ्चित हैं वे न्यायासन पर बैठने योग्य नहीं, वे इसी विषय का ठीक ठीक निर्णय नहीं कर सकते, वरन झगड़े को तूल दे देते हैं। आज कल के लोगों में से अनेकों की धारणा है कि मुसलमान सदा से हिन्दी के विरोधी रहे हैं। उनकी तसल्ली के लिये नीचे लिखी पंक्तियाँ बस होंगी।

लड़ाई में वैरी को जीत लेना एक बात है और जीते हुए देश का प्रबन्ध करना दूसरी। जीतने की अपेक्षा प्रबन्ध करना उतना ही कठिन है जितना 'दीक्षा लेने की अपेक्षा सीधा देना'। विजित देश का यथार्थ प्रबन्ध उस देश के लोगों की सहायता बिना असम्भव है। मुसलमानों ने इस नीति को अपने हाथ से जाने नहीं दिया। जब से उन्होंने यहां राज्य करना आरम्भ किया तब से ही यहां वालों को राज-काज में सहायक रक्खा। मुहम्मद क़ासिम से लेकर सिकन्दर लोदी के समय तक फ़ारसी दफ़्तर यहां न था, केवल शाही दफ़्तर फ़ारसी में रहता था; शेष ज़िले और तहसीलों के दफ़्तरों में हिन्दू लोग ही हिन्दी में काम किया करते थे। सिकन्दर लोदी के हाथ में हिन्दी का दफ़्तर बदलने का अवसर नहीं आया, वह केवल लोगों को फ़ारसी पढ़ने की रुचि दिला सका। आगे सम्राट अक-बर के समय में हिन्दी के भाग्य ने पलटा खाया। हिन्दी को स्वयं अकबर ने सीख कर कविता करने तक की योग्यता प्राप्त की थी। अपने बेटे जहाँगीर को भी उन्होंने हिन्दी सिखाई थी और अपने पोते खुसरो को तो छः वर्ष की अवस्था में ही भूदत्त भट्टाचार्य्य के ज़िम्मे हिन्दी सिखाने के लिए किया था। शाहजहाँ भी हिन्दी इतनी अच्छी जानते थे कि मानो वह उनकी मातृ-भाषा रही हो। वह सिर्फ़ उन्हीं लोगों से फ़ारसी बोलते थे जो फ़ारसी अच्छी जानते थे, शेष सब से हिन्दी में सम्भाषण करते थे। जहाँगीर और शाहजहाँ ने अगर्चे कविता नहीं की, परन्तु समझते ख़ूब थे। शाहजहाँ का बेटा दाराशिकोह तो हिन्दी और संस्कृत का पण्डित था जिसने उपनिषदों तक का उल्था संस्कृत से फ़ारसी में किया। परन्तु यह सब होते हुए भी हिन्दी को अकबर के समय में ख्याति प्राप्त हुई।

मुग़ल बादशाहों को राजपूत-राजाओं के सम्बन्ध से अच्छी हिन्दी सीखने का अवसर

हाथ आया था, तथा वह यहां के रहनेवाले ही हो गये थे; इससे जन्म-भूमि के नाते से उन्होंने हिन्दी सीखी अथवा उससे अनुराग किया तो कुछ आश्चर्य्य की बात नहीं। जो महमूद ग़ज़-नवी हिन्दुओं के धर्म का कट्टर शत्रु था, जिसके किये हुए कामों का स्मरण करके हिन्दू लोग आज भी मुसलमानों को शत्रु समझे हुए हैं, वह ग़ज़ना का रहनेवाला होने पर भी अपने साथ हिन्दी के विद्वानों को रखता था। कालिञ्जर के राजा नन्दा ने महमूद से हार जाने पर उसकी प्रशंसा में एक दोहा लिख भेजा था, जिसका अर्थ उसने अपनी सभा के हिन्दुस्थान, अरब और अजम वाले विद्वानों से पूछा और जब उसकी सराहना सुन कर उसकी खूबी समझी, तब महमूद ने न सिर्फ़ कालिञ्जर वरञ्च १४ और दूसरे क़िले जो वह रास्ते में जीतता हुआ आया था और कुछ बहुमूल्य पदार्थ एक फ़रमान सहित नन्दा को दे दिये। इससे महमूद का काव्य-प्रेम और उसकी सभा के विद्वानों की बुद्धिमानी एवं उदारता का बोध होता है। नहीं तो "दाता तो देता है, भण्डारी का पेट दुःखता है"।

केवल कविता ही नहीं, वरन् माल का जमा-ख़र्च सब हिन्दी में होता था। सिक्कों, कपड़ों और हथियारों के नाम हिन्दी में रक्खे गये थे। सन् १५८१ ई० तक हिन्दी का कारबार पूर्ववत् जारी रहा। उस समय सम्राट अकबर को २५ वर्ष राज्य करते हो गये थे। जब अकबर ने टोडरमल को प्रधान मन्त्री बनाया तो उसने बड़ी चतुराई से हिन्दी अक्षर फ़ारसी-अक्षरों में बदल दिया, माल के मुहकमे का विशेष सुधार किया, बही-खाते लिखने की नवीन विधि निकाली। आज भी महाजनों में जो जमा-ख़र्च, रोकड़, रोज़-नामचा, खाता, इस्तक़, फ़ाज़िल, बाक़ी, आदि शब्द प्रचलित हैं, ये सब टोडरमल के दिमाग़

की उपज हैं। इस तरह सन् ७१२ से लेकर तक लगभग ९०० वर्ष तक मुसलमानों का देनेवाली हिन्दी का गला एक हिन्दू मन्त्री द्व घोंटा गया। यदि कुछ हिन्दू लोग उसकी रक्षा करते रहते तो पाली आदि भाषाओं के समान हिन्दी भी अन्तर्हित हो गई होती। टोडरमल ने वर्तमान-कालिक आवश्यकता को समझ क हिन्दुओं को बड़े बड़े दर्जों तक पहुंचाने की बुद्धिमत्ता की थी और उसमें उसे कामयाबी भी हुई। उसमें राजनैतिक पालिसी थी, जैसी स्वर्गीय सर सैयद अहमद ने मुसलमानों क अङ्गरेज़ी पढ़ाने के लिये सोची थी और फिर समय पाकर कार्य्य में भी परिणत की। उस समय अगर हिन्दी ठहर जाती तो आज आन्दोलन और सम्मेलन की आवश्यकता ही पड़ती। हां! एक त्रुटि मुसलमानों के समय में और थी जिसने हिन्दी को निर्बल रक्खा। वह छापाख़ाना की न्यूनता है जिससे साहित्य-च न तो दूर तक फैल सकी और न सीखनेवाल को सीखने का सुभीता मिला। हस्त-लिखित ग्रन्थ समय पाकर नष्ट हो गये और थोड़े दिनों के बाद मुसलमानों से हिन्दी बिछुड़ ही गई। सोलहवीं और सत्रहवीं सदी में जितने मुसल-मान कवि हुए, उतने फिर अठारहवीं में नहीं हुए। इसी तरह उन्नीसवीं में और कम हुए, और अब बीसवीं तो ख़ाली ही जा रही है। कदाचित् आगे कोई माई का लाल निकल आवे। हं इस समय हिन्दी कविता करनेवाले एक मुसल-मान कवि को जानता हूं। उनका नाम सैयद धेदाशाह (पोखर, कानपूर) है। जो हो, मुसल-मानों के घर में जो हिन्दी का बाग़ फला फू था वह आज कल पतझड़ में है। जिस हिन्द में क़ाज़ी लोग मुक़द्दमों के फ़ैसले तक लिखने लगे थे, बायज़ (व्याख्यानदाता) प्रमाण में दोहे कवित्त कहते थे, शोक कि आज उन्हीं मुसलमा में हिन्दी के समझने और चिट्ठी पढ़नेवा

निद्रा से जाग पड़ा। लोग आश्चर्य में डूब गये।
खेद की बात है कि इस समय मैं एक जङ्गली
प्रान्त में पेट पाल रहा हूं, इससे उन दो चार

कवियों को जो बड़ी कठिनाई से मैंने स
किये थे, और जो घर (देवरी) की सन्दूकों
बन्द पड़े हैं, यहां उदाहरण में न दे सका!

मुसलमान कवि [सूची नम्बर २]।

नम्बर	नाम	स्थान	समय (सन् ईसवी)	विशेष वार्त्ता (क
१	मुग़ल सम्राट अकबर	दिल्ली	१६वीं सदी	फुटकल कविता (श्रृङ्गा
*२	क़ादिर बख़्श (क़ादिर)	पिहानी	१६वीं "	फुटकल कविता
३	खनाम विख्यात ख़ानख़ाना अब्दुल रहीम (रहीम)	दिल्ली	१६वीं "	रहिमन सतसई, बरवै नायिका भेद, रासपञ्चाध्यायी, मदनाष्टक
*४	अबुल फ़ैज़ नागौरी (फ़ैज़)	"	१६वीं "	फुटकल दोहे
५	अबुल फ़ज़ल (फ़हीम)	"	१६वीं "	फुटकल दोहे
६	मलिक मुहम्मद	आयस	१६वीं "	पद्मावत
*७	सैयद इब्राहीम (रसखान)	पिहानी	१६वीं "	रसखान शतक
८	मुबारिक	...	१६वीं "	तिलशतक, अलकशतक
९	अहमद	...	१७वीं "	फुटकल कविता (वेदान्त)
१०	वहाब	...	१७वीं "	बारहमासा
११	अब्दुल रहमान	दिल्ली	१७वीं "	यमकशतक के निर्माता
१२	अब्दुल जलील (जलील)	बिलग्रामअवध	१७वीं "	फुटकल कविता
*१३	याकूब ख़ां	...	१८वीं "	रसिकप्रिया के टीकाकार
*१४	जुल्फ़िक़ार	...	१८वीं "	सतसई की टीका
१५	अनवर ख़ां	...	१८वीं "	अनवरचन्द्रिका सतसई की टीका
*१६	यूसुफ़ ख़ां	...	१८वीं "	सतसई और रसिकप्रिया के टीकाकार
१७	प्रेमी यमन (शाहबरकत)	दिल्ली	१८वीं "	अनेकार्थ नाममाला
१८	आज़म	...	१९वीं "	नखशिख, षट्ऋतु
*१९	सैयद गुलाम नबी (रसलीन)	बिलग्राम	१९वीं "	रसप्रबोध, अङ्गदर्पण
२०	तालिब अली (रसनायक)	"	१९वीं "	फुटकल
२१	नबी	"	१९वीं "	नखशिख

ऊपर लिखी हुई तालिका से मुसलमानों का हिन्दी से कितना प्रगाढ़ प्रेम था, यह जुदा ... ज़रूरत नहीं है। अकबर जैसे चतुर और सम्राट ने इसे पसन्द किया था। विस्तार-

भय से, सब की कविता के नमूने नहीं दिया सब तो भी शाहंशाह अकबर और रहीम की कवित के पद्य दो दोहे लिखे बिना जी नहीं मानता। उदाहरणों से सरल हिन्दी का नमूना भी मिलेगा

य सम्राट अकबर ने अपने प्रधान मन्त्री
नर की मृत्यु का समाचार सुना, तो पश्चा-
के आवेग में उन्होंने नीचे लिखी हुई
र उक्ति कही, जिससे न केवल काव्य-ज्ञान
हिन्दुओं से प्रेम का उद्बोध होता है—

न जान सब दीन, एक दुरायो दुसह दुख ।
अब हमको दीन, कछु नहिं राखो बीरबर ॥"

शाह ! कैसी सुन्दर दीपक की पदावृत्ति है ।
रवर रहीम का साहित्य-परिज्ञान तो इतना
हुआ (उनकी कविता से) जान पड़ता है
जिसका वर्णन सहज में नहीं किया जा सकता ।
पके प्रश्नोत्तर का एक दोहा सुनिये—

ाह उड़ावत सीस पै, कहु रहीम किहि काज ?
हि रज ऋषिपत्नी तरी, सो ढूंढ़त गजराज ॥"

आपका वेदान्त-ज्ञान भी सराहनीय है ।
देखिये, एक दोहे में आपने क्या कहा है—

"को अचरज कासों कहै, बुन्द में सिन्धु समान ।
रहिमन आपहि आप में, हेरनहार हिरान ॥"

अब मैं कुछ ऐसे मुसलमान लोगों के नाम
सुना देना भी उचित समझता हूं जो नवाब
बादशाह होकर भी हिन्दी कविता के अनन्य
प्रेमी थे, और इसलिये वह अपने पास श्रेष्ठ
कवियों को रख कर उनका आदर सम्मान करते
थे । कितने ही कवि-सन्तान (उत्तर हिन्दुस्थान
में) आज भी बादशाही ज़माने की पाई हुई भूमि
का उपभोग कर रहे हैं । तारीफ़ की बात तो यह
है कि उन लोगों की मातृ-भाषा या तो तुर्की थी
या फ़ारसी, पर हिन्दी जानते और उसके प्रेमी थे ।

मुसलमान कवि [सूची नम्बर ३] ।

आश्रयदाता	आश्रयी कवि	समय (सन् ई०)
लाउद्दीनगोरी	केदार कवि . ..	१२वीं सदी
माय . ..	हेम बन्दीजन	१६ ,, ,,
शाह अकबर .	गङ्ग, नरहरि, करण, होल, ब्रह्म (बीरबर) अमृत, मनोहर आदि ..	१६ ,, ,,
दाराशिकोह	बनमालीदास गोसाईं	१७ ,, ,,
ाहजहां	कवीन्द्र, सुन्दर .. .	१७ ,, ,,
ौरङ्गज़ेब	ईश्वर	१७ ,, ,,
ोअज़्ज़म शाह	अब्दुल रहमान	१७ ,, ,,
ठान सुल्तान	चन्द्र कवि	१७ ,, ,,
ाज़िल अली ख़ां	सुखदेव मिश्र	१७ ,, ,,
ासिफुद्दौला	गिरधर राय	१८ ,, ,,
ुहम्मद शाह	गुमान	१८ ,, ,,
अली अकबर ख़ां	निधान, प्रेमनाथ	१८ ,, ,,
ुहम्मद शाह	युगलकिशोर भट्ट	१८ ,, ,,
ुहम्मद अली	जीवन	१८ ,, ,,
़ायम ख़ां	मानभट्ट	१८ ,, ,,

उक्त तालिकाओं ... [illegible] ... बनाया है, पर "शिवसिंह सरोज" के आधार पर है; सम्भव

मुसलमान केवल (आज कल के धनियों के समान) काव्य के छूंछ अनुरागी ही न थे, वरन उसका मान भी करते थे, कवियों को पुरस्कृत करते थे, और उत्तेजना बढ़ाकर काम भी निकालते थे। नीचे दो तीन उदाहरण देता हूं।

(१) राजा इन्द्रजीत ओड़छा के राजा के यहाँ अनेक पतुरियें थीं, उनमें एक पातुरी 'प्रवीन राय' नाम की रूपवती और कविता ज्ञान से सम्पन्ना (केशव के प्रसाद से प्राप्त) थी। उसके रूप और गुण की सराहना सुन अकबर बादशाह ने उसे अपने दरबार में बुला भेजा। प्रवीनराय ताड़ गई। वह यथा नाम तथा गुण-वाली पतुरिया जब दरबार में पहुंची और अपना गुण दिखलाया, तब, कहते हैं, अकबर उस पर मुग्ध हो गये। अवसर पाकर प्रवीन-राय ने हाथ जोड़ कर अर्ज़ की—

"विनती राय प्रवीन की, सुनिये शाह सुजान।
जूठी पतरी भखत हैं, बारी वायस श्वान॥"

अकबर समझ गये। प्रसन्न होकर बहुत कुछ इनाम दे ओड़छे को वापिस करा दिया।

(२) नव्वाब खानखाना अब्दुल रहीम (रहीम) को एक बार गङ्गकवि ने एक छप्पय सुनाया था। आपने प्रसन्न होकर एक दो नहीं छत्तीस लाख रुपये दे डाले थे। वह छप्पय यह है—

चकित भँवर रहि गयो,
गवन नहिं करत कमल तन।
अहि फनि मनि नहिं लेत,
तेज नहिं बहन पवन घन॥
हंस मानसर तज्यो
चक-चकी न मिलै अति।
बहु सुन्दरि पद्मिनी
पुरुष न चहै न करै रति॥
खलभलित शेष कवि गंग भनि,
अमित तेज रवि-रथ खस्यो।
खानानखान बैरम सुवन
जि दिन क्रोध करि तँग कस्यो॥

(३) सम्राट अकबर ने महाराजा मा[illegible] को एक बार काबुल फ़तह करने को मे[illegible] मार्ग में अटक नदी पर इस लिये अटक [illegible] कि धर्म्म-शास्त्र के अनुसार उसके पार हिन्दु[illegible] को नहीं जाना चाहिये। यह विचार करा [illegible] उतरे। जब यह समाचार अकबर ने सुना एक छोटा सा छन्द लिख भेजा, जिसे पढ़ [illegible] मानसिंह तुरन्त अटक उतर गये॥ वह छ[illegible] नीचे मुलाहिज़ा फ़रमाइये—

"सबै भूमि गोपाल की, या में अटक कहा!॥
जाके मन में अटक है, सोई अटक रहा॥"

अधिक क्या कहें, औरङ्गज़ेब जैसा नि[illegible] धर्म्म-प्रेमी और सख़्त-दिल बादशाह हिन्[illegible] कविता का रसिया था। हिन्दी भाषा के क[illegible] उसके दरबार में सदैव रहते थे। भूषण कवि पहिले औरङ्गज़ेब के ही दरबारी कवि थे।

अमीर खुसरो ने 'ख़ालिक़बारी' नाम की उर्दू में एक छोटी सी पोथी बनाई थी, जिसके द्वारा मुसलमानों के लड़के खेलते कूदते और हँसते हुए हिन्दी सीखने का अभ्यास करते थे और हिन्दू-बालक को आज भी मुल्ला जी तख़्तियाँ ख़तम कराके 'ख़ालिक़-बारी' ही रटाते हैं। नमूना लीजिये—

"मुश्क़ काफ़ूरस्त, कस्तूरी कपूर।
हिन्दवी आनन्द, शादी औ सुरूर॥
अस्प घोड़ा, फ़ील हाथी, शेर सींह।
गोश्त हेड़ा, चर्म चमड़ा, सह्मो पीह॥"

उक्त तालिकाओं से एक और अच्छी बात जानी जाती है कि ईसवी सन् की १६वीं, १७वीं और १८वीं सदी में भाषा कविता की अच्छी तरक़्क़ी हुई। अलबत्तः १९वीं सदी, जो कि मुसलमानों के अधःपतन की सदी थी, कुछ फीकी रही। जब कि मुसलमानों का यह हाल था, तो हिन्दुओं के काव्य-प्रेम का क्या कहना है। तब हम (मुसलमान) लोगों को यह सोचने का मौक़ा है कि हम [illegible] लोगों को यह [illegible]
[illegible]

धर्म-डाह और खुदग़र्ज़ी (स्वार्थ) से चाहे कोई कुछ भी कहे, पर पड़ोसियों की भाषा से बच कर चलना असम्भव है, और यही कारण है कि उर्दू और फ़ार्सी के भी सैकड़ों हिन्दू शायर हुए हैं और होंगे। इसमें सन्देह ही क्या है?

वर्त्तमान काल में हिन्दी की दशा और मुसलमान।

यही निबन्ध का मध्यभाग किंवा केन्द्र है, और इसे निबन्ध का हृदय ही नहीं वरन् प्राण भी कह सकते हैं, तथा स्थिर विषय का यही निर्णय भाग है। मैं नहीं कह सकता कि मैं इस विषय में कुछ ज़ोरदार बातें लिख सकूंगा, तो भी कोशिश करता हूं।

पूर्व में लिखा गया है कि अगर उर्दू और हिन्दी वाले मामूली मुहाविरे के शब्दों से काम लेवें तो दोनों में लिपि-भेद को छोड़ कर कुछ अन्तर नहीं है। खुशी की बात है कि आजकल कुछ विद्वान् लेखकों और कवियों का ध्यान इस ओर गया है। उससे क्या लाभ होगा यह समझना बहुत कठिन नहीं है। देखिये, जब अँग्रेज़ लोग भारतवर्ष के अधिकारी हुए, तब देश की रीति, रस्म, चाल, ढाल और हर एक व्यक्ति की इच्छा जानने के लिये उन्होंने नागरी अक्षरों में प्रेमसागर लल्लूलाल से और फ़ार्सी अक्षरों में बाग़ोबहार *नामक पुस्तक मीर अम्मन से उस* सरल भाषा में लिखवाई जिसमें हिन्दू और मुसलमान अपने अपने घर बात चीत करते हैं, या जिसका कचहरी और बाज़ार आदि में व्यवहार करते हैं। प्रेमसागर पढ़ कर हिन्दी में और बाग़ोबहार पढ़ कर उर्दू में वह लोग परीक्षा देते थे। इन दोनों किताबों में आज से कुछ काल पहिले की हिन्दी-उर्दू की सरलता का भी पता चलता है। इसके पश्चात् राजा शिवप्रसाद (सितारे हिन्द), पं० प्रतापनारायण मिश्र और बाबू हरिश्चन्द्र (भारतेन्दु) का ज़माना आया। इन्होंने हिन्दी को नये सिरे से सँवारना शुरू किया। राजा साहब ने अपनी हिन्दी में उर्दू को जगह दी और इतिहासतिमिरनाशक नामक पुस्तक लिखी। मिश्र जी का गद्य तो मैंने देखा नहीं, पर कविता (पद्य) से जान पड़ता है कि वे विशुद्ध हिन्दी से काम लेना चाहते थे। बाबू साहब ने भी मिश्र जी का अनुसरण किया है, परन्तु जहाँ तक बना है उनने उसे सरल रूप देने की चेष्टा की है। *इसी पिछली चाल* पर अब तक हिन्दी लेखक और कवि कुछ थोड़े फेर फार के साथ काम लेते हैं। कोई सरल भाषा लिखना पसंद करता है और कोई कठिन लिख कर पाण्डित्य दिखाना चाहता है।

उर्दू के लिये सरकार अँग्रेज़ का सहारा मिल गया, इस लिये उसने बहुत ज़ोर पकड़ लिया। नतीजा यह हुआ कि हिन्दी पीछे पड़ गई। लेकिन ऐसा होने से लाभ भी कुछ कम नहीं हुआ, सैकड़ों मनुष्यों के इज़हार आदि लिखने सुनने और उनसे बात करने के कारण हिन्दी और उर्दू दोनों भाषाओं में बहुत कुछ परिवर्त्तन हो गया। मैं इतर प्रान्त की बात नहीं जानता, मध्यप्रदेश की कहता हूं कि फ़ार्सी लिपि उठा देने पर भी आज तक कचहरी, पुलिस, बन्दोबस्त और हिन्दी शिक्षा-खाते तक में उर्दू का अधिकार बराबर बना हुआ है। उसमें कुछ (डिग्री, वारंट आदि) *अँग्रेज़ी शब्द भी आ मिले हैं जिन्हें बिना पढ़े-लिखे लोग भी* बोलते हैं। कुछ दिन पहिले शिक्षा-खाते की पाठ्य-पुस्तकें सरल विशुद्ध हिन्दी भाषा में लिखी जाती थीं। उनसे शाला में पढ़नेवाले मुसलमान विद्यार्थी भी हिन्दी सीखते थे। लेकिन कुछ दिनों से रंग बदल गया है। उसमें बहुत फ़ार्सी शब्दों का प्रयोग किया गया है। ऐसा करने का अभिप्राय शायद यह पाया जाता है कि जिसमें सरकार को ऐसे हिन्दी जाननेवाले लोग मिल सकें जो पुलिस कचहरी आदि में जाते ही

काम देने लगें, और इससे मुसलमान लोग भी हिन्दी से प्रेम करने लगेंगे।

इधर बाज़ार पर ध्यान दीजिये तो दूकानदार उस सरल भाषा से काम लेता देखा जावेगा जो सब आनेवाले गाहकों की समझ में आ सके। लेकिन आधुनिक हिन्दी और उर्दू समाचारपत्रों और मासिकपत्रों की भाषा से जान पड़ता है कि हिन्दी धीरे धीरे संस्कृत से और उर्दू फ़ारसी से मिलती जा रही है, जिससे दोनों में बहुत अन्तर पड़ता जाता है। एक दो पत्र सरल हिन्दी भाषा की, जिसमें मुहाविरे के उर्दू शब्द भी रहते हैं, लिखने की चेष्टा करते हैं। नहीं कह सकते कि हिन्दी के अनन्य प्रेमी उन पर कैसी दृष्टि रखते होंगे। खान पान की छुआ छूत के समान हिन्दी भाषा को भी यावनी भाषा के संसर्ग से बचाना चाहिए, यदि ऐसा पोच विचार किसी का हो तो मैं समझता हूं कि बुद्धिमान लोग उसे कभी पसन्द न करेंगे। जीव जिस तरह माया को नहीं छोड़ सकता, उसी प्रकार अब हिन्दी से उर्दू का सम्बन्ध छूटना असम्भव है, यदि हिन्दी राष्ट्र भाषा बने तो!

जब हम लोग किसी कालेज या शहर के स्कूलों में जाकर लड़कों को आपस में बात-चीत करते हुए देखते हैं तो बड़ा आनन्द आता है। मराठे बालक मराठी में, बङ्गाली बङ्गला में बात-चीत करते दिखाई देते हैं, लेकिन वही दूसरे प्रान्तिक विद्यार्थियों के साथ ख़ासी मुहाविरे की सीधी उर्दू में बात करते देख पड़ते हैं। यह बात मैं मद्रास और महाराष्ट्र प्रान्त के लिये नहीं कहता। तो भी इतना कहना अनुचित न होगा कि मराठी भाषा में सैकड़ों फ़ारसी के शब्द अपभ्रंश होकर मिल गये हैं।

खानि में काम करनेवाले मज़दूरों, आसाम में चा के बाग़ीचों में काम करनेवाले कुलियों रेलवे के मुसाफ़िरों से अधिकारी लोग उर्दू भाषा में ही बोलते हैं। तीर्थस्थानों के पण्डे भी तो विशुद्ध हिन्दी नहीं बोल सकते।

यहाँ यह कह देना भी उचित है कि करोड़ हिन्दू नामधारी लोगों में हिन्दी बोले वाले चौथाई भी नहीं हैं। हज़ारों वर्षों से साथ साथ रहते आये हैं उन पर अभी तक हिन्दी का पूर्ण प्रभाव नहीं पड़ा। तब मुसलमान लोग न जाने क्यों लक्ष्य बनाये जाते हैं जिन्होंने हिन्दी को बहुत काल पहिले अपना लिया है। क्या कोई बता सकता है कि मुसलमानों ने बराबर हिन्दी सेवा मद्रास, महाराष्ट्र, सिन्ध बङ्गाल और आसाम आदि के रहनेवालों ने भी की है जो कि हिन्दू हैं? आज यदि बङ्गाल में माननीय शारदाचरण, महाराष्ट्र में राव बहादुर चिन्तामणि वैद्य और मद्रास में कृष्णस्वामी अय्यर सरीखे एक दो विद्वान हिन्दी की सराहना करने लगे तो इससे यह कहाँ सिद्ध होता है कि वहाँवाले हिन्दी चाहते आये हैं। हां, आज वहाँ कई सौ वर्षों के पश्चात् इसका सूत्रपात हुआ है।

अच्छा, अब आप लोग अपना लक्ष्य मुसलमानों की तरफ़ लाइये। क्या हमारे हिन्दू भाई समझते हैं कि हम लोग हिन्दी से हैं? क्या हम लोग हिन्दी से परहेज़ करते हैं? नहीं भाई! ऐसा ख्याल मत कीजिए। आप लोग जिस हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाना चाहते हैं, और सब प्रान्त के लोगों को जिसे सिखाना है उसे मुसलमान लोग न जाने से सीखे हुए हैं। अभी दूसरे सीखनेवालों को सैकड़ों नहीं तो बीसियों वर्ष चाहिए।

डाक्टर ग्रियर्सन साहब से सहमत होकर पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी जी ने इस बात को स्वीकार किया है कि उत्तर हिन्दुस्तान से मुसलमान लोग इस देश में जहाँ जहाँ गये अपनी भाषा (उर्दू) साथ लेते गये। यह ठीक है। सब प्रान्त के मुसलमान कुछ न कुछ उ

ानते हैं, लेकिन यह जिस जिस प्रान्त में ाकर बसे हैं, उस उस प्रान्त की भाषा का ी उन पर पूरा असर पड़ा है। महाराष्ट्र प्रान्त : तो अनेक मुसलमान ऐसे हुए हैं जिनकी ाणना महाराष्ट्र लोगों ने साधुओं और कवियों ं की है। अब आगे मैं यह बतलाने की चेष्टा ारता हूं कि हिन्दी का मुसलमानों पर क्या ासर पड़ा है।

पहाड़ी पत्थरों को तोड़ कर बहनेवाली ादी को देख कर लोग आश्चर्य में डूब कहने ागते हैं कि "ओह! पानी के वेग ने पत्थरों को काटकर बहा दिया!" क्या यह पत्थर एक दिन में काटा गया? नहीं, सहस्रों वर्षों के अविश्रान्त आघात से पानी उन पत्थरों को काट सका है। यही बात मानवी समाज के भाषण, भोजन, वस्त्र और दूसरे व्यवहारों की है। जो बनाव अथवा बिगाड़ आज हम लोग देख रहे हैं, वह एक दिन का नहीं है। आज जो महाराष्ट्र, गुजराती, बङ्गीय साहित्य और एक-लिपि-विस्तार-परिषद् तथा नागरीप्रचारिणी सभाएँ उद्योग कर रही हैं, क्या उनका उद्योग आज सफल होगा? नहीं, बहुत परिश्रम करना होगा। धैर्य, स्वार्थत्याग, सहिष्णुता और आत्मबल से काम लेना होगा। विपक्षियों को अनुरक्त करने के लिए मृदु भाषण, उपयुक्त प्रमाण और आदर्श-चरित्र से काम लेना पड़ेगा। समय समय पर धन का उत्सर्ग, हठ और परछिद्रान्वेषण की आदत का त्याग करना होगा, तब कहीं काम-याबी होगी। हिन्दू लोग मुसलिम लीग को लेकर बेतरह बिगड़ते हैं। हमारे विद्वान् द्विवेदी जी सरीखे गम्भीराशय भी बिगड़ जाते हैं, तब औरों की क्या चर्चा! अवसर पाकर एक दो सभ्यता की गालियाँ सुना देते हैं। खैर अच्छा है, 'नज़र अपनी अपनी और पसन्द अपनी अपनी' है। क्या मुसलिम लीग को आप लोग घृणा की दृष्टि से देखते हैं? नहीं, मन देखिए। दो सम्प्रदायों के किसी एक विषय के निर्णय में जब दो मत होते हैं, तभी सच्चा फ़ैसला होता है और वह फिर ऐसा होता है कि टाले नहीं टलता। एक दूसरे के युक्तिवाद से लोगों को सोचने विचारने और अपने लाभालाभ को प्रकाश करने का अवसर मिलता है। आप मुसलिम लीग के पीछे न पड़ें। मुसलमानों ने जिस तरह फ़ारसी को छोड़ कर उर्दू को ग्रहण किया है, उसी तरह धीरे धीरे मानी हुई हिन्दी को मान लेंगे। रूप का सौन्दर्य किसके चित्त को नहीं चुराता? अन्धे के। पारिजात पुष्प गन्ध किसके मन को नहीं मोहती? पीनस रोगवाले को। इसी तरह वीणा की मधुर ध्वनि किसे भली नहीं लगती? बहरे को। इसलिये, यदि आप लोग हिन्दी को सचमुच गुणागरी समझते हैं तो उसके साहित्य को पुष्ट कीजिए, उसे कुछ न कुछ स्थिर-रूप दीजिए। दो जौहरी जो अपने अपने जवाहिर बेचना चाहते हैं, यदि वह एक दूसरे के जवाहिर की निन्दा करें तो क्या इस युक्ति से वह अपने अपने जवाहिर को उत्तम सिद्ध कर सकते हैं? कदापि नहीं। पदार्थ की उत्तमता स्वयं उसकी तारीफ़ करती है, अपने कहने से नहीं, जैसे कस्तूरी की सुगन्ध। हम लोगों का मत-भेद यदि दुर्भाव, हठ और मूर्खता का न हो तो लाभ ही लाभ समझिए। आर्य्य समाज की स्थापना के पहिले किसी भी धर्म के लोग इतने सचेत, विवेचक और श्रद्धालु कहां रहे थे? लोग धर्म-पन्थ भूल कर दूर निकल गये थे। मुसलिम लीग न होती तो पञ्जाब-हिन्दू-सभा और बिहार-हिन्दू-सभा कहाँ से क़ायम होती? इसी तरह अगर सर सैयद अहमद न होते तो 'हिन्दू सेन्ट्रल कालेज' की किसे सूझती?

सभा सोसाइटी में योग देनेवाले मेम्बर अक्सर बहुत पढ़े लिखे और ऊँचे विचारवाले

होते हैं, इसलिये कभी कभी वे अपने सिद्धान्त स्थिर करने में ऐसे तल्लीन हो जाते हैं कि अपने आपे को भूल जाते हैं, जिससे बेंजमिन फ्रैंकलिन के समान अपने पास बैठी हुई मेम साहिबा की अँगुली से चुरुट की आग बुझाने लगते हैं। हिन्दुस्तान अभी शिक्षा में बहुत पीछे है, इसलिए सभा सोसाइटियों में जो मन्तव्य स्थिर किये जाते हैं वे सब जाति की ओर से स्थिर किये गये हैं ऐसा कैसे कह सकते हैं। थोड़े पढ़े लिखे लोगों से सम्मति लेने में पढ़े लिखे बाबू अपना अपमान समझते हैं। वे संसार में अनुभव प्राप्त किये हुए साधारण लोगों से कुछ नहीं पूछते। सब समाजों की यही दशा है। साधारण लोगों को अपनी राय ज़ाहिर करने का न तो कोई मौक़ा मिलता है और न वे ही स्वयं उसे खोजने की चेष्टा करते हैं। इससे हानि यह होती है कि चन्द बहुत पढ़े लिखे नवयुवक लोगों का स्वतन्त्र विचार सर्वसाधारण के विचार के नाम से प्रसिद्ध होता है।

सम्पादक लोग अपने अपने धर्म को आगे रख कर पिछले किसी वैर को सामने ला कर दूषित दृष्टि से दूसरों के कामों को देखते हैं और जहां तक उनसे बनता है, दिल दुखानेवाले शब्दों से उसकी आलोचना करते हैं। २२ कोटि हिन्दुओं के पड़ोस में रहनेवाले लगभग साढ़े चार करोड़ मुसलमान हैं, तो भी वे मुट्ठी भर कहलाते हैं। उन्हें मूर्ख, दुराग्रही, स्वार्थी और खुशामदी विशेषण दिये जाते हैं। उपन्यास-लेखक बड़ी तलाश से कोई ऐतिहासिक कहानी तलाश करके मुसलमानों के पापाचार और अत्याचार मनमाने शब्दों में प्रकाश करते हैं और इसीमें वे वाहवाही लूटते हैं। मुसलमानों की भी यही दशा है। वे भी हज़रत हैं। भला शेख़ी दिखलाये बिना कब चूकने वाले हैं! नतीजा यह हो रहा है कि पुरैन से पानी जैसे जुदा रहता है, वैसे ही पास पास रहते हुए भी हिन्दू मुसलमान इस समय जुदे जुदे हो रहे हैं। समाज के अगुआ हैं, वे साधारण ले[...] ओर लौट कर देखते तक नहीं, सला[...] दूर रहा। नहीं तो उन्हें मालूम हो जा[...] नागरिक हिन्दू मुसलमानों की अपेक्षा [...] हिन्दू-मुसलमानों में अधिक मेल है और उन[...] संख्या भी नगरवालों से कम नहीं है। [...] मेल के कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

क—मुसलमान लोग भारत से समय [...] पर अच्छी अच्छी बातें सीखते रहे हैं [...] हिन्दुओं ने जो उनसे सीखना चाहा [...] वह भी उन्हें सिखाते रहे हैं। इसके [...] जब भारतवर्ष में उन्होंने अपना घर [...] लिया, तब वे बारीकी से छान बीन [...] उनके गुण सीखने लगे। सङ्गीत, जो [...] का एक अङ्ग है और हिन्दी भाषा से [...] जिसका भण्डार अधिक भरा पूरा है, [...] मुसलमानों ने हिन्दुओं से ही सीख[...] गोपाल नायक, बख्शू नायक, [...] नायक, तानसेन, रामदास और सूर[...] जैसे उत्तम गवैये मुसलमानों के रा[...] में ही हुए हैं। आज भी मौलाबख्श आदि [...] समान सङ्गीत-मर्मज्ञ उपस्थित हैं।

ख—जिस तरह हमारे हिन्दू भाई हरि[...] अथवा सत्यनारायण की कथा कहते हु[...] हैं, इसी तरह मुसलमान लोग मौ[...] पढ़ते हैं। उसमें आज कल अक्सर [...] क़सीदे (गीत) भी रागदारी के साथ [...] जाते हैं, उनमें हिन्दी के शुद्ध शब्दों [...] ख़ासा स्थान मिला है। मुहर्रम में (ग[...] कूचों में घूमते हुए) मरसिये भी हिन्दी [...] से भरे हुए पढ़े जाते हैं। इसी तरह [...] (वेदान्त-पक्ष के गीत) में भी ख़ासी हि[...] भरी पड़ी है।

ग—अपढ़ मुसलमानों में से बहुत थोड़े [...] भारत के) मुसलमान शुद्ध उर्दू बोलते[...]

लोग जिस प्रान्त में बस गये रहते हैं उस प्रान्त की ही भाषा बोलते हुए एक प्रकार की बिगड़ी हिन्दी बोलते हैं।

—शिक्षा का विस्तार एक तो यों ही आटे में नमक के समान है, उस पर भी उर्दू के मदरसे हैं कितने? इस लिए जहां जहां हिन्दी शालाएँ हैं उनमें मुसलमान बालक बराबर पढ़ते हैं, और पढ़कर हिन्दी के दफ़्तरों और मदरसों में नौकर होकर कार्य में योग देते हैं।

—केवल हिन्दी भाषा ही नहीं, नागरी वर्ण भी मुसलमानों में घुस आये हैं। समय प्रबल है। जब मुसलमानों का चमकता सितारा था, तब उर्दू का दौरदौरा था। उस समय हिन्दू भाइयों ने रामायण महाभारत आदि फ़ारसी लिपि में लिखे थे। अब समय पलट गया। इसलिये मुसलमान लोग भी धर्मरक्षा के निमित्त अनेक छोटी छोटी पुस्तकें हिन्दी पढ़े लिखे मुसलमानों के लिए नागरी वर्णों में छापने लगे हैं।

हम लोगों की स्त्रियां प्रायः परदानशीन होती हैं। इससे उनकी बोली परम्परा से बोली जानेवाली उस कुटुम्ब की बोली होती है जिसमें वह रहती है। परन्तु पुरुष बाहर आते जाते हैं, खेती, रोज़गार, राज कार्य्य और दूसरे नैतिक मामलों में हमें हिन्दू समाज से दिन रात काम पड़ता है, तब मख मार हमें हिन्दी बोलनी ही पड़ती है और हम उन्हें हिंदी छोड़ने को बाध्य नहीं कर सकते इस लिए कि हिन्दी उनकी मीरास है। हम लोग अरबी से फ़ारसी और फ़ारसी से उर्दू सीखने पर लाचार हुए थे। अब हिन्दी की तरफ भी झुकना हमारा काम है। विलायत जाकर ग्रेज्युएट होने पर भी घर की प्रारम्भिक शिक्षा और घर में बर्ते जानेवाले आचरण का असर लोगों में रहता ही है। इससे यदि राष्ट्रभाषा हम लोग हिन्दी मान लेंगे तो लाभ के सिवाय कुछ हानि नहीं। हमारा उर्दू साहित्य नष्ट नहीं हो सकता। जिस तरह हम लोगों में से अनेकों ने अंग्रेज़ी राजभाषा समझ कर सीखी है और उससे उर्दू को कुछ बट्टा नहीं लगा, उसी तरह हिन्दी को राष्ट्रभाषा मान लेना अच्छा है। यह हमें कुछ बाधा नहीं पहुंचा सकती, बरन्न लाभ होगा। मुसलमानों का जो भाग उर्दू से वञ्चित है उसे हम लोग हिन्दी द्वारा अपने मन्तव्य बतला सकेंगे, और उसे बहकने से भी बचा सकेंगे, नहीं तो परिणाम यह होगा कि हिन्दी जाननेवाले मुसलमान धीरे धीरे अपने धर्म-सिद्धान्त से कोसों दूर हो जायेंगे। पहले जैनी लोग अपने धर्म ग्रन्थ छापने के विरोधी थे, लेकिन समय ने उनका भ्रम दूर कर दिया, अब वह अपने धर्म-ग्रन्थ, इतिहास, व्याकरण, आदि ग्रन्थ धड़ाके से छाप कर जाति को लाभ पहुंचा रहे हैं। जैनियों के अनेक पत्रों में इस समय 'जैनहितैषी' (गिरगांव, बम्बई) सब से अच्छा है। आज अगर हम लोग न मानेंगे तो कल विवश होकर हिन्दी को राष्ट्रभाषा मानना पड़ेगा। यूनाइटेड स्टेट्स, इटली, इङ्गलैंड, फ्रांस और जर्मनी आदि भी प्रजासत्तात्मक अथवा प्रजातंत्रक राज्य अन्त में स्थिर हुए, सैकड़ों वर्ष व्यर्थ वैमनस्य और रक्तपात होता रहा, तुर्किस्थान और ईरानवालों को भी अन्त में चेत हुआ। क्या स्मरण नहीं है कि संयुक्त प्रान्त के भूतपूर्व लेफ़टिनेंट गवर्नर मि० मेकडानल महोदय ने नागरी अक्षरों को आखिर स्थान दे ही दिया। फिर हठवालों की क्या रही? कुछ वर्तमान समाचार सुनिए।

सुनी बात विशेष विश्वासयोग्य नहीं होती, तो भी कभी कभी किसी सभ्य पुरुष का कथन विश्वसनीय होना ही है। हाल में मैंने मुंशी देवीप्रसाद जी जोधपुरी महाशय से हिन्दी-प्रचार के विषय में कुछ पूछ पाछ की थी।

उन्होंने अपने एक छपापत्र में लिखा है कि टोंक (मुसलमानी राज्य) के माल का दफ़्र हिन्दी में है, वहां की छपी हुई एक रसीद भी उन्होंने देखी थी। उधर गुजरात की मुसलमानी रियासतों (राधनपुर, पालनपुर, वाला सिन्नार और जूनागढ़) में भी गुजराती के साथ हिन्दी जारी है। यह खुशी की बात है। मि० कृष्णस्वामी आय्यर के मत के अनुसार यदि नागरी वर्णों में कुछ सङ्केत और बढ़ा दिये जावें तो अरबी भाषा बड़ी खूबी के साथ लिखी जा सकेगी। नुक़ते के लिये नीचे बिन्दु देने, और अङ्गरेज़ी के 'ओ' का अर्द्धोच्चारण करने के लिये 'आ' के ऊपर एक ‿ इस आकार की आड़ी वक्र रेखा देने की प्रथा निकल आई है। सुना है कि सम्राट् अकबर के समय में एक प्रति कुरान मजीद की नागरी लिपि में लिखी गई थी, और अब इण्डियन प्रेस, प्रयाग, ने भी इसी लिपि में कुरान मजीद छापा है, पर मैंने उसे देखा नहीं। सम्भव है उसमें अरबी-भाषा के लिए उपयुक्त साधक-बाधक चिन्हों का प्रयोग किया हो। यह विषय दूसरा है, इस कारण इसका विस्तार नहीं बढ़ाता।

ऊपर लिखी हुई बातों से स्पष्ट सिद्ध है कि समयानुसार हिन्दी मुसलमानों पर अपना प्रभाव डालती आ रही है। प्रकृति के विकार को कोई रोक नहीं सकता। ग्रीष्मकाल का वायु-मण्डल तप्त होकर सब जीवों को एक समान व्यथित करता है। ख़सख़ाने के अन्दर रहने-वालों पर भी उसका हमला होता रहता है। इसी तरह शीतल वायु का असर भी सब पर समान होता है। अतएव भविष्य में हिन्दी भाषा अपने आप राष्ट्रभाषा बन जावेगी। पूर्व दिशा की अरुणिमा प्रातःकाल की सूचक है।

कुछ ज़रूरी बातें।

मैं पूर्व में कह चुका हूं कि मानवी संसार में कुछ उन्नति अथवा अवनति हुई है और आगे होगी, उसका मूल कारण
बिना भाषा-ज्ञान के मनुष्य अ
से उत्तम विचारों को न तो दूसरों पर
सकता और न दूसरों को समझा ही
है। इसलिए उसे अनेक भाषाओं में
करना पड़ता है। तब यह कैसे हो स
कि वह जिस देश में जावे, वहाँ की
सीखे बिना अपना निर्वाह कर सके। मुसल
लोगों की अपेक्षा इस तत्व को अँग्रेज़ों
अधिक समझा है। इसी कारण वह प्रजामत क
समझने में सफल हुए हैं।

यह एक बहुत मोटी बात है कि जब मु
मान यहाँ आये तब वे हिन्दुस्थान की भाषा
अजान थे। कुछ दिन के बाद उन्होंने हि
सीखी और उसी हिन्दी ने उर्दू की सृष्टि प
स्पर के व्यवहार से अपने आप करा ली। धी
धीरे-उर्दू से फ़ारसी के कठिन शब्दों को पृथ
कर उन्होंने संस्कृत-मिश्रित शब्दों की
भी सीखी और अब भी सीखेंगे। पूर्व में
प्रमाण भली भांति बताये गये हैं। अब
तरह हिन्दू-मुसलमानों का साथ नहीं छू
सकता, उसी प्रकार हिन्दी उर्दू का।

आख़िरी अर्ज़।

मुल्की लिहाज़ से हमें हिन्दी को जगह देनी ही
होगी। यह उसका घर है, उसे हम कैसे दुर-
दुरा सकते हैं? जब हमारा सितारा प्रकाशमान
था तब इसी दोष ने प्रजामत पर विजय
न पाई थी। सम्राट् अकबर के ध्यान में यह बात
आई थी। इसीसे उसके समय में एतद्देशीय
साहित्य की चर्चा उसके दरबार में बड़े ज़ोर-
शोर से होती थी। इसीसे हिन्दू-मुसलमानों में
विशेष मेल हो गया था। आज अङ्गरेज़ी रामराज्य
के रहते, छापाख़ाना, रेल, तार और जहाज़
आदि के होते हुए यदि हम लोग परस्पर में
मिल कर न रहें तो लज्जा

रहना भाषा के विना हो नहीं सकता। मिलने के लिए हम दोनों (हिन्दू-मुसल-)को थोड़ा थोड़ा आगे बढ़ना होगा, अर्थात् त और फ़ारसी का मोह छोड़ हिन्दी और का एक मिश्रित सुन्दर सरल रूप बनाना। समाचारपत्रों अथवा नाविलों में उन को भी लिखना हम लोगों को छोड़ देना जो इतिहास लिखने के बहाने हमारी ली या गन्दगी ज़ाहिर करते हों, क्योंकि भागनेवाले को गाली देकर हम पास बुला सकते!

ा का सुधार लोगों के दिलों को खींच लेता -अङ्गरेज़ी भाषा का प्रचार गवाही देने को द है। साहित्य बढ़ाओ, मीठी वाणी बोलो, र्दी करो जिससे आपस में प्रेम पैदा हो, मिटे, भलाई बढ़े।

गाभ्यासियों को छोड़कर गृहस्थाश्रमवाले नहीं रह सकते। किसीका बोलना बन्द ा सख्त सज़ा है। जो लोग कभी रेल का ा सफ़र करते हैं वे इस बात को अच्छी समझ सकते हैं। जिस गाड़ी में कोई मी बैठा हो, उस गाड़ी में जब दूसरे का कोई विद्वान् पुरुष आ बैठे, उस समय हम दोनों किसी एक ही भाषा के ज्ञाता तो एक दूसरे का मुंह ताकते हुए बैठे। जी ऊब आवेगा। एक दूसरे के अनुभव से लाभ न उठा सकेंगे तब प्रेम कैसे होगा? मुझे स्वयं कई बार दूर दूर तक रेल पर जाने का अवसर हुआ है। उस समय साधारण हिन्दी भाषा से ही मेरे सब काम निकले हैं। मद्रासी, मराठे, बंगाली और उड़िया लोगों से मैंने घण्टों बातें कीं, उनके प्रान्त की रीति-भाँति का अनुभव प्राप्त किया, अधिकारियों के प्रति उनके ध्यान का अनुमान जाना, उनका धर्म-विश्वास कैसा है, देश-प्रेम और राज्य-भक्ति उनमें कितनी है, हिन्दू और मुसलमानों में उनके प्रान्त में मेल है या नहीं, उपज, व्यवहार और खनिज पदार्थ आदि सम्बन्धी अनेक बातें भी सहज में मालूम कीं, अधिक कहना सूरज को दीपक से देखना है। आप लोग विद्वान् हैं आप लोगों का प्रेम देख मैंने भी अनापशनाप दो चार शब्द लिख दिये हैं। अब वे चाहे मान्य हों अथवा अमान्य। अन्त में मैं सम्मेलन के सञ्चालकों और सभ्यों को हार्दिक धन्यवाद देता हूं कि जिन्होंने मुझ अल्पज्ञ को अपने विचार प्रकट करने का सुअवसर दिया। मुझे इस लेख के लिखने में शिवसिंहसरोज, कवि-कीर्ति-कलानिधि और सरस्वती मासिकपत्रिका से सहायता मिली है, तथा मुंशी देवीप्रसाद जी जोधपुरी ने मुझे ऐतिहासिक सच्ची घटनाएँ बताई हैं जिससे मैं उक्त पुस्तकों के सम्पादकों और मुंशी जी को हार्दिक धन्यवाद देता हूं।

हिन्दी के मुसलमान कवि ।

—:o:—
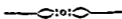
[लेखक-पण्डित गणेशविहारी मिश्र, पण्डित श्यामविहारी मिश्र, पण्डित शुकदेवविहारी मिश्र]

—:o:—

सम्मेलन ने कृपापूर्वक हमको यह काम सौंपा है कि आप महाशयों को मुसलमान कवियों का कुछ हाल सुनावें। इस गम्भीर विषय पर कुछ लिखने के लिये बड़ी गवेषणा की आवश्यकता है और उचित था कि कोई विशेष श्रमशील और अनुभवी व्यक्ति इस विषय को हाथ में लेता। परन्तु बड़ों की आज्ञा शिरोधार्य्य मान कर हम ही 'निज पौरुष परमान ज्यों मशक उड़ाहिं अकास' का न्याय धारण कर के इस प्रयत्न में प्रवृत्त होते हैं।

हिन्दी भाषा प्राकृत का वर्त्तमान रूप है, अर्थात् प्राकृत भाषा ही बिगड़ते बिगड़ते इस रूप को प्राप्त हुई है। यह बिगाड़ किसी एक समय में नहीं हुआ, परन्तु धीरे धीरे शताब्दियों तक होता रहा। अतः सिवा मोटे प्रकार से और किसी भाँति हिन्दी का जन्मकाल नहीं बतलाया जा सकता। इस मोटे प्रकार से हिन्दी का जन्मकाल संवत ८०० के लगभग माना जा सकता है। मुसलमानों ने आर्य्यावर्त्त में सम्बन्ध होते ही हिन्दी काव्य की ओर ध्यान देना आरम्भ कर दिया था, यहां तक कि जिस समय महमूद ग़ज़नवी ने संवत १०८० में भारत पर चढ़ाई की थी उस समय उसकी सभा में हिन्दी जाननेवाले और कविता के समझनेवाले तक प्रस्तुत थे। यह आक्रमण महाराजा कालिंजर के राज्य पर हुआ था जहां के स्वामी राजानन्द ने एक छन्द महमूद की प्रशंसा में लिख कर उसके पास भेजा। सुल्तान के हिन्दी जाननेवाले सभ्यों ने जब उसका अर्थ कहा तब सुल्तान तथा उस के अरबी और फ़ारसी जाननेवाले सभासद बहुत प्रसन्न हुए। इससे उसने न केवल अपनी चढ़ाई ही कालिंजर दुर्ग से उठा ली, वरन् १४ क़िले और राजा को पुरस्कार स्वरूप दिये। इस समय के पीछे से ही मुसलमानों ने हिन्दी का पठन पाठन प्रारम्भ कर दिया होगा, परन्तु अब उसका कोई विशेष प्रमाण नहीं मिल सकता। सुलंकी महाराजा जयसिंह देव ने सं० ११५० से १२०० तक अन्हलपूर पट्टन में राज्य किया था। उनके समय में कुतुबअली नामक एक हिन्दी का कवि तथा एक मसजिद का उपदेशक था। उसकी मसजिद कुछ लोगों ने गिरा दी थी जिस पर उसने एक छन्दोबद्ध प्रार्थनापत्र राजा को दिया। राजा ने जांच के उपरान्त मसजिद फिर से बनवा दी और उसके तोड़नेवालों को यथोचित दंड दिया। इसकी कविता का कोई उदाहरण अब नहीं मिलता। इससे यह विदित होता है कि मुसलमानों ने बहुत प्राचीन काल से हिन्दी कविता करना प्रारम्भ कर दिया था। इतिहास के अभाव से प्रायः दो सौ वर्ष तक किसी मुसलमान कवि की कविता या नाम नहीं मिलता।

अमीर ख़ुसरो का देहान्त संवत १३८२ में हुआ था। यह महाशय फ़ारसी के एक प्रसिद्ध कवि थे। पर हिन्दी भाषा के भी बहुत से छन्द, पहेलियां, मुकरी, इत्यादि इनके रचित मिलते हैं। प्रसिद्ध कोषग्रन्थ ख़ालिकबारी इन्हीं का लिखा हुआ है। यह उस समय बना था जब कि फ़ारसी और हिन्दी का मेल हो कर वर्त्तमान उर्दू की नींव पड़ रही थी। बहुत लोगों का मत है कि उर्दू का जन्म शाहजहां के समय में

हुआ था और यह मत यथार्थ भी है। परन्तु खसरो की कविता देखने से यह अवश्य कहना पड़ता है कि उर्दू की नीव उसी समय से पड़ रही थी। इनकी कविता साधारण हिन्दी-फ़ारसी मिश्रित हिन्दी और खड़ी बोली में पाई जाती हैं, यथा—

ख़ालिक बारी सिरजनहार।
वाहिद एक बिदा करतार॥
रसूल पैग़म्बर जान बसीठ।
यार दोस्त बोलै जो ईठ॥
ज़ेहाल मिसकीं मकुन तग़ाफ़ुल।
दुराय नैना बनाय बतियाँ॥
किताबे हिजराँ नदारम् ऐ जाँ।
न लेहु काहे लगाय छतियाँ॥
आदि कटे से सब को पाले।
मध्य कटे से सब को घालै॥
अंत कटे से सब को मीठा।
सो खुसरो मैं आँखों दीठा॥

अमीर खुसरो के समय में ही मुल्ला दाऊद नामक एक कवि ने हिन्दी काव्य में नूरक और चन्दा का प्रेम कथन किया है, परन्तु इसकी रचना हमारे देखने में नहीं आई।

संवत १५६० में कुतबन शेख़ ने मृगावती नामक एक उत्तम काव्य ग्रन्थ बनाया। इसमें एक प्रेमकहानी पद्मावत की भांति दोहा चौपाइयों में कही गई है और इसकी रचना-शैली भी उसी प्रकार की है, यद्यपि उत्तमता में यह उसके बराबर नहीं पहुंचती। शेख़ कुतबन शेख़ बुरहान चिश्ती के चेले थे और शेरशाह सूर के पिता हुसेनशाह के यहां रहते थे। उदाहरण—

साहि हुसेन अहै बड़ राजा।
छत्र सिंघासन उनको छाजा॥
पंडित औ बुधिवंत सयाना।
पढ़े पुरान अरथ सब जाना॥
धरम दुदिष्ठिल उनके छाजा।
हम सिर छाँह जियौ जग राजा॥
दान देइ औ गनत न आवै।
बलि औ करन न सरबरि पावै॥

मलिक मोहम्मद जायसी मुसलमान कवियों में एक परम प्रसिद्ध कवि हैं। इन्होंने अपना प्रसिद्ध ग्रन्थ पद्मावत सं० १५७५ से सं० १६०० तक बनाया। इनका नाम केवल मोहम्मद था जिसके पहिले मलिक शब्द सम्मानसूचक लगा दिया गया है और जायस में रहने के कारण यह जायसी कहलाते थे। पद्मावत के अतिरिक्त इन्होंने एक और ग्रन्थ अखरावट नामक बनाया जिसका आकार छोटा है और कविता की उत्तमता में भी यह पद्मावत से नीचा है। पद्मावत में २६७ पृष्ठ हैं और उसमें चित्तौर के महाराना का पद्मावत से विवाह और अलाउद्दीन से उनका युद्ध वर्णित है। इस बड़े ग्रन्थ में स्तुति, राजा, रानी, षटऋतु, बारहमासा, नख शिख, ज्योतिष, स्त्रियों की जाति, राग, रागिनी, रसोई, दुर्ग, फ़क़ीर, प्रेम, युद्ध, दुःख, सुख, राजनीति, विवाह, बुढ़ापा, मृत्यु, समुद्र, राजमन्दिर आदि सभी विषयों का वर्णन है और प्रत्येक विषय को जायसी ने बड़ी उत्तम रीति और विस्तार से कहा है। इनका वर्णन आदि कवि वाल्मीकि की तरह विस्तार से होता है और उत्तम भी है। जायसी ने रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा अच्छी कही है और यत्र तत्र सदुपदेश भी अच्छे दिये हैं। इन्होंने स्तुति, नख शिख, रसोई, युद्ध और प्रेमालाप के वर्णन अच्छे किये हैं। इनकी भाषा अवध की पूर्वी भाषा है। उदाहरण—

"कहउँ लिलार दुइज कै जोती।
दुइजे जोति कहाँ जग ओती॥
सहस किरनि जो सुरजहि पाये।
देखि लिलार सहौं छिपि जाये॥

का सिर बरनौं दिपइ मयंकू।
　　चाँदु कलंकी वह निकलंकू॥
नेहि लिलार पर तिलकु बईठा।
　　दुइज पास मानौं धुव डीठा॥"

"गोरइ दीख साथु सब जूझा।
　　अपन काल नेरे भा बूझा॥
कोपि सिंघ सामुहि रन मेला।
　　लाखन सन ना मरइ अकेला॥
जेहि सिर देइ कोपि तरवारू।
　　सहि घोड़े टूटइ असवारू॥
टूटि कंध सिर परहिं निरारी।
　　माठ मजीठ जानु रन ढारी॥
तुरुक बोलावैं बोलैं नाहीं।
　　गोरइँ मीचु धरी मन माँहा॥
सिंघ जियत नहिं आपु धरावा।
　　मुए पाछ कोऊ घिसियावा"॥

दिल्ली के जगत्प्रसिद्ध बादशाह अकबर का जन्म सं० १६०० में हुआ था। इन्होंने अपने प्रसिद्ध न्याय और दाक्षिण्य भाव के कारण हिन्दी कवियों का भी विशेष सम्मान किया और कविता को इतना अपनाया कि स्वयम् भी काव्य करने लगे। इनकी रचना शुद्ध ब्रजभाषा में होती थी और वह प्रशंसनीय भी है। यथा–

साहि अकब्बर बाल की बाँह,
　　अचिन्त गही चलि भीतर भौने।
सुंदरि द्वारहि दीठि लगाय कै,
　　भागिबे को भ्रम पावति गौने॥
चौंकति सी चहुँ ओर बिलोकति,
　　संक सकोच रही मुख मौने।
यों छबि नैन छबीली के छाजत,
　　मानौं बिछोह परे मृगछौने॥१॥

इबराहीम आदिलशाह बीजापुर के बादशाह थे। इन्होंने सं० १६०५ के लगभग नवरस नामक रसों और रागों का एक उत्तम ग्रन्थ बनाया।

बिहारी-वासी जमालुद्दीन और इबराहीम भी इसी समय अच्छे कवि हुए हैं।

तानसेन पहिले ग्वालियर के रहनेवाले ब्राह्मण और स्वामी हरिदास के शिष्य थे। इनका नाम त्रिलोचन मिश्र था। पहिले यह गान-विद्या में बैजूबावरे के चेले थे, परन्तु उसके बाद शेख़ मोहम्मद गौस के शिष्य हुए और उन्हींके संग में यह मुसलमान भी हो गये। यह बड़े ही प्रसिद्ध गायनाचार्य हुये और कविता भी उत्तम करते थे। इन्होंने (१) संगीतसार, (२) रागमाला, तथा (३) श्रीगणेशस्तोत्र नामक तीन ग्रन्थ बनाए हैं। इन्होंने सूरदास जी की प्रशंसा में निम्नलिखित दोहा बनाया है—

किधौं सूर को सर लग्यो किधौं सूर की पीर।
किधौं सूर को पद लग्यो तन मन धुनत शरीर॥

मुसलमानों में परम प्रसिद्ध और सर्वोत्कृष्ट कवि खानखाना अब्दुल रहीम का जन्म सं० १६१० में हुआ। यह महाशय अकबरशाह के पालक बैरम खाँ के पुत्र थे। यह सदा बादशाह के बड़े बड़े ओहदों पर रहा किये यहाँ तक कि एक दफ़े उनकी समस्त सेना के सेनापति हो गये थे। इन्होंने पात्रज्ञी बन गुणियों और कवियों का भारी सम्मान किया। एक बार गंगा एक छन्द के पुरस्कार में गङ्ग कवि को ३६ लाख रुपये इन्होंने दान दिये थे। यह अरबी, फारसी, संस्कृत तथा हिन्दी के पूर्ण विद्वान थे। हिन्दी में इन्होंने (१) रहीम सतसई, (२) बरवै नायिका भेद, (३) रास पंचाध्यायी और (४) शृङ्गार सोरठा नामक ग्रन्थ बनाए हैं। इनके अतिरिक्त इन्होंने और भाषाओं में भी ग्रन्थ रचना की है। इन्होंने ब्रजभाषा, खड़ी बोली और पूर्वी बोली में कविता की है। इनका प्रत्येक छन्द एक अपूर्व आनन्द देता है। यह महाशय वास्तव में महापुरुष थे। इनका महत्व इनकी कविता से भलीभाँति प्रकट होता है। इन्हें [illegible] दिन ५१ और गुरुवार को यह पसन्द नहीं करते थे। इनके विचार स्वतंत्र, ज्ञान गंभीर और अनुभव बहुत ही विस्तृत था। इन्होंने नीति के दोहे बहुत ही उत्तम कहे हैं। इनकी रचना

बहुत सच्ची है और उसमें हर स्थान पर इनकी आत्मीयता झलकती है। उदाहरण—

कलित ललित माला वा जवाहिर जड़ा था।
चपल चखनवाला चाँदनी में खड़ा था॥
टीलि ओखि जल अँचवनि तरुनि सुजानि।
धरि खसकाय घइलना मुरि मुसक्यानि॥
काम न काहू आवई मोल न कोऊ लेइ।
बाजू टूटे बाज को साहेब चारा देइ॥
खैर खून खाँसी खुसी बैर प्रीति मधुपान।
रहिमन दाबे ना दबैं जानत सकल जहान॥
अब रहीम मुसकिल परी गाढ़े दोऊ काम।
साँचे तेतौ जग नहीं झूठे मिलैं न राम॥
माँगे मुकुरिन को गयो केहि न छाँड़ियों साथ।
माँगत आगे सुख लह्यो ते रहीम रघुनाथ॥
मुकता कर करपूर कर चातक तृपहर सोय।
एतो बड़ो रहीम जल कुथल परे विप होय॥
कमला थिर न रहीम कहि यह जानत सब कोय।
पुरुप पुरातन की वधू क्यों न चंचला होय॥

क़ादिरबक्स* पिहानी जिला हरदोई निवासी सं० १६३५ में उत्पन्न हुए। यह सैयद इबराहीम के शिष्य थे। इनकी काव्य उत्तम होती थी। इनके स्फुट छन्द देखने में आते हैं। अब तक कोई ग्रन्थ इनका प्राप्त नहीं हुआ। उदाहरण—

गुन को न पूँछै कोऊ औगुन की बात पूँछै कहा भयो दई कलयुग यों खरानो है। पोथी औ पुरान ज्ञान ठट्ठन में डारि देत चुगुल चबाइन को मान ठहरानो है॥ कादिर कहत याते कछू कहिबे की नाँहि जगत की रीति देखि चुप मन मानो है। खोलि देखो हियो सब भांतिन सों भांति भांति गुन ना हेरानो गुन गाहकै हेरानो है॥ १॥

रसखान को बहुत लोग सैयद इबराहीम पिहानीवाले समझते हैं। परन्तु वास्तव में यह दिल्ली के पठान थे जैसा कि दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता में लिखा हुआ है। इन्होंने सं० १६७१ में प्रेमवाटिका और सुजान रस खान नामक बड़े ही उत्तम ग्रन्थ बनाये। मुसलमान होने पर भी इनको वैष्णवधर्म इतनी श्रद्धा थी कि ये श्रीनाथजी के दर्शन गये परन्तु द्वारपाल ने जाने नहीं दिया! इस यह तीन दिन तक बिना अन्न जल पड़े रहे। श्रीविट्ठलनाथ महाराज ने इन्हें अपना शिष्य क के वैष्णवधर्म में सम्मिलित कर लिया। से वैष्णवधर्म और विट्ठलनाथ जी की महा उदारता प्रकट होती है। इनकी कविता से की भक्ति और प्रेम पूर्णतया प्रकट होते हैं, उसमें प्रेम का परम मनोहर चित्र खींचा गय है। कविजन इनकी कविता को बहुत पसन्द करते हैं। उदाहरण—

दम्पति सुख अरु विपय सुख पूजा निष्ठा ध्यान
इनते परे बखानिए सुद्ध प्रेम रसखान॥
मित्र कलत्र सुबन्धु सुत इन में सहत सनेह।
सुद्ध प्रेम इनमें नहीं अकथ कथा कहि यह॥
यक अङ्गी बिनु कारनहि यक रस सदा समान।
गनै प्रियहि सरबस्व जो सोई प्रेम प्रमान॥
डरै सदा चाहै न कछु सहै सबै जा होय।
रहै एक रस चाहिकै प्रेम बखानौ सोय॥
देखि गदर हित साहिबी दिल्ली नगर मसान।
छिनहि बादसा वंस की ठसक छोंड़ि रसखान॥
प्रेम निकेतन श्री बनहि आप गोवर्धन धाम।
लह्यो सरन चित चाहिकै युगुल सरूप ललाम॥

मानुस हौं तो वही रसखान बसौं मिलि गोकुल गोप गुवारन। जो पसु होउँ कहा बसु मेरो चरौं नित नन्द की धेनु मझारन॥ पाहन हौं तौ वही गिरि को जु कियो ब्रज छत्र पुरन्दर कारन। जो खग होउँ बसेरो करौं वही का लिन्दी कूल कदम्ब की डारन॥

सैयद मुबारक अली बिलग्रामी का जन्म सं० १६४० में हुआ था। यह महाशय अरबी

* शेख रहीम मुहम्मद के भाई थे। इन्होंने स्फुट दोहे अच्छे बनाए हैं।

रसी तथा संस्कृत के बड़े विद्वान् तथा भाषा सत्कवि थे। सुना जाता है कि इन्होंने दस हों पर सौ सौ दोहे बनाये हैं जिनमें अलक-तक और तिल-शतक प्रकाशित हो चुके हैं। का कोई अन्य ग्रन्थ देखने में नहीं आया। की काव्य परम मनोहर और प्रशंसनीय है। दाहरण —

लक मुबारक तिय बदन लटकि परी यों साफ़।
सनवीस मुनसी मदन लिख्यो कांच पर क़ाफ़॥
व जग पेरत तिलन को थक्यो चित्त यह हेरि।
व कपोल को एक तिल सब जग डारयो पेरि॥

अकबर के पुत्र शाहज़ादा दानियाल भी छ कविता करते थे। इनका कविता-काल ० १६६० के लगभग समझना चाहिये।

सं० १६७७ में शेख़ हुसन के पुत्र उसमान चित्रावली नामक एक प्रेमकहानी पद्मावत ढंग पर दोहा चौपाइयों में बनाई है। इस-ी रचना उत्तम और मनोहर है। उदाहरण—

आदि बखानौं सोई चितेरा।
यह जग चित्र कीन्ह जेहि केरा॥
कीन्हेसि चित्र पुरुष अरु नारी।
को जल पर अस सकइ सँवारी॥
कीन्हेसि जोति सूर ससि तारा।
को असि जोति लिखइ को पारा॥
कीन्हेसि नयन बेद जेहि सीखा।
को अस चित्र पवन पर लीखा॥

जमाल और बारक भी इसी समय के वि हैं।

आगरानिवासी ताहिर कवि ने सं० १६७८ ई उत्तम छन्दों में एक कोकसार बनाई। इनकी रचना परम ललित, शान्त और गम्भीर है। था—

पदुम जाति तनु पदमिनि बानी।
कंज सुबास दुवादस बानी॥
कंचन बरन कमल की बासा।
लोयन भँवर न छांड़इ पासा॥
अलप अहार अलप मुख बानी।
अलप काम अति चतुर सयानी॥
झीन बसन महँ झलक इकाया।
जस दरपन महँ दीपक छाया॥

दिलदार कवि का कविताकाल सं० १६८० के लगभग है। इसी संवत् में शेख़ नज़ीर आगरानिवासी ने ज्ञानदीपक नामक ग्रन्थ बनाया।

ताज—यह मुसलमान जाति की स्त्री थीं। इनके वंश, स्थान इत्यादि का ठीक पता नहीं लगा। शिवसिंहसरोज में इनका संवत् १६५२ और मुंशी देवीप्रसाद ने सं० १७०० दिया है। इनकी कविता बड़ी ही सरस और मनोहर है। यह अपनी धुनि की बड़ी पक्की थीं। रसखानि की भांति यह भी श्रीकृष्णचन्द्र जी भक्ति में रही हुई थीं। इनकी कविता पंजाबी और खड़ी बोली मिश्रित है। उदाहरण—

"सुनो दिलजानी मेड़े दिल की कहानी तुम दस्त हीं बिकानी बदनामी भी सहूँगी मैं। देव पूजा ठानी मैं निवाजहू भुलानी तजे कलमा कुरान सारे गुनन गहूँगी मैं॥ स्यामला सलोना सिरताज सिर कुल्लेदार तेरे नेह दाग में निदाघ ह्वै दहूँगी मैं। नंद के कुमार कुरबान ताणी सूरत पै तांण नाल प्यारे हिन्दुआनी ह्वै रहूँगी मैं॥ १॥"

आलम महाशय सं० १७३५ लगभग हुए हैं। शिवसिंहसरोज में इनका बनाया एक छन्द शाहजादा मोअज़्ज़म की प्रशंसा का लिखा है। यह मुअज़्ज़म सं० १७६३ में जाजऊ की लड़ाई में मारे गए थे। उन्हींकी कविता होने के कारण इनका समय निर्धारित किया गया है। यह महाशय जाति के ब्राह्मण थे परन्तु शेख़ नामक एक रङ्गरेज़िन के प्रेम में फँस कर यह मुसलमान हो गये और उसके साथ विवाह करके यह सुख से रहने लगे। इनके जहान नामक एक पुत्र भी हुआ था। जान पड़ता है कि इनकी

प्रियतमा का देहान्त इनके सामने ही हो गया था क्योंकि उसके विरह में इन्होंने एक छन्द वर्णन किया है—

"जा घर कीन्हे विहार अनेकन ता घर कांकरी वठि चुन्यो करैं। जा रसना सों करी वहु वातन ता रसना सों चरित्र गुन्यो करैं॥ आलम जौन से कुंजन में करी केलि तहां अव सीस धुन्यो करैं। नैनन में जे सदा रहते तिनकी अव कान कहानी सुन्यो करैं॥"

इनका कोई ग्रन्थ हमारे देखने में नहीं आया, परन्तु खोज में आलमकेलि नामक इनका एक ग्रन्थ लिखा है। हमने इनके वहुत से छंद संग्रहों में देखे हैं। इनकी कविता बड़ी ही मधुर और रस भरी होती है। यह महाशय बड़े ही प्रेमी कवि थे।

शेख़ रङ्गरेज़िन पहिले अपना ही काम करती थी। कहते हैं कि आलम कवि ने इसे एक वार एक पगड़ी रङ्गने को दी जिसके छोर में एक कागज़ का टुकड़ा वँधा रह गया था। उसने खोलकर देखा तो उसमें यह दोहार्ध लिखा था—

"कनक छुरी सी कामिनी काहे को कटि छीन।"

यह आधा दोहा आलम ने वनाया था, पर और उस समय न वन सकने से पीछे वनाने को रख छोड़ा था। शेख़ ने उसका दूसरा पद यों पूरा करके उसी टुकड़े पर लिख पाग रङ्ग उस टुकड़े को उसीमें वांध दिया—

"कटि को कंचन काटि विधि कुचन मध्य धरिदीन"

आलम जी ने अपनी पगड़ी ले आकर जब यह पद पढ़ा तो उसे रँगाई देने आये और उस से पूछा कि "इस दोहे को किसने पूरा किया?" उत्तर पाया कि "मैंने!" वस आलम ने एक आना पगड़ी की रंगाई और एक सहस्र मुद्रा दोहे की वनवाई शेख़ को दी। उसी दिन से इन दोनों में प्रेम हो गया और अन्त में आलम ने मुसलमानी मत ग्रहण करके इसके साथ विवाह कर लिया। कहते हैं कि शेख़ ने अपने पुत्र का नाम जहान रक्खा था। एक वार आलम के आश्रयदाता शाहज़ादा मुअ़ज़्ज़म ने हँसी करने के विचार से शेख़ से पूछा, "क्या आलम की औरत आप ही हैं?" इस पर इसने तुरन्त उत्तर दिया, "जहांपनाह! जहान की मां मैं ही हूं।" शेख़ के छन्द परम मनोहर होते थे। हमने इनका कोई ग्रन्थ नहीं देखा, परन्तु इन संग्रहों में वहुत पाये हैं। इनकी भाषा व्रज-भाषा है। इनकी रचना में इनके प्रेमी होने का प्रमाण मिलता है। यह महिला वास्तव में एक सुकवि थी। उदाहरणार्थ इनका एक छन्द यहां लिखा जाता है—

"रति रन विषे जे रहे हैं पति सनमुख तिन्हैं वकसीस वकसी है मैं विहसि कै। करन को कंकन उरोजन को चन्द्रहार कटि माहिं किंकिनी रही है कटि लसि कै॥ शेख़ कहै आनन को आदर सों दीन्हो पान नैनन में काजर विराजै मन वसि कै। ए रे वैरी वार ये रहे हैं पीठि पाछे याते वार वार वांधति हौं वार वार कसि कै॥"

पठान सुल्तान राजगढ़, भूपाल, के नवाब थे। ये महाशय कविता के परमप्रेमी संवत् १७६१ के इधर उधर हो गये हैं। इनके नाम पर चन्द कवि ने विहारी सतसई के दोहों पर कुण्डलियाएं लगाई हैं। चन्द ऐसे सुकवि को आश्रय देना इनकी गुणग्राहकता प्रकट करता है। उदाहरण—

नासा मोरि नचाय दृग करी कका की सौंहैं।
कांटे सौं कसकति हिये गड़ी कटीली भौंहैं॥
गड़ी कटीली भौंहैं केस निरवारति प्यारी।
तिरछी चितवनि चितै मनो उर हनति कटारी॥
कहि पठान सुल्तान विकल चित देखि तमासा।
याको सहज सुभाय और को सुधि वल नासा॥

अब्दुल रहमान कवि औरंगज़ेब के पुत्र वहादुर शाह के मनसबदार थे। इन्होंने यमक शतक नामक एक ग्रन्थ वनाया है जिसमें

०७ दोहे हैं, जिनमें श्लेष, यमक, एकाक्षरी इत्यादि के प्रबन्ध हैं और विविध विषय कहे गये हैं। इस ग्रन्थ से विदित होता है कि यह महाशय भाषा पूर्ण रीति से जानते थे और संस्कृत में भी कुछ बोध रखते थे। इस ग्रन्थ की भाषा कठिन है जिसका कारण स्यात् चित्र-काव्य हो। उदाहरण—

पलकन में राखौं पियहि पलक न छांड़ौं संग।
तरी सो ते होहि जिन डरपत अपने अंग॥
रकी कर की चूरियां बरकी बरकी रीति।
रकी दर की कंचुकी हरकी हर की प्रीति॥"

सभा के खोज में महबूब कवि का जन्म काल संवत १७६१ दिया हुआ है। इनका कोई ग्रन्थ नहीं मिला, पर छन्द बहुत देखे गये हैं। इनकी रचना सरल और सानुप्रास थी और यह परम प्रशंसनीय है—

मृग मद गन्ध मिलि चन्द सुगन्ध बहै
केसरि कपूर धूरि पूरत अनन्त है।
मोर मद गलित गुलाबन चलित भौंर
भनै महबूब तौर और दरसन्त है॥
ज्यौं परपंच सरपंच पंचसर जूनै
कर लै कमान तान विरही हनन्त है।
छीनि छिति लई ऋतु राजन समाज नई
उनई फिरत भई सिसिर बसन्त है॥

याकूब खां ने संवत १७७५ में 'रसभूषण' ग्रन्थ रचा। इन्होंने केशवदास-कृत रसिक-प्रिया की टीका भी बनाई है।

सैयद गुलाम नबी बिलग्रामी उपनाम रसलीन कवि ने अट्ठारहवीं शताब्दी में कविता की थी। इन्होंने 'अंगदर्पण' और 'रस-प्रबोध' नामक दोहों के दो ग्रन्थ बनाये हैं। अंगदर्पण संवत १७८४ में बना था। इसमें १७७ दोहों द्वारा नख शिख का विषय कहा गया है। इसमें उपमायें, रूपक और उत्प्रेक्षायें उत्तम हैं। 'रस प्रबोध' एक बड़ा ग्रन्थ है जिस में ११५५ दोहों द्वारा रसों का विषय बड़े विस्तारपूर्वक और बड़ी उत्तम रीति से सांगो-पांग वर्णित है। रसों का विषय भाव भेद पर अवलम्बित है, इस कारण रसलीन ने इस ग्रन्थ में भावभेद भी बड़े विस्तार के साथ कहा है। भावभेद में आलम्बन के अन्तर्गत नायिकाभेद और उद्दीपन में षड्ऋतु भी आ जाते हैं। इन विषयों का भी इस कवि ने उत्तम और सांगो-पांग वर्णन किया है। यह ग्रन्थ संवत १७८८ में समाप्त हुआ। रसलीन ने मुसलमान होने पर भी ब्रजभाषा बहुत शुद्ध लिखी है और उसमें फ़ारसी के शब्द नहीं आने पाये हैं। इनकी भाषा और किसी ब्राह्मण कवि की भाषा में कुछ भी अन्तर नहीं है। यही दशा अधिकांश मु-सलमान कवियों की भाषा का है। इनकी कविता हर प्रकार से सुन्दर और सराहनीय है और इनकी गणना आचार्यों में है। उदाहरण—

मुकुत भये घर खोय के कानन बैठे जाय।
घर खोवत हैं और को कीजै कौन उपाय॥
कत देखाय कमिनि दई दामिनि को निज बाँह।
थरथराति सी तन फिरै फरफराति घन माँह॥
वृद्ध कामिनी काम ते सून धाम में गाय।
नेवर झनकावति फिरै देवर के ढिग जाय॥
तिय सैसव जोबन मिलै भेद न जान्यो जात।
प्रात समै निसि दौस के दुवौ भाव दरसात॥

अलीमुहिब खां उपनाम पीतम, आगरा-निवासी, ने संवत् १७८७ में खटमल-बाईसी नामक एक परम मनोहर हास्यरस पूर्ण ग्रन्थ, बनाया है। इसकी रचना सराहनीय है। यह ब्रजभाषा में कहा गया है। इस कवि के केवल यह २२ छन्द हमने देखे हैं, पर उन्हीं से इसकी रचना-पटुता प्रकट है। उदाहरण—

जगत के कारन करन चारौ वेदन के,
कमल में बसे वे सुजान ज्ञान धरि कै।
पोषन अवनि दुख सोखन तिलोकन के,
समुद में जाय सोये सेस सेज करि कै॥
मदन जरायो जो संहारयो दृष्टि ही सों सृष्टि,
बसे हैं पहार वेऊ भाजिहर परि कै।

बिधि हरिहर और इनते न कोई तेऊ,
  खाट पै न सोवैं खटमलन सों डटि कै॥

बाघन पै गयो देखि बनन में रहे छिपि,
  सांपन पै गयो तौ पताल ठौर पाई है।
गजन पै गयो धूरि डारत हैं सीस पर,
  बैदन पै गयो कहू दारू न बताई है॥

जब हहराय हम हरी के निकट गये,
  मोसों हरि कह्यो तेरी मति भूल छाई है।
कोऊ न उपाव भटकत जनि डोलैं सुनैं,
  खाट के नगर खटमलन की दोहाई है॥

नूरमहम्मद ने संवत १८०० के लगभग तीस वर्ष की अवस्था में इन्द्रावती नामक दोहा चौपाइयों में जायसीकृत पद्मावत के ढंग पर एक परमोत्तम प्रेमग्रन्थ बनाया है। इसका प्रथम भाग प्रायः १५० पृष्ठों में नागरी-प्रचारिणी ग्रन्थमाला में निकला है। इन्होंने बावेला आदि फारसी शब्द, और तृविष्टप, स्वान्त, वृन्दारक, स्तम्बेरम् आदि संस्कृत शब्द भी अपनी भाषा में रक्खे हैं। इन्होंने जायसी की भांति गंवारी अवधी भाषा में कविता की है, परन्तु फिर भी इनकी काव्यछटा अत्यन्त मनमोहिनी है। इनकी रचना से विदित है कि यह महाशय काव्यांग जानते थे। एक आध स्थान पर इन्होंने कूट भी कहे हैं। इनका मन-फुल-वारीवाला वर्णन बड़ा ही विशद बना है और योगी के अचेत होने तथा लट पर भी इनके भाव अच्छे बंधे हैं। इस कवि ने जायसी की भांति स्वाभाविक वर्णन खूब विस्तार से किये हैं और भाषा,भाव, वर्णन बाहुल्य तीनों में अपनी कविता जायसी से मिला दी है। इन्होंने प्रीति का भी अच्छा चित्र दिखाया है। उदाहरण—

जब लगि प्रेम बारि बहु बारी।
राजकुँवर कहँ हग भइ भारी॥
कहँउ नयन लट पर अनुरागे।
लट छिटकानि बदन के आगे॥
परी बदन पर लट लटकारी।
तपी दिवस मैं निसि अँधियारी॥
मोहि पैरा दरसन कर नेरा।
हना बान धन आँखिन केरा॥
यह मुख यह तिल यह लट कारी।
ये तो कहि कै गिरा भिखारी॥
एक कहा लट जामिनि होई।
राति जानि जोगी गा सोई॥
एक कहा मुख ससिहि लजावा।
लट योगी को मन अरुझावा॥
एक कहा लट नागिन कारी।
डसा गरल सों गिरा भिखारी॥

प्रेमी का बनाया हुआ अनेकार्थ-नाम-माला ग्रन्थ हमने देखा है। इसमें कुल १०३ छन्द जिनमें दोहाओं की विशेषता है। इनकी भाषा सरल और साधारण है। सरोजकार ने इनका जन्मकाल संवत् १७९८ लिखा है।

जुल्फ़िकार खां बुन्देलखंड के शासक संवत् १७८२ में उत्पन्न हुये थे। इन्होंने जुल्फ़िकार सतसई नामक एक उत्तम ग्रन्थ रचा है।

अनवर खां ने संवत् १८१० में अनवर-चन्द्रिका नामक सतसई की एक उत्तम और प्रख्यात टीका रची थी।

इस स्थान तक इस लेख में मुख्य मुख्य ३५ मुसलमान कवियों का वर्णन है जिनके नाम सुगमता के लिये अक्षरक्रम से यहां फिर लिखे जाते हैं—

१ अकबर
२ अनवर
३ अब्दुल रहमान
४ अमीर खुसरो
५ आलम
६ इबराहीम
७ इबराहीम आदिलशाह
८ उसमान
९ कादिर
१० कुतुब अली

कुतुबन शेख़
ख़ानख़ाना
जमाल
जमालुद्दीन पिहानीवाले
जायसी
ज़ुल्फ़िक़ार ख़ाँ
ताज
तानसेन
ताहिर
दिलदार
नूर महम्मद
पठान सुलतान
पीतम
प्रेमी
बारक
महबूब
मुबारक
मुल्ला दाऊद
याक़ूब ख़ाँ
रसखान
रसलीन
शेख़
शेख़ फ़हीम
शाहज़ादा दानियाल

इन ३४ कवियों का समय क्रम विभाजित ने से ज्ञात पड़ता है कि अकबर के पूर्व ल पांच महाशय हुये हैं, यद्यपि मुसलमानों हिन्दी का प्रचार पृथ्वीराज की पराजय के हले ही से चला था और इस नामावली में उस ल का एक कवि भी सम्मिलित है। अकबर समय संवत् १६१३ से प्रारम्भ होता है और पि इस महापुरुष का देहान्त संवत् १६६२ ही हो गया, पर इसके समय के कविगण बहुत छे तक जीवित रहे होंगे। अत. भाषा के चार से अकबर का काल १६२५ से १६८० मानना चाहिये। इस समय के १६ कवि उपर्युक्त नामावली में हैं। अतः प्रायः आधे कवि इसी गुणग्राही बादशाह के समय में हुये हैं जिनमें से कई ख़ास इसी व्यक्ति के आश्रित थे। स्वयं इस बादशाह ने तथा बीजापूर के बादशाह ने भी इस सुन्दर समय में कविता की है। हिन्दू कवियों की भी संख्या इस समय बहुत बढ़ी थी। इस परम सन्तोषजनक उन्नति का एक मात्र कारण अकबर ही न था, परन्तु अन्य कारणों में इसका प्रोत्साहन भी एक प्रधान कारण था और मुसलमानों में कविता प्रचार का अकबर बहुत ही बड़ा कारण था। अकबर के पीछे संवत् १७९० पर्यन्त मोग़ल साम्राज्य का समय समझना चाहिये। इस समय में उपर्युक्त उत्तम कवियों की गणना में ९ कवि हैं, जिससे प्रकट है कि यद्यपि मुसलमानों में अन्य भाषाओं का प्रेम अब भी चला जाता था पर वह कम हो चला था। अकबर के समय में तानसेन, ख़ानख़ाना, रसखान और मुबारक उत्तम कवि थे और इस काल में आलम, शेख़, महबूब और रसलीन यद्यपि बसेन थे पर तो भी परमोत्तम कवि थे। संवत् १७९० से अद्यपर्यन्त मुसलमानों की अवनति होती गई और अवनति के साथ उनका अन्य विद्याओं का प्रेम भी बहुत कम हो गया, यहां तक कि इस समय में केवल चार अच्छे हिन्दी के मुसलमान कवि हुये हैं और उनमें भी परमोत्तम एक भी न था। इन ३४ कवियों में कुतबन शेख़, जायसी, उसमान और नूरमोहम्मद ने देवताओं से सम्बन्ध न रखनेवाली प्रेमकथाओं की चाल हिन्दी में चलाई। हिन्दू कविगण प्रथम जब ऐसी कथाएं लिखते थे तब धार्मिक विचारों से किसी देवकथा का ओर अवश्य लिये रहते थे, पर मुसलमानों का धर्म-कथाओं से कोई सम्बन्ध न था, सो उन्होंने कोरी प्रेमकथाओं के उत्तम वर्णन किये। इन वर्णनों को देख हिन्दू कविगण ने भी कई वैसे ही ग्रन्थ बनाये। मुसलमान कवियों में जायसी, ख़ान-

ख़ाना, रसखान, मुबारक, आलम, शेख़ और रसलीन भाषा काव्य के एक आचार्य गिने जाते हैं यद्यपि काव्य प्रौढ़ता में वह ख़ानख़ाना (रहीम) और रसखान की समता नहीं कर सके हैं। ख़ानख़ाना ने नीति अच्छी कही है और रसखान, शेख़ तथा आलम प्रेमी कवि थे।

इस उपर्युक्त वर्णन में अकबर के काल त[illegible] सब कवि आ गये हैं, परन्तु उसके पीछे के [illegible] प्रधान प्रधान कवि ही लिखे गये हैं। अकबर के [illegible] के पीछे के अप्रधान कवियों का भी सूक्ष्म कथन [illegible] यहां किया जाता है। इनमें से ४१ कवियों [illegible] ज्ञात है और शेष का अद्यापि हमें विदित

	नाम	कविता काल संवत में		विवरण
(१)	अहमद	१६६६	...	स्फुट काव्य
(२)	कारे बेग	१७००	...	"
(३)	रज्जब जी	१७००	.	दादूदयाल के शिष्य। सर्वाङ्गी ग्रन्थ रचा।
(४)	क़ाज़ी क़दम	१७०६ के पूर्व	..	साखी ग्रन्थ।
(५)	हुसैन	१७०८	...	इनके छन्द कालिदास-हज़ारा में हैं।
(६)	दाराशाह	१७१०	.	दोहा-स्तव-संग्रह रचा। यह शाहजहां के बड़े[illegible]
(७)	मीर रुस्तम	१७३५	..	इनके छन्द कालिदास हज़ारा में हैं।
(८)	जैनुद्दीन मोहम्मद	१७३६	...	स्फुट काव्य। हमने इनका केवल एक छन्द का देखा है जो उत्तम है।
(९)	दानिशमन्द ख़ां	१७३७	...	औरङ्गज़ेब के कृपापात्र
(१०)	आसिफ़ ख़ां	१७३८		—
(११)	करीम	१७५४ के पूर्व	..	इनका नाम सूदन की नामावली में है।
(१२)	मुहम्मद	१७६०	..	—
(१३)	अब्दुलजलीलबिलग्रामी	१७६५	..	औरङ्गज़ेब के दरबार में थ।
(१४)	रहीम	१७८० के पूर्व	...	ख़ानख़ाना से इतर।
(१५)	आदिल	१७८५	..	स्फुट काव्य।
(१६)	आज़म ख़ां	१७९६	.	शृंगारदर्पण ग्रन्थ।
(१७)	तालिब शाह	१८००	...	खड़ी बोली मिश्रित काव्य।
(१८)	मीर अहमद बिलग्रामी	१८००	...	—
(१९)	रसनायक (तालिब अली बिलग्रामी)	१८०३	...	—
(२०)	यूसुफ़ ख़ां	१८२०	...	रसिक प्रिया व सतसई की टीका।
(२१)	[illegible] बिलग्रामी	१८३०	...	—
(२२)	[illegible] अली	१८३१	.	[illegible] चन्द्रिका
(२३)	काज़िम अली	१८५८	...	सिंहासन बत्तीसी।
(२४)	मिर्ज़ा [illegible] बिलग्रामी	१८६१	..	[illegible] सुकवि।

(२५) नवाब हिम्मत बहादुर १८६० —
(२६) सैयद पहाड़ १८८४ के पूर्व ... रस सार।
(२७) ईसवी १८८६ के पूर्व . टीका सतसई।
(२८) आज़म १८९० के पूर्व .. षड्ऋतु तथा नखशिख पर उत्तम काव्य की।
(२९) क़ासिम शाह १८९९ कथा हंस-जवाहिर।
(३०) हाजी १९१७ के पूर्व ... प्रेमनामा।
(३१) बख़्तावर ख़ाँ १९२२ बिजावर के रहने वाले। सुमीसार व धनुष-समैया रचे।
(३२) ख़ान १९२५ के पूर्व —
(३३) अलीमन १९३३ ... —
(३४) लतीफ़ १९३४ .. —
(३५) ख़ान अली १९५६ के पूर्व.. सियवर-केलि पदावली।
(३६) मीर (सैयद अमीर अली) वर्त्तमान देवरी कलांवाले।
(३७) हफ़ीज़ुल्ला ख़ाँ " कई संग्रह बनाये व स्फुट काव्य।
(३८) पीर (पीर मोहम्मद) " उरदौली सीतापूर।
(३९) सैयद घेदा शाह . " ... पौहार, कानपूर।
(४०) मोहम्मद अमीर ख़ाँ " ... आगरा —
(४१) मुंशी ख़ैराती ख़ाँ " .. देवरी सागर —

अज्ञात समय के कवि।

(१) अलहदाद
(२) आरिफ़
(३) आसिया पीर
(४) इज़दानी
(५) इस्या
(६) क़ाजी अकरम फ़ैज़
(७) ख़ान आलम
(८) ख़ान सुल्तान
(९) ख़ान सुल्तान
(१०) गुलामी
(११) जानजानाँ
(१२) ज़ुल्क़रनैन
(१३) तंग़अली (बदमाशदर्पण ग्रन्थ)
(१४) दीनदरवेश
(१५) नज़र्बा
(१६) नबी (नखशिख)
(१७) नयाज़
(१८) निशान
(१९) पंथी (मिर्ज़ा रोशन ज़मीर)
(२०) फ़ज़ायल ख़ाँ
(२१) फ़रीद
(२२) मियाँ
(२३) मीरन (नखशिख)
(२४) मीर माधौ
(२५) मुराद
(२६) रसिया (नज़ीब ख़ाँ)
(२७) रहमतुल्ला
(२८) रंगख़ानि
(२९) वजहन
(३०) वहाब (बारहमासा) बड़ी बोलीमें परम प्रसिद्ध हैं
(३१) वाजिद (अरेला)
(३२) वाहिद
(३३) साहेब
(३४) सुलतान
(३५) शाह महम्मद

(३६) शाह शफ़ी
(३७) शाह हादी
(३८) शेख गदाई
(३९) शेख सलीमन
(४०) हाशिम बीजापुरी
(४१ हिम्मत ख़ाँ
(४२) हुसैन मारहरी
(४३) हुसैनी

इन उपर्युक्त ४१ कवियों में जिनका समय दिया गया है १५ कवि ऐसे हैं जो अकबर के काल के पीछे सं० १७६० पर्य्यन्त हुए। अर्थात् उस समय तक जब तक कि मुग़ल राज्य भारत में स्थिर था। इनमें केवल दाराशाह और दानिशमंद खाँ इतिहास-प्रसिद्ध पुरुष हैं, परंतु इनमें परमोत्तम कवि एक भी नहीं हुआ। शेष कवियों में २० व्यक्ति मोग़ल राज्य के पीछे हुए, जिनमें मिर्ज़ा मदनायक गान-शास्त्र में परम पटु थे। कविता में किसी की भी रचना परमोत्तम नहीं कही जा सकती। साधारणतया आज़म की कविता कुछ अच्छी है। शेष ६ कवि इस समय वर्तमान हैं। इनमें सिवाय मीर और अमीर के कोई भी सुकवि नहीं कहा जा सकता।

अज्ञात काल के ४६ कवियों में यहाब का बारहमासा प्रशंसनीय है, परन्तु शेष कवियों का भाषा साहित्य में विशेष नाम नहीं है और न उनकी रचना ही देखने में आती है। किसी प्रकार उनके नाममात्र प्राप्त हो सके हैं।

वर्तमान समय में केवल ६ मुसलमान [illegible] के होने से प्रकट होता है कि आज कल [illegible] मानों में हिन्दी-प्रेम घट रहा है और य[illegible] दशा स्थिर रही तो कदाचित् दुःख के सा[illegible] भी देखने में आवे कि जायसी, अकबर, [illegible] रसखान आदि महानुभावों के वशंधरों [illegible] भी हिन्दीप्रेमी शेष न रह जावेगा। सब [illegible] की ओर ध्यान देना और सब विद्याओं में [illegible] प्राप्त करना विशेष उन्नतिशील जाति [illegible] है। महमूद ग़ज़नवी के समय से यहां मु[illegible] नों की उन्नति का प्रारंभ हुआ और उसी [illegible] से उनमें हिन्दी-प्रेमी भी उत्पन्न हुए। [illegible] के समय तक मुसलमानों की धीरे धीरे [illegible] होती गई और उस समय तक उनमें [illegible] प्रेम भी कुछ कुछ बढ़ता ही गया। अ[illegible] समय से मुसलमानों ने यकायक बड़ी [illegible] उन्नति की। उसी समय उनमें हि[illegible] की मात्रा बहुत ही बढ़ गई और उस [illegible] कितने ही परमोत्तम मुसलमान कवि [illegible] कुल ११८ मुसलमान कवियों में सर्वोत्त[illegible] और प्रेमी इसी समय हुए। औरंग[illegible] पीछे से उनमें एक भी हिन्दी का सुक[illegible] हुआ, यद्यपि अकबर के पीछे भी हिन्दी [illegible] ही सन्तोषजनक उन्नति की और [illegible] रही है। आशा है कि भविष्य में हमारे [illegible] समान भाई अपने ऊपर से यह आ[illegible] कर के अपने अकबरी काल के पूर्वपुरु[illegible] अनुकरण कर के उत्तरोत्तर विद्यानु[illegible] परिचय देंगे।
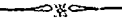
बुँदेलखण्ड के कवि।

[लाला भगवानदीन]

इस लेख का विषय है 'बुँदेलखण्ड के कवि'। इस लिए पहले यह समझ लेना चाहिए कि भारतवर्ष के किस विभाग का नाम बुँदेलखण्ड है, और कवि या कविता का इस खण्ड से क्या सम्बन्ध है।

साधारणतः बुँदेलखण्ड की चौहद्दी यों लिखी जा सकती है—उत्तर में यमुना नदी, दक्षिण में नर्मदा नदी, पूर्व में टौंस (तमसा) और पश्चिम में चम्बल (चर्मण्वती) नदी। यह चौहद्दी हमारी कल्पित नहीं है, वरन सैकड़ों वर्ष पहले एक कवि ऐसा ही कह गया है।

दो०–इत यमुना उत नर्मदा उत चम्बल इत टौंस।
छत्रसाल से लरन की रही न काहू हौंस॥

इसका तात्पर्य यह है कि बुँदेलवंशावतंश श्री महाराजा छत्रसाल जू देव के समय में बुँदेलखण्ड की यही चौहद्दी थी और इतने देश-विभाग में बुँदेलों का डंका बजता था।

बहुत प्राचीन काल में इस देश-विभाग का क्या नाम था सो तो हम नहीं कह सकते, मगर जब से इतिहास इसका पता देता है तब से इस देश पर तीन वंशों का राज्य हुआ है। विक्रमाब्द की आठवीं सदी से बारहवीं सदी के अन्त तक इस देश पर चँदेलों का राज्य रहा। इनकी राजधानी महोवा नगर में रही। फिर कुछ दिनों तक गौंड़ों की प्रधानता रही। तदनन्तर चौदहवीं सदी के आरम्भ से इस देश में बुँदेलवंश का राज्य स्थापित हुआ जो अब तक है। इसी वंश के राज्य-स्थापन-काल से इसका नाम बुँदेलखण्ड पड़ा। अतएव चौदहवीं सदी से अब तक जितने कवि इस देश में हुए उन्हींका विवरण हमें इस लेख में लिखना चाहिए। परन्तु इस विवरण के लिखने से पहले हमें यह उचित जान पड़ता है कि हम पाठकों को यह भी बतला दें कि कविता का इस देशखण्ड से क्या सम्बन्ध है। क्योंकि आगे चल कर जो कुछ हमें कहना है उसकी पुष्टि के लिए यह मर्म जान लेना बहुत ज़रूरी है।

हम स्वयं १५-२० वर्ष तक इस देशखण्ड में रहे हैं, इस लिए अपना अनुभव ही आप लोगों को सुनाते हैं। अनुमान इसमें लेशमात्र भी नहीं है।

भयङ्कर से भयङ्कर और मनोहर से मनोहर प्राकृतिक दृश्य इस देशखण्ड में मौजूद हैं। इस खण्ड में यदि कोई मनुष्य केवल एक ही दो दिन की यात्रा करे, अर्थात् ४०-५० मील ही का सफ़र करे, तो इतने ही सफ़र में उसे मार्ग में ऐसे ऐसे दृश्य देखने को मिलेंगे कि अगर उसमें मनुष्यत्व है तो अनेक प्रकार के भाव उसके हृदय में पैदा होंगे। कभी उसका हृदय भयभीत हो उठेगा, कभी वीरत्व का सञ्चार होगा, कभी उसके चित्त पर शान्ति की छटा छा जायगी, कभी मनोमुग्धकारी शृङ्गार भाव का उत्थान होकर उसको अपने प्रिय व्यक्ति की याद अवश्य आ जायगी। जंगलों, नदियों

और पहाड़ों की शोभा देख कर, तथा वहां रहनेवाले व्याघ्र, सर्प, भालू और भेड़ियों की भयङ्करता का अनुमान करके अद्भुत रस का उदय हो आता है। कभी डाकुओं और लुटेरों की करतूत सुन कर या देख कर रौद्र रस का प्रभाव चित्त पर छा जाता है। वन्य पशुओं के अत्याचार देखकर विभत्स की छटा सामने आ जाती है। वन्य पशुओं के सताये हुए बटोहियों के चिह्न देख कर करुणा का स्रोत बह चलता है। सर्प और बन्दर तथा गिरगिट और बिच्छू का हेलामय युद्ध देख कर हास्य का सोता बह निकलता है। तात्पर्य यह कि इस देशखण्ड में सहज स्वभाव से होनेवाले अद्भुत कौतुकों और प्राकृतिक दृश्यों के देखने से मनुष्य के हृदय में अनेक प्रभाव पड़ते हैं और ये ही प्रभाव सरस-हृदय मनुष्यों को कवि बना देने के मूल कारण हो जाते हैं।

कवि होने के कारणों में से एक बहुत ही प्रबल कारण यह भी है कि उस मनुष्य के हृदय पर शीघ्र शीघ्र विविध भांति के प्रभाव पड़ने का उसे अवसर मिला करे। जिस मनुष्य को जितने ही अधिक बार ऐसे प्रभावोत्पादक अवसर मिलेंगे वह मनुष्य उतना ही अधिक अच्छा कवि हो सकता है। बुँदेलखण्ड निवासियों को ऐसे सुअवसर बहुधा मिला करते हैं। यही कारण है कि बुँदेलखण्ड कविता की जन्मभूमि है, और यहां के कवि उत्तम श्रेणी के कवि होते आये हैं और सदैव होते रहेंगे।

"बुँदेलखण्ड कविता की जन्मभूमि है" हमारा ऐसा कथन सुन कर शायद बहुत लोग चौंकें, पर चौंकने की कोई बात नहीं, वास्तव में हमारा कथन सत्य है। संस्कृत भाषा के आदि कवि श्री वाल्मीकि जी माने जाते हैं। वे महात्मा बुँदेलखण्ड ही में रहा करते थे और अब तक इनका प्रसिद्ध आश्रम चित्रकूट से चार पाँच कोस उत्तर की ओर एक सुरम्य स्थान में वर्तमान है। यद्यपि वाल्मीकि जी के आश्रम कई एक अन्य स्थानों में भी हैं, त[ब भी] यह निश्चय है कि ये महात्मा इसी देश[खण्ड] के निवासी थे। क्योंकि जैसा वाल्मीकि जी [का] पूर्व जीवनचरित कहा जाता है कि वे डाकू [थे,] वैसे जीवनवाले चोर डाकू और लुटेरों [के] लिए भी यही देशखण्ड उस समय प्रधान [स्थान] था। इन बातों का प्रमाण गोस्वामी तुलसी[दास] जी के रामचरितमानस से मिलता है। रामचन्द्र जी चित्रकूट जाते समय यमुना [पार] कर उस पार वाल्मीकि जी से मिले थे और [उनसे] रहने के लिए स्थान पूँछा था, और उन्हीं [की] सलाह से चित्रकूट में रहे थे। वन[गमन] समय सीता जी को समझाते हुए श्री राम[चन्द्र] जी ने वन के दुःख गिनाते हुए कहा था—

"निश्चर निकर नारि नर चोरा"।

उसी रामचरितमानस में स्वयं चित्र[कूट] निवासी कोल भीलों ने श्री भरत जी [के] साथियों से कहा था कि—

यह हमारि अति बड़ सेवकाई।
लेहिं न बासन बसन चोराई॥

इन प्रमाणों से और श्री वाल्मीकि जी के [पूर्व] चरित और उत्तर-चरित को मिलान करने [से] प्रमाणित होता है कि जब वे चोर डाकू थे [तब] भी वे इसी देशखण्ड में रहते थे और जब [ऋषि] वृत्ति धारण की तब भी वे यहीं रहते [थे।] भारतवर्ष में श्री वाल्मीकि जी के रहने के [स्थान] कई अन्य जगहों में भी बतलाये जाते हैं। [इस] विषय में हम यही कह सकते हैं कि [यह] सम्भव है, क्योंकि इस काल में भी [कई] महात्माओं के निवासस्थान अनेक स्थलों पर [होते हैं।] वे लोग कुछ दिन किसी स्थान में रहते हैं, [कुछ] दिन किसी स्थान में, परन्तु उनका मु[ख्य] आश्रम एक ही होता है। इसी प्रकार हम[ारा] अनुमान ऐसा है कि श्री वाल्मीकि जी [का] मुख्य स्थान चित्रकूट के पास बुँदेलखण्ड में [था] और अन्य स्थानों में वे कभी कभी जा [कर] रहते थे।

और एक बात यह भी तो है कि जो श्लोक श्री वाल्मीकि जी की ज़बान से पहले ही पहल अनायास निकला हुआ माना जाता है वह तमसा नदी के तट पर निकला था, इस बात को सभी लोग अविरोध मानते हैं। ऊपर हम लिख आये हैं कि तमसा (टौंस) नदी बुँदेलखण्ड की पूर्वीय हद पर है। इससे भी प्रमाणित होता है कि बुँदेलखण्ड की पूर्वीय हद पर वा उसके कहीं निकट ही पहले पहल श्रीमती कविता देवी का अवतार हुआ था। इस हेतु यदि बुँदेलखण्ड को हम कविता की जन्मभूमि कहें तो इसमें चौंकने की बात ही क्या है?

कविकुलगुरु कालिदास की जन्मभूमि कहां थी, इस विषय में विद्वान लोग अभी तक कुछ निश्चय नहीं कर सके। कोई कोई उनकी जन्मभूमि विदिशा देश को बतलाते हैं और कोई कोई काश्मीर देश को। पर हमारा अनुमान है कि कालिदासजी इसी देशखण्ड के निवासी थे जिसे अब बुंदेलखण्ड कहते हैं। हम क्यों ऐसा अनुमान करते हैं इसका कारण भी सुन लीजिए। कालिदास-कृत मेघदूत काव्य को पढ़िए। उस काव्य में रामगिरि से अलकापुरी तक का जो रास्ता कवि ने यक्ष के मुख से मेघ को बतलाया है, उसको खूब सूक्ष्म विचार से देखिए और निष्पक्ष भाव से विचारिए कि मेघ का जितना मार्गभाग बुँदेलखण्ड भूमि में पड़ता है उतने मार्गभाग का कालिदास जी ने किस पूर्णता से वर्णन किया है और अन्य मार्गभाग का किस भाँति से किया है। दशार्ण देश (वह देशभाग जहाँ हो कर वर्तमान 'धसान' नदी बहती है), विदिशा (भेलसा), वेत्रवती (बेदवँती) और नीच (पर्वत विशेष) ये सब बुँदेलखण्ड में हैं। इनके वर्णन में ऐसी ऐसी बातें कही गई हैं जिनसे कवि का स्वदेश-प्रेम झलकता है। उज्जैन का भी बहुत अच्छा वर्णन किया है। पर इसका कारण हम यही कह सकते हैं कि कालिदास जी उज्जैन में बहुत दिनों तक रहे थे, इसी कारण उसका ऐसा वर्णन लिख सके। इन दोनों के वर्णन में कालिदास ने ऐसी ऐसी बातें कही हैं जो बिना पूर्ण परिचय के कहना असम्भव है। मार्ग के अन्य स्थानों का वर्णन रम्य अवश्य है, पर इतना परिचय-पूर्ण नहीं है। इसीसे हमारा अनुमान है कि कालिदास जी इसी देशखण्ड के निवासी थे। यदि हमारा यह अनुमान असत्य प्रमाणित हो, तो इतना अवश्य मानना पड़ेगा कि बुँदेलखण्ड का ऐसा पूर्ण परिचय प्राप्त करने के लिए कालिदास को कुछ वर्षों तक अवश्य इस देशखण्ड में रहना पड़ा होगा। बस, इस निवास-सम्बन्ध से भी यह कहा जा सकता है कि इस देशखण्ड के जल वायु तथा प्रकृति का बहुत कुछ प्रभाव कालिदास की प्रतिभा पर पड़ा था। इसीसे वे सर्वमान्य कवि होने में समर्थ हुए थे। हमारे इस कथन का तात्पर्य कोई महाशय ऐसा न समझ लें कि हम यह कहते हैं कि भारत के अन्य खण्डों में कवि हो ही नहीं सकते। हम ऐसा नहीं कह सकते, क्योंकि सबही खण्डों में कवि हुए हैं और होते हैं। हमारे कथन का तात्पर्य केवल इतना ही है कि इस देशखण्ड की भूमि में कुछ ऐसा विलक्षण प्रभाव है कि यहाँ कवि अधिकता से पैदा होते हैं और बड़े प्रतिभाशाली होते हैं। अन्य खण्ड-निवासी कवि भी यदि इस देशखण्ड में आकर कुछ दिन निवास करें तो उनकी प्रतिभा और अधिक बलवती हो जाती है।

संस्कृत भाषा के दो जगत्प्रसिद्ध कवियों का इस देशखण्ड से सम्बन्ध दिखलाकर अब हम हिन्दी भाषा के कवियों का वर्णन करते हैं। हिन्दी काव्योदय का समय विक्रमीय तेरहवीं सदी से प्रारम्भ होता है। हिन्दी का सर्वमान्य

आदि कवि चन्द बरदाई माना जाता है। यद्यपि चन्द बरदाई का रहना भारत सम्राट पृथ्वीराज के दरबार (दिल्ली) में कहा जाता है, तथापि हम कह सकते हैं, चन्द बरदाई पर इस देश-खण्ड का (जिसे अब बुँदेलखण्ड कहते हैं) बहुत कुछ प्रभाव पड़ा हुआ जान पड़ता है। अतएव अनुमान होता है कि वह कुछ दिन यहाँ रहा होगा। उस समय महोबा में (जो उस समय इस देश की राजधानी था) चँदेलवंशीय राजा परमाल राज्य करता था। लोग कहते हैं कि पहले चौहान वंश और चन्देल वंश में प्रेमभाव था और विवाहादिक उत्सवों में गमनागमन का भी व्यवहार था। राजा परमाल के दरबार में भी 'जगनिक' नाम का भट्ट धुरंधर कवि था। जगनिक चन्द बरदाई से अवस्था में कुछ जेठा था। सम्भव है कि किसी समय इन दोनों कवियों का समागम महोबा में हुआ हो।

इस सम्बन्ध में जब हम विचार करते हैं तब हमको यही निश्चित होता है कि चन्द बरदाई ने महोबा में कुछ दिन निवास किया है। ऐसा अनुमान हम इस भरोसे पर करते हैं कि चन्द बरदाई की कविता में क्रियाओं के बहुत अधिक वे रूप पाये जाते हैं जो बुँदेलखण्ड में अब तक बोले जाते हैं। वे रूप दिल्ली के गिर्दनवाह में नहीं बोले जाते—उस समय बोले जाते रहे हों तो ईश्वर जाने। दो चार उदाहरणों से यह बात नहीं प्रमाणित की जा सकती, इसलिए हम उदाहरण नहीं देते। जिन महाशयों को हमारे कथन में सन्देह हो, उन्हें चाहिए कि वे उसकी कविता को ध्यान से पढ़ें और दिल्ली के इर्द गिर्द की और बुँदेलखण्ड की भाषा का कुछ अनुभव प्राप्त करें, तब उन्हें ज्ञात हो जायगा कि [illegible]

का भी वर्णन पाया जाता है जो बुँदेलखण्ड में अब तक प्रचलित हैं। बहुत से ज़ेवरों, हाथी घोड़ों के साज सामान के वे ही नाम पाये जाते हैं जो बुँदेलखण्ड में प्रचलित हैं। इन बातों से हम अनुमान करते हैं कि चन्द कुछ दिनों अवश्य बुँदेलखण्ड में रहा होगा।

चन्द बरदाई के समकालीन जगनिक के बाद लगभग तीन * शताब्दियों तक भारत के अन्य विभागों के समान बुँदेलखण्ड में भी कोई प्रसिद्ध कवि का होना प्रमाणित नहीं है। छोटे मोटे कवि हुए हों तो कुछ आश्चर्य नहीं है। इसका कारण जहाँ तक हम सोच सके हैं यही बतला सकते हैं कि चौदहवीं, पन्द्रहवीं सदी और सोलहवीं का अर्द्ध भाग मुसलमानों के अत्याचारों से परिपूर्ण रहा। इस अशान्ति ने कवियों को भी चैन से न रहने दिया। अथवा यों भी कहा जा सकता है कि इस समय के कवियों के रचे हुए ग्रन्थ मानो लूट खसोट में नष्ट हो गये। क्योंकि यह तो सम्भव नहीं हो सकता कि तीन शताब्दियों तक भारत में और विशेष कर कविता की भूमि बुँदेलखण्ड में कोई कवि न जन्मा।

लगभग तीन शताब्दियों तक कविता का स्रोत रुका सा रहा। १७वीं शताब्दी में [illegible] को अनुकूल पा कर बुँदेलखण्ड में कविता का ऐसा सागर उमड़ा कि सारा भारतवर्ष [illegible] सुख शान्तिप्रद लहरों में हिलोरें लेने [illegible] स्मरण रहे कि उस समय में ब्रज में [illegible] कवि थे उनमें से अधिकतर बुँदेलखण्ड [illegible] ब्रज के कहलानेवाले कवियों में [illegible] जगत्प्रसिद्ध गोस्वामी तुलसीदास जी [illegible] थे। महात्मा सूरदास जी [illegible] करते हैं। इस [illegible]

* [illegible]

ग्वालियर बुँदेलखण्ड के अन्तर्गत था। इस तरह र हम कह सकते हैं कि सूरदास, तुलसीदास और केशवदास, जिनका प्रतिद्वन्दी आज तक हिन्दी काव्य-संसार में पैदा नहीं हुआ और न होने की आशा है, बुँदेलखण्डनिवासी थे।

अतः मालूम होता है कि बुँदेलखण्ड की भूमि से कविता देवी का बहुत प्राचीन तथा घनिष्ट सम्बन्ध है।

हमारी अवस्था इस समय ४५ वर्ष की है। लगभग २० वर्ष की अवस्था से हमें कविता का चस्का लगा था। २० वर्ष की अवस्था से अब तक (२५ वर्ष में) हमने लगभग (छोटे बड़े सब मिला कर) १००० कवियों की कविता का रसास्वादन किया है। इस अनुभव से हम साहस के साथ कह सकते हैं कि हिन्दी कविता-जगत से यदि केवल एक दर्जन प्रसिद्ध बुँदेलखण्डी कवियों की कविता निकाल डाली जाय तो हमारे अनुमान से हिन्दी काव्य-संसार में बहुत ही कम मसाला रह जायगा।

अब हम सदीवार बुँदेलखण्ड के कवियों में से प्रसिद्ध कवियों के नाम लिखकर उनकी कविता के विशेष गुण भी लिखते जायँगे और इस बात के विचार का भार पाठकों पर ही छोड़ देंगे कि उन कवियों ने काव्य-संसार में कितना काम किया है।

समय अनिश्चित।

१—* वाल्मीकि जी—हम क्या लिखें, संसार जानता है। इनकी कविता का भाषानुवाद हमने पढ़ा है।

२—कालिदास—इनकी कविता का भाषानुवाद पढ़ा है। इनकी कविता के गुण संसार जानता है।

* ये महात्मा सङ्गीत के भी आचार्य माने जाते हैं।

तेरहवीं सदी।

३—चन्द बरदाई—यद्यपि यह कवि बुँदेलखण्डी नहीं कहा जा सकता, तथापि हम इतना अवश्य अनुमान करते हैं कि बुँदेलखण्ड भूमि का इसकी कविता पर बहुत कुछ प्रभाव पड़ा है। इस कवि की कविता भी जगन्मान्य है। विशेषतः शृङ्गाररस बहुत अच्छा कहा है।

४—जगनिक—इसकी कविता अप्राप्य सी है, परन्तु दतिया-निवासी प्रभाकर कवि (पद्माकर के वंशज) से हमने इसकी कविता का कुछ अंश ज़बानी ही सुना था। उस समय हम चाहते तो लिख भी लेते, पर कौन जानता था कि प्रभाकर कवि से फिर भेंट न होगी। जो कविता हमने सुनी थी वह चन्द बरदाई की सी भाषा में थी, केवल अन्तर इतना था कि चन्द बरदाई की भाषा में नागर शब्द अधिक हैं, उसमें ग्रामीण शब्दों की अधिकता पाई जाती थी।

सत्रहवीं सदी।

५—मुनिलाल—इन्होंने सर्व प्रथम हिन्दी में अलङ्कार का ग्रन्थ लिखा है।

६—केशवदास—इनकी कविता पाण्डित्यपूर्ण है। हिन्दी काव्य के आचार्य हैं।

७—बलभद्र—केशवदास के भाई थे। इनका लिखा हुआ 'नखसिख' अब तक बेजोड़ और टकसाली है।

८—सूरदास—इनके विषय में हमारा कुछ कहना धृष्टता मात्र समझा जा सकता है। ये सङ्गीताचार्य भी थे।

९—गोस्वामी तुलसीदास—इन्होंने चार कवियों के बराबर काम किया है। इनकी कविता में भक्तिरस की प्रधानता है। ये सङ्गीत भी अच्छा जानते थे।

उपर्युक्त नं० ६, ८, ९ के विषय में यह दोहा स्मरण रखने योग्य है—

सूर सूर तुलसी ससी, उडुगण केशवदास ।
अब के कवि खद्योत सम, जहँ तहँ करें प्रकास ॥

१०—नन्ददास जी—गोस्वामी तुलसीदास जी के भाई थे। ब्रज के अष्टछापवाले कवियों में एक थे। इनके विषय में यह कहावत प्रसिद्ध है—

"और सब गढ़िया ।
नन्ददास जड़िया ॥"

गढ़िया और जड़िया सोनारों की दो क़िस्में हैं। गढ़िया वे सोनार कहलाते हैं जो ज़ेवर को गढ़कर सिर्फ बना देते हैं। जड़िया वे सोनार हैं जो स्वर्णभूषणों में रत्नादि नग जड़ते हैं। बस, इसी कहावत से इनकी योग्यता का अन्दाज़ हो सकता है।

११—प्रवीणराय (पातुरी)—इस पातुरी की चातुरी प्रवीणों से छिपी नहीं है। सङ्गीत में भी प्रवीणा थी।

१२—बीरबल—इनका कोई ग्रन्थ नहीं पाया जाता, केवल फुटकर कविता पाई जाती है। चतुराई तो इनकी जगत्प्रसिद्ध है।

१३—ब्रजवासी (व्यास स्वामी)—स्वामी हितहरिवंश जी के पिता थे। इन्होंने पद बहुत अच्छे कहे हैं। ये महात्मा सङ्गीत भी अच्छा जानते थे।

१४—हितहरिवंश—इनकी योग्यता कौन नहीं जानता? सङ्गीत में भी निपुण थे।

१५—व्यास—'रागमाला' नामक अत्यन्त उत्तम ग्रन्थ लिखा है। सङ्गीत के आचार्य माने जाते हैं।

१६—सेवक—'अकबरनामा' नामक उत्तम ग्रन्थ लिखा है जिसमें अकबर के दरबार का और उस समय का अच्छा वर्णन किया है। इस ग्रन्थ को [illegible] समय का संक्षिप्त इतिहास कह सकते हैं।

अठारहवीं सदी।

१७—मेघराज (प्रधान)—[illegible] नामक इनका ग्रन्थ बहुत उत्तम है।

१८—लाल (गोरेलाल)—'छत्रप्रकाश' [illegible] ग्रन्थ लिखा है, जिससे [illegible] उद्दण्डता प्रकट होती है।

१९—छत्रसिंह—इनकी कविता में [illegible] झलकता है।

२०—छत्रसाल (राजा)—[illegible] कही है। सङ्गीत में भी चतुर थे।

२१—वंशीधर (प्रधान)—'हितोपदेश' [illegible] अच्छा अनुवाद किया है, [illegible] मालूम होता है कि भाषा पर [illegible] अच्छा अधिकार था।

२२—प्राणनाथ—ये महात्मा साधु थे। छत्रसाल जी के गुरु थे। [illegible] नाम का एक बहुत बड़ा ग्रन्थ [illegible] है। इनके अनुगामी लोग [illegible] कहलाते हैं और 'कुलज़ुम' ही अपना धर्म-ग्रन्थ मानते हैं। ये सङ्गीत में भी प्रवीण थे।

२३—अक्षर अनन्य—इनकी कविता ज्ञान [illegible] वैराग्य से परिपूर्ण है। सङ्गीत [illegible] जानते थे।

२४—पृथ्वीसिंह (उपनाम रसनिधि)—[illegible] के राजवंश के थे। 'रस-निधि-सा[illegible]' नामक ग्रन्थ सवा लाख दोहों में लि[illegible] है। इनके दोहे 'विहारी' के दोहों [illegible] टक्कर के हैं। अक्षर अनन्य के [illegible] और विहारीलाल के समकालीन [illegible] सङ्गीत में भी प्रवीण थे।

२५—करण (भट्ट)—बिहारी सतसई की उत्तम टीका लिखी है।

२६—ठाकुर—इनकी कविता सामयिक नीति और प्रेम से परिपूर्ण है।

२७—बोधा—इनकी कविता प्रेम से भरी है। (भिखारीदास जी इन्हींके शिष्य थे)

२८—हंसराज (बकसी)—इनकी कविता क्या है मानो प्रेम का सागर है। प्रेमपंथ का जैसा पाण्डित्य इनकी कविता में है वैसा अन्यत्र नहीं। ये सङ्गीत में भी प्रवीण थे।

२९—पंचमसिंह—रेख़ता भाषा में अच्छी कविता लिखी है।

३०—खंडन कवि—अलङ्कार विषय पर अच्छा ग्रन्थ लिखा है।

३१—मंचित—इनकी कविता पाण्डित्य-पूर्ण है।

३२—रतनकुंवरि (रानी)—इनकी खास कविता तो बहुत कम है, परन्तु इनके संग्रहीत 'रतन हज़ारा' ग्रन्थ से इनकी साहित्य-मर्मज्ञता झलकती है। ये रानी सङ्गीत भी अच्छा जानती थीं।

३३—पजनकुंवरि (रानी)—इनकी कविता प्रेमपूर्ण है और सङ्गीत में भी इनका ज्ञान अच्छा जान पड़ता है।

३४—कृष्ण—इन्होंने नीति-विषय पर अच्छी कविता की है।

३५—हरिकेश—बड़ा उद्दंड कवि था। लाल-कवि का कोई वंशधर था।

३६—नोनेव्यास—धनुर्विद्या का एक अच्छा ग्रन्थ लिखा है। सङ्गीत भी जानते थे।

उन्नीसवीं सदी।

३७—रूपशाह—'रूपविलास' नामक ग्रन्थ बहुत अच्छा लिखा है।

३८—रामकृष्ण (चौबे)—कालिंजर के क़िलेदार थे। विविध विषय पर बहुत सी कविता की है। इनकी कविता से इनकी ईश्वर-भक्ति प्रकट होती है।

३९—प्रेमदास (वैश्य)—वास्तव में प्रेमदास थे। इनका 'प्रेमसागर' नामक ग्रन्थ प्रेमतत्व से लबालब भरा है। बुँदेलखण्ड में इनका यह ग्रन्थ गाँव गाँव प्रचलित है।

४०—गुमान—दशमस्कंध भागवत का अनुवाद बहुत अच्छा किया है। पिङ्गल का भी एक ग्रन्थ अच्छा लिखा है।

४१—नोनेशाह—वैद्यक-विषय के अच्छे ग्रन्थ लिखे हैं। कविता भी युक्तिपूर्ण और मनोहर है जिससे इनकी पूर्ण साहित्य-मर्मज्ञता प्रकट होती है।

४२—सहदेव—'गजविलास' नामक ग्रन्थ (हाथियों का शालहोत्र) अच्छा लिखा है। इसी ग्रन्थ में अन्य पशुओं की भी चिकित्सा लिखी है।

४३—मानकवि—इनकी कविता वीररस-पूर्ण है। कविता बहुत सी की है। नीति का भी एक ग्रन्थ लिखा है।

४४—पजनेश—उत्तम कविता की है। शृङ्गार वर्णन में भी इस कवि ने अपनी उद्दंड प्रकृति का परिचय दिया है।

४५—पगन कुंवरि (रानी)—इन्होंने पदों में राधाकृष्ण का शृङ्गार अच्छा कहा है। इनके पद सूरदास के पदों के टक्कर के हैं। सङ्गीत में भी प्रवीणा थीं।

४६—फतेहसिंह—गणित और ज्योतिष विषय के अच्छे ग्रन्थ लिखे हैं।

४७—विक्रमाजीत—(राजा)—'विक्रम सतसई' नाम का उत्तम ग्रन्थ लिखा है। इनके दोहे 'बिहारी' के दोहों के टक्कर के हैं।

४८—स्कंद गिरि (गोसांई)—शृङ्गार की अच्छी कविता की है।

४९—प्रतापशाह—इन्होंने बहुत ग्रन्थ लिखे हैं। इनका 'व्यङ्गार्थकौमुदी' नामक ग्रन्थ अद्वितीय है।

५०—पद्माकर (भट्ट)—इनकी कविता की अटूट धारा सर्वमान्य है।

५१—प्रभाकर (पद्माकर के नाती)—पद्माकर के समान ही इनकी भी कविता मनोहर है।

५२—पहाड़ खां (सैयद)—मुसलमान होकर भी राधाकृष्ण का ऐसा शृङ्गार वर्णन किया है कि देखते ही बनता है। इन्होंने अधिकतर वैद्यक के ग्रन्थ लिखे हैं।

५३—नवलसिंह—भारी लिक्खाड़ थे। इनके रचे हुए कोई एक सौ ग्रन्थ हैं। प्रायः साहित्य के सभी विषयों पर ग्रन्थ लिखे हैं। कविता बहुत अच्छी है। इनके ३० ग्रन्थ हमने देखे हैं। सङ्गीत भी जानते थे।

५४—माखन (लखेरा)—बहुत ही मधुर कविता है।

५५—लछमणसिंह (प्रधान)—मोहकमा माल के दफ़्तर की तरतीब पर अच्छा ग्रन्थ लिखा है।

५६—लछमणसिंह (राजा)—बिजावर के राजा थे। राजनीति पर अच्छा ग्रन्थ लिखा है। विविध विषय पर भी खूब ही लिखा है। सङ्गीत भी जानते थे।

५७—हरिदास (पराशर)—कायस्थ जाति में यह कवि बड़ा विचित्र हुआ है। ४ वर्ष में चार ग्रन्थ लिखे। एक घंटे में 'नखशतक' नामक ग्रन्थ रचा, जिसमें राधाकृष्ण के नखों की शोभा वर्णन बहुत ही उत्कट रीति से है। केवल एक घंटे में नख द्वारा १०० छंद कहना सहज काम नहीं। २४ वर्ष की अवस्था में परम सिधारा।

५८—रतनसिंह (राजा)—चरखारी के थे। अच्छे कवि थे। कवियों सम्मान भी अच्छा करते थे। के भी मर्मज्ञ थे।

५९—भोजकवि—राजनीति और वनस्‌ शास्त्र के ग्रन्थ अच्छे लिखे हैं।

६०—बुद्धसिंह—'सभाप्रकाश' नामक में बहुत अच्छी राजनीति लिखी है।

६१—रसिकलाल—बड़ा प्रेमी कवि हुआ है।

६२—अमीर (मुसलमान)—धनुर्विद्या पर अच्छा ग्रन्थ लिखा है।

६३—रंजीत (रणजीतसिंह)—मल्ल युद्ध एक बहुत अच्छा ग्रन्थ लिखा है।

६४—गोपकवि—अलङ्कार विषय का बहुत ही उत्तम ग्रन्थ लिखा है।

ऊपर लिखी हुई सूची से कोई यह न स ले कि गत तीन सदियों में बुँदेलखण्ड में इतने ही कवि हुए हैं। ऐसा कदापि नहीं। हमारे अनुमान से इन तीन सदियों में बुँ खण्ड में लगभग १००० कवि हुए होंगे। सूची उन कवियों की है जिनका लोहा जगत में माना जाता है और जिनके ग्रन्थों हमने खूब ध्यान से पढ़ा है। इन कवियों लिखे हुए इतने अधिक ग्रन्थ हैं कि अगर एकत्र किये जायँ तो एक ख़ासा पु हो सकता है।

काशी नागरीप्रचारिणी सभा की ओर अभी हाल ही में बुँदेलखण्ड में हस्तलि ग्रन्थों की खोज हुई थी। उसकी रि

ाशित हो चुकी है। उसके पढ़ने से हमारे
त की सत्यता ज्ञात हो सकती है। उस रिपोर्ट
८०० कवियों के ग्रन्थों का पता लगाया गया
। पर हमारा अनुमान है कि अभी बुँदेल-
ाड में अनेक-कवियों के ग्रन्थ गुप्त पड़े हैं।
र, जो कुछ उस रिपोर्ट में लिखा गया है
नसे निम्नलिखित बातें प्रत्यक्ष ज्ञात होती हैं।

१—बुँदेलखण्ड में कायस्थ जाति के कवि बहुत अधिक हुए हैं, और इन्होंने सबसे अधिक ग्रन्थ भी लिखे हैं। दूसरा नंबर ब्राह्मणों का, तीसरा क्षत्रियों का, चौथा बंदीजनों का और पांचवाँ नंबर मुसलमानों का है।

२—वैश्यों में भी कुछ अच्छे कवि हुए हैं। एक लखेरा और एक सोनार भी अच्छा कवि हुआ है। लोहारों ने भी कुछ कविता गढ़ी है।

३—स्त्रियों ने भी कविता की है, जिनमें से अधिकतर राजघरानों ही की स्त्रियां थीं।

४—जातिवार विचार करने से ज्ञात होता है कि कायस्थों में सबसे अधिक ग्रन्थ झाँसी-निवासी नवलसिंह ने लिखे हैं; क्षत्रियों में सबसे उत्तम और अधिक कविता दतिया के पृथ्वीसिंह जू (रस-निधि) ने की है; ब्राह्मणों में कालिञ्जर के क़िलेदार रामकृष्ण चौबे का नम्बर अव्वल है; बंदीजनों में चरखारी के 'मान' कवि ने अधिक ग्रन्थ लिखे हैं; वैश्यों में प्रेमदास और मुसलमानों में सैयद पहाड़ ख़ाँ का अव्वल नम्बर है।

५—दर्बार-वार लेखा लगाने से ज्ञात होता है कि ओड़छा दर्बार ने सबसे अधिक कवियों को आश्रय दिया है। दूसरा नम्बर पन्ना का है। तीसरा चरखारी, चौथा दतिया और पाँचवाँ नम्बर समथर का पड़ता है।

६—अट्ठारहवीं शताब्दी में बुँदेलखण्ड में कुछ गद्य-लेखक और नाटक-कार भी हुए हैं।

७—बुँदेलखण्ड के अनेक राजाओं ने भी अच्छी कविता की है। ग़रज़ कि बुँदेल-खण्ड में राजा प्रजा, स्त्री पुरुष, हिन्दू मुसलमान, और ऊँच नीच, सभी श्रेणियों में अच्छे कवि हुए हैं।

अब भी इस देश में अनेक अच्छे कवि वर्त्तमान हैं। उनमें जिन महाशयों को हम भली भाँति जानते हैं उनकी सूची नीचे लिखते हैं।

१—*पण्डित गङ्गाधर व्यास (छत्रपुर)*—इनको हम गुरु-तुल्य मानते हैं। इनसे हमने अलङ्कार और बलभद्र-कृत शिखनख पढ़ा है। कविता के अच्छे मर्मज्ञ हैं। इनकी कविता पुराने ढंग की होती है। परन्तु उक्ति अनोखी कहते हैं। बुँदेलखण्डी भाषा के मोहावरों के तो उस्ताद ही हैं।

२—बाबू मैथिलीशरण गुप्त (चिरगाँव झाँसी)—खड़ी बोली की कविता बहुत उत्तम करते हैं। 'जयद्रथ वध' खण्डकाव्य बहुत उत्तम लिखा है।

३—बाबू देवीप्रसाद (प्रीतम)—बिजावर राज्य के हाईस्कूल के हेडमास्टर हैं। आपकी कविता बहुत ही भावपूर्ण होती है। हमारे परम मित्र हैं।

४—मङ्गलदीन उपाध्याय (राजापुर, बाँदा)—आपकी कविता रसीली होती है, परन्तु ढंग वही प्राचीन है।

५—बाबू शारदाप्रसाद (मैहर)- हमारे ममेरे भाई हैं। कविता अच्छी होती है, परन्तु ढंग वही पुराना ही है।

६—बाबू गोविन्ददास (दास)—हाईस्कूल छतरपूर के सेकंड मास्टर हैं। हमारे

शिष्य हैं। कविता भावपूर्ण होती है,
परन्तु भाषा अभी उतनी साफ़ नहीं।

इनके अलावा सुनते हैं कि दतिया, पन्ना, सागर, मटवारा, मैहर, रीवाँ इत्यादि और अन्य अन्य स्थानों में अब भी अच्छे कवि वर्त्तमान हैं, परन्तु उनसे परिचय प्राप्त करने का सौभाग्य हमें नहीं प्राप्त हुआ, न उनकी कविता ही देखी। इसलिए उनका उल्लेख नहीं कर सकते। आशा है कि वे महाशय हमें क्षमा करेंगे।

'सङ्गीत' यद्यपि इस लेख का विषय नहीं है, तथापि कविता और सङ्गीत का घनिष्ट सम्बन्ध होने के कारण इतना लिख देना हमें अनुचित नहीं जँचता कि सङ्गीत की जन्मभूमि भी बुंदेलखण्ड ही है। सङ्गीत में जितनी चीज़ें गाई जाती हैं वे सब छन्दोबद्ध होती हैं (गद्य तो गाया नहीं जा सकता)। कविता के जन्मदाता महात्मा वाल्मीकि जी सङ्गीत के भी आचार्य माने जाते हैं। बस यही प्रमाण सबल है। बुंदेलखण्डी कवियों में से जिनकी सूची हमने लिखी है उनमें से जो जो कवि सङ्गीतज्ञ हुए हैं उनके विषय में वहीं लिख दिया है। ग्वालियर के तानसेन सदा से प्रसिद्ध रहे हैं और इस गये गुज़रे ज़माने में भी [illegible] और हम यह लिख आये हैं कि ग[illegible] (प्राचीन गोपाचल) बुंदेलखण्ड ही के अन्तर्गत था यद्यपि इस समय वह दू[illegible] राज्य माना जाता है।

अब हम इस लेख को समाप्त करते हुए अन्त में फिर एक बार कह देते हैं कि यह भूमिखण्ड, जिसे अब बुंदेलखण्ड कहते हैं, कविता की जन्मभूमि है, और आदि से [illegible] उत्तम कवि होते आये हैं, वर्त्तमान सम[illegible] हैं, और आशा है कि आगे भी होते रहेंगे। [illegible] समय भी हिन्दी भाषा के जितने कवि [illegible] सबों में बुंदेलखण्ड-निवासी बाबू मैथिलीशरण गुप्त किसीसे कम नहीं हैं। गुप्त जी के [illegible] इस खण्ड का गौरव अब भी प्रकट है। [illegible] ऐसा अनुमान है कि अगर गुप्त जी, [illegible] और दास जी जिस से चाहें तो [illegible] तुलसी और केशव ने निज कविता से [illegible] सदी के भारत को गुंजायमान कर दि[illegible] वैसे ही यह बुंदेलखण्डी कवित्रय इस [illegible] सदी की इण्डिया को भी अपनी [illegible] प्रतिभापूर्ण कविता से गुंजायमान कर [illegible] सकती है।

गोरखपुर-विभाग के कवि ।

[लेखक—पण्डित मन्नन द्विवेदी गजपुरी, बी० ए०]

कहा जाता है कि हमारे पूर्वजों में इतिहास लिखने की रुचि बहुत कम थी। उनकी इस अरुचि का प्रभाव हिन्दी-साहित्य पर भी बहुत कुछ पड़ा। हिन्दीसाहित्य के समुचित इतिहास लिखने में बहुत ही उदासीनता दिखाई गई। सबसे पहली पुस्तक जो हिन्दीसाहित्य का इतिहास कही जा सकती है शिवसिंहसरोज है। जिन १४ पुस्तकों से शिवसिंहजी को सहायता मिली उनमें से हिन्दी-साहित्य का इतिहास एक भी न था। हिन्दी संसार सदा शिवसिंह का ऋणी रहेगा। यदि उन्होंने अपना 'सरोज' न लिखा होता तो आज हमको कितने कवियों के नाम तक भी न मिलते।

शिवसिंहसरोज अपने ढङ्ग की पहली पुस्तक होते हुए भी—और शायद इसी कारण से भी—किसी अंश में अपूर्ण है। बहुत से कवियों के चरित्र और कविता शिवसिंहसरोज में संग्रह होने को रह गयी हैं। समग्र पुस्तक में गोरखपुर विभाग (Division) के सिर्फ़ एक कवि का नाम आया है। सो भी नाम ही नाम है, कवि का चरित्र बिल्कुल नहीं आया है। और भी पूर्वीय ज़िलों की यही दशा हुई है। लेकिन इस त्रुटि के उत्तरदाता शिवसिंह कदापि नहीं हो सकते हैं। कोई भी एक मनुष्य सब स्थानों के मनुष्यों को कदापि नहीं जान सकता है, विशेषतः उन दिनों में जब अधिकांश पूर्वीय ज़िलों में न रेल थी और न तार था।

हिन्दीसाहित्य के उपयुक्त तथा निर्दोष इतिहास लिखे जाने के लिए आवश्यक है कि प्रत्येक विभाग के लोग अपने विभाग के कवियों की कविता तथा चरित्र से इतिहास-रचयिता की सहायता करें। प्रत्येक मनुष्य अपने घर की बात औरों से अधिक जान सकता है। इसी विचार से गोरखपुर-विभाग के कवियों का संक्षिप्त वर्णन मैं आपकी सेवा में उपस्थित करता हूँ।

गोरखपुर-विभाग में—गोरखपुर, बस्ती तथा आज़मगढ़ के तीन ज़िले हैं।

गोरखपुरवालों को बुँदेलखण्डी भाइयों की भाँति यह कहने का सौभाग्य नहीं प्राप्त है कि पजनेश, ठाकुर, पद्माकर तथा केशव उन्हींके यहाँ उत्पन्न हुए। न ब्रजवासी मित्रों की भाँति हम लोग सूर और बिहारी का ही दम भर सकते हैं। गोरखपुर ने कोई भारतेन्दु और अम्बिकादत्त भी उत्पन्न नहीं किया है। परन्तु तो भी गोरखपुर में अच्छे कवि हुए हैं। आकाश में चन्द्रमा भी रहता है और तारे भी रहते हैं। उसी प्रकार सूर और तुलसी के साथ साथ कर्ताराम, लाल, चिरंजीवी तथा रामभजन का होना सर्वथा अनावश्यक न था।

कभी कभी जब पावस की अँधेरी घटा के कारण हाथ नहीं सूझता है, चन्द्रमा और नक्षत्र भी जब साफ़ जवाब दे मेघमाला में अपना मुख छिपा लेते हैं, खद्योत ही से बहुत कुछ काम चल जाता है। गोरखपुर के पहले कवि जिन का नाम हम लोगों को मालूम है, मोतीलाल थे। शिवसिंहसरोज के अनुसार मोतीलाल

सम्वत् १५६७ में हुए थे। ये बस्ती ज़िले के अन्तर्गत बाँसी राज्य के कवि थे। मैंने सुना है कि अब भी इनके वंशज बाँसी में रहते हैं। इन्होंने गणेशपुराण का पद्यात्मक भाषा अनुवाद किया है।

कर्त्ताराम—गोरखपुर ज़िले के एक प्रसिद्ध कवि हुए हैं। आप शायद मझौली राज्याश्रित थे। कर्त्ताराम की दानलीला बहुत अच्छी कविता है।

उन्नीसवीं शताब्दी में गोरखपुर-विभाग में कई उत्तम कवि हुए हैं।

गोविन्द कवि—गोरखपुर ज़िले में गोपालपुर के कौशिक राजा महाराज कृष्ण-किशोरचन्द्र के कवियों में से थे। आप सन् १८५७ के बलवे में विद्रोहियों से मारे गये। अपने अन्नदाता के प्रसन्नार्थ आपने कोक-ग्रन्थ बनाया था।

राजा साहब की प्रशंसा में गोविन्द जी ने निम्नलिखित कविता की थी।

"जीतो भुवमण्डल अखण्ड खड्ग-वृन्दनि सों,
शत्रुन की काटि रुण्ड मुण्ड झुण्ड पोये हैं।
बार बार बैरी-बनितान के विलोचन के
आँसुन के धारा-पारावार पै समोये हैं॥
कहैं श्रीगोविन्द सुनो किशुनकिशोरचन्द्र
जू के तेज पुञ्ज मारतण्ड ज्योति जोये हैं।
चारों ओर वीर रन-धीरन अमीरन के,
कम्पे भयमाने उर मानो शीत भोये हैं॥"

रणजीतसिंह (श्याम)—आपका जन्म सन् १८३३ में हुआ था। आप गोरखपुर ज़िले के मझौली नरेश उदयनारायणसिंह जी के भाई थे। कहते हैं कि १३ वर्ष ही की अवस्था में आपका शरीरान्त हो गया। इतनी थोड़ी अवस्था में भी आप अच्छी कविता कर लेते थे। कविता का नमूना लीजिए—

सवैया।

देखु रे देखु अगोटि के नैननि,
श्याम स्वरूप अनूप खरे हैं।
जागे कहूँ निशि पागे हैं रङ्ग में,
अङ्ग अनङ्ग तरङ्ग भरे हैं।
जावक लीक ललाट लगी,
हिय बीच नखच्छत छाप धरे हैं
बेष अनूठी करे हैं मुरारि,
सु रारि बढ़ावन आनि अरे हैं।

महादेवसिंह—गोरखपुर ज़िले के एक ग्राम के रहनेवाले थे। आपकी स्फुट कविता प्रायः लोगों को कण्ठस्थ है। आपका निम्नलिखित कवित्त मुझे भी याद है—

कवित्त।

कुण्डल कलङ्गी सिर मोरपच्छवारे वारे,
बैठे ब्रजराज आज आय के दरीच में।
सैन ते बुलाय लाई होरी खेलिबे के मिस,
रङ्गन ते बोरि दई केसर के कीच में।
करि के चलाकी छैल कञ्चुकी मरोरि मेरे,
ऊपर सुजान कान्ह भये परी नीच में।
अब तो बिकानी हाथ साँवरे के महादेव,
राखूंगी चुराय नयन-पूतरी के बीच में।

लाल खड्गबहादुर मल्ललाल कवि,—आप मझौली राज्य के युवराज थे। आपका जन्म सम्वत् १९१० में हुआ था। ये बहुत ही होनहार थे किन्तु थोड़ी ही अवस्था में आपका [illegible] गया। आप भारतेन्दु जी के बड़े प्यारे शिष्य थे। आपने भारतेन्दु जी की सम्मति से [illegible] प्रेस बांकीपुर में स्थापित किया। आपके बीस ग्रन्थरत्न खड्गविलास प्रेस से प्रकाशित हुए। इनमें अधिकांश नाटक हैं। आपके निम्नलिखित दो कवित्त पढ़कर आप स्वयं लालजी की कवित्व-शक्ति का अनुमान कर सकते हैं।

"सीता संग सुन्दरी सु एक ओर हर्षित हैं,
हिल मिल मंगलादि गीत उचरति हैं।

एक ओर मांग मुकुतान में सँवारे कोऊ,
  काहू पट भाल मलयज भरति हैं ।
एक ओर लाल बहु बसन रसीले धारि,
  नारि पुरवासी गृह गृह निसरति हैं ।
कौशल्यादि कैकयी सुमित्रा मिलि एक ओर
  मणिगन राम पै निछावरि करति हैं ॥१॥
मानों देवलोक में अनन्त खलबल लाल,
  मला पेट भूले छुटी गारिह महेश की ।
होने लागी दुंदुभि समुद्र थहरान लगे,
  झिलमिल होन लगी कीरन दिनेश की ।
दरकन लागी पीठ फूट अरु कूरम की,
  करकन लगी त्यों सहस फन शेष की ।
महित समाज आज अवधपुरी में जय
  निकरी सवारी महाराज अवधेश की ॥२॥

धर्मानरेश महाराज शीतलावख्श सिंह (महेश कवि) जी—एक प्रभावशाली कवि थे । कवि होने के साथ ही साथ आप गुणग्राहक भी बड़े थे । रामभजन को आपने आश्रय दिया था और लछिराम भी कुछ दिन तक आपकी सभा में रहते थे । राजा साहब की कविता की पुस्तक शीघ्र प्रकाशित होनेवाली है ।

आपकी एक सवैया नीचे उद्धृत की जाती है—

"काहि सुनाय कहौं अपनी व्यथा,
  भूल गई सिगरो मैं सयानो ।
काहू री दोष लगाऊँ सखी,
  सबही विधि भागि मेरी।दुख सानी ।
ओट परे कबहूँ न महेश जू,
  ओट परे अब ही जिय जानी ।
जो निशि धौस रहे संग हो,
  हरि हाय भये अब आजु कहानी ॥

रामभजन—जाति के बारी और जन्मान्ध थे । गोरखपुर जिले की राप्ती नदी के तट पर गजपुर ग्राम के आप निवासी थे । महाराज शीतलावख्श सिंह जी जब गजपुर आये थे रामभजन को अपने साथ ले गये । जीवन का शेष भाग इन्होंने धर्मा के राज-दरबार में बिताया । रामभजन छप्पय बनाने में सिद्धहस्त थे । जो तीन छप्पय नीचे दिये गये हैं, उनमें आप देखेंगे कि अन्धे और अपढ़ होने पर भी हमारे कवि ने शब्दों का कैसा उत्तम व्यवहार किया है । हनुमान जी की स्तुति में वीररस उत्पादन करनेवाले शब्द लाए गए हैं । काली के वर्णन में वीभत्स प्रकट करनेवाले शब्द हैं, और सरस्वती के लिए सरस्वती ही की भांति कोमल तुषार हार-धवला के उपयुक्त ही शब्द लाये गये हैं ।

हनुमान जी ।

जनमत करि शिशु ख्याल, जानि रविबाल लाल फल
बिहँसे बदन पसारि, उछलि पहुँचे उदयाचल ।
करत किलकिला नाद, मेलि आनन महँ लीनो ।
जुरे देव तैंतीस कोटि, अस्तुति तहँ कीनो ।
लरिकाई लीला समुझि, डरत भानु जिय युगल पट
रामभजन कविजनसुखद, जय मरकट मूरत विकट

महाकाली जी ।

जय चण्डी परचण्ड प्रबल दानव दल घेरी ।
रामभजन दै हाँक लियो जोगिन गन टेरी ।
लखि लखि झुंड प्रचण्ड भुकुटि जहँ तहँ महकाली ।
करति युद्ध अति क्रुद्ध भई रन माहिं कराली ।
पट्ट पट्ट पटकति भटन झट्ट झट्ट सिर झटकि के ।
घट्ट घट्ट घटकति रुधिर खिलखिलाय चंडी हँसै ॥

सरस्वती जी ।

शुक्ल बरन वर बसन नवल सुन्दर तनु सोहै ।
नव मुकुतामनि मंजु माल उर पै मन मोहै ।
लसत कंबु कलग्रीव बदन छवि सीव विराजै ।
अंजन रंजित नयन कंज खंजन लखि लाजै ।
हंसवाहिनी विधिप्रिया कर पुस्तक बीना लिए ।
जगतव्यापिनी सरस्वती रामभजन के बस हिये ॥

चिरजीवी कवि का पूरा नाम लाला मार्कण्डेयलाल था। आजमगढ़ ज़िला के कोपागंज ग्राम के आप निवासी थे। लोग कहते हैं कि ये जाति के मोची थे। लेकिन आपने अपने लक्ष्मीश्वर-विनोद-ग्रन्थ में लिखा है—"चित्रगुप्त के वंश में मैं प्रसिद्ध जन सेय"। अस्तु आप अपने को कायस्थ कहते थे। हिन्दुओं में सिन्दूर-हारे, हींग-हारे, दर्ज़ी तथा मोची की जातियाँ होती हैं जो अपने को कायस्थ कहती हैं। परन्तु उनके रीति-रिवाज कायस्थों से बिल्कुल नहीं मिलते हैं। मालूम होता है मार्कण्डेय जी ऐसी ही जाति में से थे।

आपको मरे हुए लग भग १५ वर्ष के हुए होंगे। कवित्त आदि छन्द लिखने के पहले आपने कजली लिखना आरम्भ किया। कजली की एक किताब भी आपने लिखी है। इनकी एक कजली का भी नमूना लीजिए—

"हिंडोरे झूलत युगल किशोर।
श्री नन्दनन्द-प्रिया अलबेली
श्रीराधा-चितचोर।
सूर्य्य कोटि प्रति प्रभा विराजत
दामिन लस्त करोर।
तुलसि मारकण्डे गुण गावत
लखि लखि प्रभु की ओर।

सन् १८८७ ई० में स्वर्गीय महारानी विक्टोरिया की जुबिली के अवसर पर बनारस कवि-समाज ने "चिरजीवी रहो विक्टोरिया रानी" की समस्या पर पूर्ति करवाई थी। मार्कण्डेय जी की पूर्तियों से प्रसन्न होकर कवि-समाज ने इनको 'चिरजीवी' की उपाधि दी।

इस प्रकार उत्साहित होकर आपने नायिका-भेद का एक अपूर्व और वृहत् ग्रन्थ लिखा। इसके लिए स्वर्गवासी [illegible] महाराज लक्ष्मीश्वरसिंह जी ने चिरजीवी का सम्मान किया था। ग्रन्थ का नाम है "लक्ष्मीश्वर-विनोद"। यह लगभग पाँच सौ पृष्ठ की होगी।

गोरखपुर-विभाग के कवियों में इन का स्थान सर्वोच्च है। हमारे किसी भी ने काव्य का इतना बड़ा और इतना ग्रन्थ नहीं लिखा है।

'लक्ष्मीश्वरविनोद' के अतिरिक्त आपने म शिवा जी के विषय में कुछ कविता की बङ्गवासी प्रेस की 'भूषणग्रन्थावली' के छापी गई है। भूषण तो वीररस काव्य के ही हैं, लेकिन मैं यह कहने में सङ्कोच न कि किसी अंश में चिरजीवी के कवित्त के काव्य से टक्कर लेते हैं।

चिरजीवी कवि के कुछ छन्द यहाँ उद्धृत जाते हैं। इनके उद्धृत किये जाने का यह नहीं है कि चिरजीवी की कविता सर्वोत्तम हैं, किन्तु यह कि मुझको केवल छन्द याद हैं—

अमान्यजन वर्णन।

अक्षर न जानैं उर मान मद मानैं नहिं
गुनिन पिछानै बिनु काव्य गति मानै
मंजुल न भाखैं भेद मिश्रन सों राखैं भूली
खावैं सुख सावैं अरु प्राण सम जानैं
कहैं चिरजीव यही ईश ते मनाओ नित,
जोरि कर टेकि धरणी में सिर आठो
भुवन दिखाओ सब देश भरमाओ, पर
ऐसे क्रूर नर को न आनन दिखाओ राम।

वीभत्सरस।

सूकनि सराति परी श्रोनित तरङ्गिनि में
गति घमनाये जाके तन में रतन की।
आंत गर डारे परधीन ते सँवारे भाइ
भिन्न भिन्न करति मासी रसिया मलन
कहैं चिरजीव जातु तन में संवारे यातु
भूप हरमाझा पावा बितसी मलन की।
कालिका कपाल लिये पीवति रुधिर अरो
जोगिन प्रबाली खड़ी लोलड़ी मसन

बसन्त वर्णन।

कानन कैलिया कूके लगी
सुनि हूके लगी हमरे उर अन्त में।
पौन की गौन सुगन्धमई भई
प्रीति परस्पर कामिनि कन्त में॥
जोरि के हाथ कहैं चिरजीवी
बिसारिये ना परिकाज अनन्त में।
लोग बसन्त में आवैं घरे तुम
आइके जात हो कन्त बसन्त में॥

कवि-प्रशंसा।

सारे श्रम विद्या के विलुप्त ह्वै जैहैं प्यारे
विधिविधि बड़ाई याद ही सी यह जावैगी।
चौदह की चौंसठ की चित्त की चसक चोखी
सारी निपुणाई एको देखे में न आवैगी॥
कहैं चिरजीव जु पै कविता न कीनो तो
तिहारी पण्डिताई कौन अन्त में बतावैगी।
जा दिन जरोगे चिता चढ़िके प्रवीन यह
सारी सुघराई वाही रोज़ जरि जावैगी॥

शिवराज-प्रशंसा।

मैया को न दूध तो सों सुफल कियो है कोऊ
लोह को न तो सों कोऊ चनक चबायो है।
शिखा सूत्र साहिबी की विरदि विभूति धारी
तो सों को करेजो काढ़ि जग को दिखायो है॥
ये जू शिवराज तो सों कवि चिरजीव भाखै,
तेरोई सुजन्म गिन्ती में एक आयो है।
यमन महीपन के मान मथिबे को कर-
तार या दुनी में एक तोही को बनायो है॥

बाबा सुमेरसिंह जी—ये महाराज हिन्दी के प्रसिद्ध कवियों में से थे। आपका स्थान निज़ामाबाद, ज़िला आज़मगढ़, में है।

रामचरित्र कवि—जाति के ब्राह्मण और आज़मगढ़ ज़िले के रहनेवाले थे। आप चिरजीवी कवि के साथी और स्वयं भी अच्छे कवि थे। आपकी पुत्री श्रीमती सरस्वती देवी (शारदा) मौजूद हैं और अच्छी कविता करती हैं। आगे चलकर सरस्वती जी का वर्णन किया जायगा।

कमलाकान्त—जी गोरखपुर ज़िले के रहनेवाले थे। आपका जन्म सं० १६०० में हुआ था। आप वैष्णव थे। आपने होलीबिहार, नामक ग्रन्थ बनाया है। आपकी एक सवैया मैं यहाँ उद्धृत करता हूँ—

सवैया।

हो री अहीर को सांवरो छैल
छयो यहि मारग ह्वै निकसो री।
सो री गयो यहि मारग ह्वै
करि झांझ पखावज की घनघोरी॥
घोरी अबीर गुलाल गुलाब में
बाहँ गहे औ किये बरजोरी।
जोरी निहारत वारत प्राण
सुडारत रङ्ग पुकारत होरी॥

पण्डित वागीश्वर मिश्र—जी मऊनाट-भञ्जन, ज़िला आजमगढ़, के रहनेवाले थे। आपने बी० ए० परीक्षा पास की थी और बड़े होनहार नवयुवक थे। परन्तु थोड़ी ही अवस्था में लगभग छ वर्ष का अर्सा हुआ कि आपका देहान्त हो गया।

खड़ी बोली के आप बड़े अच्छे कवि थे। यदि अब तक आप जीवित होते तो खड़ी बोली के सर्वोत्तम कवियों में आपका स्थान निर्विवाद होता। मैंने तो आपकी भांति भावपूर्ण, सरस और हृदयङ्गम खड़ी बोली की कविता करते बहुत कम लोगों को देखा है। 'सरस्वती' में आपकी अनेक कविताएं निकल गई हैं। सरस्वती की पुरानी फाइल में आपकी 'मथुरा-वर्णन' कविता पढ़िए—

आपकी एक कविता के कुछ अंश दिये बिना मैं नहीं रह सकता।

प्रकृति।

छटा औरही भांति की देखते हैं,
जहां दृष्टि हैं डालते फेर के मुंह।

कहीं छन्द सुनते, कहीं रेखते हैं,
कहीं कोकिलों की सुरीली 'कुहू कुहू' ॥
कहीं आम बौरे, कहीं डालियों के,
तले फूल आके गिरे बीच थाले ।
रखे हैं मनो टोकरे मालियों के,
इकट्ठे जहां भौर से भौरवाले ॥
कहीं पेड़ का पत्तियाँ हिल रही हैं,
कहीं भूमिपर घास ही छा रही है ।
सुगन्ध कहीं वायु में मिल रही हैं,
कहीं सारिका प्रेम से गा रही है ॥
कहीं पर्वतों की छटा है निराली,
जहां वृक्ष के वृन्द छाये घने हैं ।
लगी एक से एक प्रत्येक डाली,
मनो पान्थ के हेतु तम्बू तने हैं ॥
कहीं दौड़ते झाड़ियों बीच हरने,
लिये मोद से शावकों को भगे हैं ।
कहीं भूधरों से झरैं रम्य झरने,
अहा ! दृश्य कैसे अनूठे लगे हैं ॥
कहीं खेत के खेत लहरा रहे हैं,
महामोद में हैं कृषीकार सारे ।
उन्हें देखकर मूँछ फहरा रहे हैं,
सदा घूमते कंध पै लट्ठ धारे ॥
अचम्भा सभी वस्तु संसार की है,
वृथा दर्प विज्ञान भी ठानता है ।
जगन्नाथ ने सृष्टि विस्तार की है,
वही विश्व के मर्म को जानता है ॥

वर्त्तमान कवि ।

गोरखपुर-विभाग के वर्त्तमान कवियों में पं० अयोध्यासिंह जी उपाध्याय—सब से मुख्य हैं। आपको हिन्दी प्रेमी-मात्र जानते हैं। अस्तु आपके विषय में विशेष लिखना प्रज्वलित सूर्य्य को दीपक दिखाना है । आप निज़ामबाद, ज़िला आज़मगढ़, के रहनेवाले हैं। इस समय आपकी अवस्था लगभग ४७ वर्ष की है। आपने २३ से अधिक पुस्तकें बनाई हैं। आपकी पुस्तक 'ठेठ हिन्दी की ठाट' सिविल-सर्विस परीक्षा में कोर्स है ।

आप खड़ी बोली और ब्रजभाषा दोनों के कवि हैं। आपकी 'धर्म्मवीर' कविता प्र[illegible] हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन में पढ़ी गई थी।

आपकी एक कविता का एक भ[illegible] अंश यहां उद्धृत किया जाता है—

"जब जनमने का नहीं था
नाम भी हमने लिया ।
दो घड़ा तैयार दूधों का
तभी उसने दिया ॥
आपदा टाली अनेकों
बुद्धि बल विद्या दिया ।
की भलाई की न जाने
और भी कितनी क्रिया ॥
तीन पन हैं बीतता
तब भी तनक चेते नहीं ।
हम पतित ऐसे हैं उसका
नाम तक लेते नहीं ॥"

आप इस समय "ब्रजाङ्गना-विलाप" म[illegible] काव्य की रचना कर रहे हैं । मुझको [illegible] महाकाव्य के एक अंश के सुनने का सौभाग्य [illegible] हुआ है । खड़ी बोली और बे-तुकांत [illegible] कविता में यह पहला ही महाकाव्य होगा। परमात्मा करे कि "ब्रजाङ्गना-विलाप" [illegible] भाषा के 'मेघनादवध' की भांति हिन्दी संसा[र] की शोभा बढ़ावे और अयोध्यासिंह जी [illegible] कीर्त्ति मधुसूदन दत्त की भांति अमिट हो[कर] संसार में व्याप्त रहे ।

बाबू रङ्गनारायण पाल—श्री हरिहरपु[र] ज़िला बस्ती के एक प्रसिद्ध ज़मींदार और रईस हैं । आप ब्रजभाषा के अच्छे क[वि] हैं और सङ्गीत-विद्या से भी आपको प्रेम है। आपके दो ग्रन्थ, अङ्गादर्श और प्रेम ल[तिका] भारतजीवन प्रेस, काशी, से प्रकाशित हुए हैं।

पं० मातादीन द्विवेदी—मेरे पूज्य पि[ता] पं० मातादीन द्विवेदी (हरिदास) ब्रजभाषा के कवि हैं। आपके बनाए लगभग २०० [illegible]

समय प्रस्तुत हैं जिनमें देवस्तुति, नीति, शृंगार, तथा षट्ऋतु विषय के छन्द हैं। आपकी समस्या-पूर्तियाँ बहुत दिन तक रसिकमित्र में छपती थीं। आपके बनाये हुए कुछ छन्द नीचे उद्धृत किये जाते हैं—

पापिन के तारिबे को पाग है तिहारे सिर,
पाप ही कमाइबे कि मेरिहू रजाई है।
नेरी तेरी आनि पड़ी देखें अब कैसी बनै,
मैं तो पैंठ छाड़िहौं न रावरी दुहाई है।
तुमहूँ न छोड़ो नातो है हैं हरुआई नाथ,
टेक के छुड़ैयन की अन्त में हँसाई है।
मातादीन बार बार तुमको जताय देत,
मेरे तारिये ही माहि रावरी बड़ाई है॥

टेसु पलासन औ कचनार
अनार के डार अँगार लखायगो।
तापर पौन पसंगन ते
रज के कन धूम के धार से छायगो।
त्योंही कछारन में सरसो के
प्रसूनन पै जरदी सरसायगो।
हाय दई हरिदास न आये
बिसासी बसन्त कसाई सो आयगो॥

है हरिदास बिलोकु बलाहक
नीर भरे नभ छावन लागे।
तैसे बकै वे विचारी बन.य के
औलि अकाश में धावन लागे।
ए ऋतु पावस के सब सौंज
मनोज के मौज बढ़ावन लागे।
ऐसे समै में हमैं तजि हाय!
बिदेश को पायँ उठावन लागे।

सुन्दर सलोने सुठि मंजु मृदु मूरति ये,
लखि सुकुमार सुकुमारता लजानी है।
मातादीन कच्छप के पृष्ठ से कठोर धनु,
इन ते तोराइबे को राउ उर आनी है।
देख आली अनुचित ऐसे बुध-मण्डल में,
विश्वामित्र सतानन्द आदि,जहां ज्ञानी है।
जानकी उसास भरि बारि बारि जात नैन
आह कै बोली तात दारुण प्रण ठानी है॥

पण्डित बालमुकुन्द पाण्डेय—आप हिन्दी साहित्य के अच्छे ज्ञाता हैं और कविता भी अच्छी करते हैं। आपका गङ्गोत्रीनाटक छप गया है। इस समय आप गोरखपुर कलक्टरी में पेशकार हैं।

बाबू जीतनसिंह—आप गोरखपुर ज़िले के मगहा ग्राम-निवासी हैं और इस समय रीवाँ राज्य में स्कूल के हेड मास्टर हैं। आपकी कविता और लेख 'सरस्वती' और 'मर्य्यादा' में निकल चुके हैं। आपके भाई अक्षयबरसिंह भी कवि हैं।

पाण्डेय रामभरोस शर्म्मा—आप बस्ती ज़िला के निवासी हैं। आपकी पूर्तियाँ 'रसिकमित्र','रसिकरहस्य' तथा 'प्रियंवदा' में निकलती रही हैं। एक पूर्ति यहाँ दी जाती है—

कवित्त।

टेर मुरली की धुनि मुदित मलिन्दन की,
पीत पट पुहुप पराग छवि छायो है।
सूरज सुकवि वायु त्रिविधि त्रिभङ्गी भेष,
बोलनि कलनि कल कोकिलनि पायो है।
कछू ना कहति कर रहित तिनू पै तोरी,
उपमा अनूठि भारती के मन भायो है।
ब्रज बनितान बन बेलिन बिनोदिबे को,
आज ब्रजराज सो बसन्त बनि आयो है॥

श्री बाबू रामबहादुर सिंह—आप गोरखपुर ज़िले के कोड़ा ग्राम के निवासी हैं। आप कुछ काल तक नागरीप्रचारिणी सभा, गोरखपुर, के पुस्तकालय में पुस्तकाध्यक्ष थे।

आपकी एक पूर्ति दी जाती है—

सवैया ।

कानन टेर परी जब ते
 तब ते मन बावरो नेकु न माने ।
लाज गलानि गई सिगरी
 विरहानल ज्वाल दहै तन प्राने ।
मानिनी हाय मिले विनु श्याम
 अराम कहां मन धीर न आने ।
आनन क्यों विलसी हरि हा !
 बरे बांसुरिया विख बोइबो जाने ॥

उपर्युक्त कवियों के अतिरिक्त और भी दस पन्द्रह पूर्तिकार हैं, लेकिन उनमें सिवाय दो देवियों के किसीकी कविता में कोई विशेष गुण नहीं है। अस्तु, केवल उन देवियों का वर्णन यहाँ किया जायगा।

श्रीमती सरस्वती देवी (शारदा)—मैं ऊपर लिख चुका हूं कि आप आज़मगढ़ के सुकवि रामचरित्र जी की लड़की हैं। देवियों में आपकी भाँति उत्तम कविता करनेवाली इस समय कोई नहीं हैं। रसिकमित्र आदि पत्रों में आपकी मनोहर पूर्तियाँ छपा करती हैं। आपकी एक पूर्ति लीजिए —

सवैया ।

विधना ने विवेक दई जिनको,
 चहुँ ओर न चौचले ठानत हैं।
सहसा गुण दोष विचारे विना,
 नहिं प्रेम सुरा कहुँ छानत हैं।
लखैं नेह निवाह में संशय तो
 न कर्यो ममता उर आनत हैं।
जहँ शारद पूरि परी पटरी,
 सर्वोपरि मित्रहि जानत हैं।

श्रीमती चन्द्रावती देवी, धनकटा, आज़मगढ़—चन्द्रावती जी भी अच्छी कविता करती हैं। आपकी एक सवैया नीचे दी जाती है—

सवैया ।

कैसे जियेंगी सुबाला अली,
 करि कानन में कटु भोजन कन्द की।
छाड़ि स्वदेश विदेश गये,
 यह भेजें इतै पतिया लिखि फन्द की।
'इन्दुमती' चित क्रूर भयो,
 अब कौन कहै करनी नँदनन्द की।
ऊधो बुझाओ सुझाओ उन्हें,
 करिये न यहां चरचा व्रजचन्द की।

उपसंहार ।

अन्ततः इस निवन्ध को समाप्त करते हुए मैं अपने गोरखपुर-विभाग के उन कवियों से क्षमा प्रार्थी हूं जिनके नाम मेरी भूल के कारण लिखने को छूट गये हैं। इस निवन्ध के लि[खे] जाने का मुख्य प्रयोजन यह है कि गोरखपुर विभाग के प्राचीन तथा अर्वाचीन कवियों की कविता का उत्तरोत्तर प्रचार बढ़े। जहां तक मेरी जानकारी थी, मैंने लिखा। इसमें कुछ त्रुटि हो उसको हमारे कोई सुयोग्य भाई सुधारने का यत्न करेंगे, यह मेरा निवेदन है।

इस निवन्ध के लिखने में मुझे निम्नलिखित पुस्तकों और पत्रों से सहायता मिली—

१ । शिवसिंहसरोज
२ । सुजानसरोज
३ । लक्ष्मीश्वरविनोद
४ । कविताकुसुममाला
५ । मर्य्यादा (पत्रिका)
६ । रसिकमित्र की फाइलें
७ । काव्यलता (अप्रकाशित)
८ । आदर्श
९ । प्रेमलतिका

नाट्यशास्त्राचार्य भरतमुनि ।

[लेखक—गणपति जानकीराम दुबे, बी० ए०]

"नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम्" ।—(मालविकाग्निमित्र)

किसी देश की सभ्यता की उन्नति का अनुमान उसकी सार्वदैशिक शासनपद्धति, उत्तम नियमन और सार्वजनिक और सुविधा के उपकरणों की समृद्धि तथा जनपद के मनोरञ्जन का सम्पादन नेवाली नृत्य, गीत, वाद्य, चित्र इत्यादि ाओं से किया जाता है। ग्रीस की ीन सभ्यता का परिचय मूर्तिनिर्माण करने परमोन्नत कला से होता है। उसी प्रकार की नाट्यकला से सोफोक्लीज़ के से योगान्त उत्तम नाटकों ने आधुनिक समय में यूरोप में स्थान पाया है। उसके अनन्तर की ष्यता रोम की हुई, और उसके भी बाद सभ्यता ब्रिटन की हुई। इंग्लैंड में नाटक नने का आरम्भ सन् ११७६ से हुआ। इन दिनों ायल की कथाओं का प्रदर्शन होता था। और गे चलकर जब लूथर के सुधार ने धर्मसम्बधी न्ति पैदा कर दी तबसे नीति-विषयक नाटकों आरम्भ हुआ। और रानी एलिज़ाबथ समय में तो सांसारिक घटनाओं पर नाटक ा जाने की प्रथा चल पड़ी और महाकवि सपियर ने उसे अपनी प्रतिमा और अलौक काव्यरचना से परमावधि को पहुंचा या।

२—इस भारतखण्ड की सभ्यता की प्राचीनता का अनुमान भी भारतीय नाट्यशास्त्र से लोग करते हैं। इस लिए इस लेख में भारतीय नाट्यशास्त्र के आदि उत्पादक भरत मुनि की प्राचीनता के विषय में हमने कुछ चर्चा करने का विचार किया है।

३—इस भारत भूमि में बहुत प्राचीन समय से नाट्यकला उन्नतावस्था को प्राप्त हुई है। जिस प्रकार षड्दर्शनों पर हज़ारों ग्रन्थ लिखे गये, उसी प्रकार हज़ारों नाटक-ग्रन्थ भी लिखे गये। अंगरेज़ी में तथा यूरोप की अन्य भाषाओं में नाटक-ग्रन्थों की समृद्धि बहुत हुई है, परन्तु अभी तक नाटक की विद्या शास्त्र के स्वरूप को प्राप्त नहीं हुई है। ख़ास इंग्लैंड में नाटक के जन्म को ७ सौ वर्ष से अधिक समय हुआ, परन्तु वह कला अभी तक इस पूर्णता को नहीं पहुंची है कि नाटक सम्बन्धी नियमों का कोई एक सर्वाङ्ग-पूर्ण ग्रन्थ बना हो, या उसे शास्त्र का रूप प्राप्त हुआ हो। परन्तु भारतवर्ष के प्राचीन साहित्य भाण्डार में नाटक किस रीति से किया जाना चाहिए इस विषय पर भी कई ग्रन्थ जोकि मार्गदर्शक और टीकात्मक होंगे वे बने थे इसमें संदेह नहीं; परन्तु सर्वभक्षक काल के उदर में उनमें से बहुत से ग्रन्थ चले गए; तथापि आज भी भां-डेढ़

सौ संस्कृत नाटक उपलब्ध हैं, और सौ दो सौ नाटकों के नाम और उल्लेख अन्य ग्रन्थों में मिलते हैं। इस समय जो नाटक उपलब्ध हैं वे या तो काल की दाढ़ों से बचे हुए हैं या अत्यन्त उत्तम होने के कारण सब विघ्नों से सर्वथा रक्षित रहते आये हैं। खेद का विषय है कि कई एक उत्तम नाटक-लेखकों के ग्रन्थ नष्ट हो चुके हैं। भास नामक नाटककार की तारीफ स्वयं कविवर कालिदास ने की है। मालविकाग्निमित्र में कहा है—

"प्रथितयशसां भास कवि सौमिल्ल कवि मिश्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य कथं वर्तमानकवेः कालिदासस्य क्रियायां परिषदि बहुमानः ।"

अर्थात् "सुप्रसिद्ध भास सौमिल्ल मिश्र इत्यादि कविजनों के ग्रन्थों को छोड़ कर विद्यमान कवि कालिदास की ग्रन्थरचना को सभा में आदर कहां ?" परन्तु इन कविवरों में से एक भी कवि का कोई नाटक-ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। भास कवि के विषय में कादम्बरीकार बाणभट्ट ने भी एक श्लेषपूर्ण श्लोक लिखा है—

"सूत्रधार कृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः ।
सुपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव ।"
(हर्षचरित्र)

जिनको सूत्रधार (सुतार=बढ़ई) ने आरम्भ किया है, जिनकी अनेक भूमिकायें (मञ्जिलें) हैं, जिनमें पताका जोकि नाटक में विशिष्ट संज्ञा (ध्वजा) हैं, ऐसे नाटक निर्माण करके भास कवि ने देवालयों के बनाने का यश सम्पादित किया।

४—संस्कृत के मुख्य मुख्य नाटकों के अनुवाद हिन्दी में हुए हैं, परन्तु नाटक के टीकात्मक और विवेचनात्मक ग्रन्थ जो संस्कृत में हैं उनके हिन्दी अनुवाद अभी तक नहीं हुए हैं। आज इस प्रबन्ध में जिस विवेचनात्मक ग्रन्थकर्ता के विषय में लिखने का विचार है वह बहुत प्राचीन है। पाणिनि के समय में भी नाट्यशास्त्र-सम्बन्धी सूत्रग्रन्थ मौजूद थे यह बात [illegible]ध्यायी से मालूम होती है। जैसे—

'पाराशर्य शिलालिभ्यां भिक्षुनट सूत्रयोः।४[illegible]
"कर्मन्द कृशाश्वादिनि ।" ४ ३·१११

इन दो सूत्रों से यह मालूम होता है [illegible] पाणिनि के समय में शिलालि और [illegible] के लिखे हुए नट-सूत्र थे। ये दोनों भी उपलब्ध नहीं हैं।

५—पाणिनि के समय के विषय में [illegible] और पश्चिमी विद्वानों का एक मत है [illegible] पाणिनि ईसवी सन् के पूर्व ३०० वर्ष से [illegible] नहीं हुए। डाक्टर भाण्डारकर का तो यह म[illegible] कि पाणिनि का समय ईसवी सन् के ५[illegible] वर्ष तक है। तात्पर्य, जब इङ्गलेण्ड के [illegible] का पता भी नहीं था, तब पाणिनि ने [illegible] सूत्रकारों का उल्लेख अपने व्याकरण-[illegible] कर रक्खा था। इससे स्पष्ट है कि वे सूत्र[illegible] ईसवी सन् के पहले ३०० वर्ष से भी पुराने हैं।

६—भरतमुनि का विवेचनात्मक [illegible] उपलब्ध हुआ है जो कि नाट्यशास्त्र का [illegible] प्रमाण ग्रन्थ माना जाता है। यह ग्रन्थ स[illegible] ग्रन्थों के प्रकाशक प्रसिद्ध 'निर्णयसागर' [illegible] बम्बईवाले, ने छाप कर बहुत बड़ा [illegible] किया है।

७—भारतीय नाट्यशास्त्र का ज्ञान [illegible] मुनि को ब्रह्मदेव से प्राप्त हुआ, ऐसा इस [illegible] के प्रथमाध्याय में कहा है। एक [illegible] देव ब्रह्मदेव के पास जाकर कहने लगे कि [illegible] ब्रह्मन् ! दृश्य और श्राव्य हो, ऐसा कुछ [illegible] का साधन आवश्यक है। शूद्रों को चारों [illegible] पठन करने का अधिकार नहीं है। [illegible] सब वर्णों के लिए युक्त हो ऐसा पञ्चम [illegible] आप निर्माण कीजिए।" मूल ही [illegible] से अधिक आनन्द आवेगा, इस लिए [illegible] ही किया जाता है—

हेन्द्रप्रमुखैर्देवैरुक्तः किल पितामहः।
डनीयकमिच्छामो दृश्यं श्राव्यं च यद्भवेत्॥अ०१-११
। वेदविहारोऽयं संश्राव्यः शूद्रजातिषु।
मासृजापरं वेदं पंचमं सार्ववर्णिकम्॥ १२॥
शास्त्रार्थसम्पन्नं सर्वशिल्पप्रवर्तकम्।
ाख्यं पञ्चमं वेदं सेतिहासं करोम्यहम्"॥१५॥

इस प्रकार देवों की प्रार्थना के अनुरोध से देव ने नाट्यशास्त्ररूपी पञ्चम वेद निर्माण या। यह ब्रह्मदेव ने भरतमुनि से कहा र भरतमुनि से आत्रेय इत्यादि मुनीश्वरों प्राप्त हुआ।

८—भारतीय नाट्यशास्त्र के ३७ अध्याय । ग्रन्थसंख्या ५००० के लगभग है। बीच च में गद्य भी है। क्वचित् आर्या हैं। उनके हिले 'अत्र सूत्रानुबद्धे-आर्ये भरतः" ऐसा तखा रहता है। इससे यह मालूम होता है क जिस समय नाट्यशास्त्र ग्रन्थ लिखा या उस समय के पहले नाट्यशास्त्र में सूत्र न चुके थे। इतना ही नहीं, किन्तु उन सूत्र-ग्रन्थों के अनुसार आर्या ग्रन्थ भी बन चुके थे। नाट्यशास्त्र का छठा अध्याय बड़े हत्व का है। इस अध्याय में नाटक-सम्बन्धी आवश्यक आठ रसों तथा उनके स्थायी भाव, यभिचारी भाव, इत्यादि विषयों का आद्योपान्त र्णन है। शृङ्गार, वीर, करुण, रौद्र, भयानक, बीभत्स, अद्भुत, हास्य, ये आठ ही रस हैं। तेर- हवें अध्याय में नाट्यशास्त्र-सम्बन्धी चार वृत्तियों का विवरण है—अर्थात् कौशिकी, भारती, सात्वती, आरभटी। १५वें अध्याय में अक्षर छन्द और मात्रा छन्दों के लक्षण उदाहरण सहित हैं। ये सब उदाहरण भरतमुनि की ही कविता हैं। जिस वृत्ति का उदाहरण दिया है उसका नाम उस छन्द में आया है। सोलहवें अध्याय में उपमा, रूपक, दीपक और अनुप्रास इन अलङ्कारों के लक्षण और उदाहरण दिये हैं। साथ ही काव्यगुण और काव्यदोष भी बतलाये हैं। सत्रहवें में प्राकृत भाषा, उसका प्रयोग किसके द्वारा और कहां और कैसे करना चाहिए, इसकी चर्चा है। अठारहवें में दृश्य काव्य के दस भेदों—नाटक, प्रकरण, अङ्क, व्यायोग, भाण, समवकार, वीथी, प्रहसन, डिम, ईहामृग—के लक्षण बतलाये हैं। उन्नीसवें में नाटकों की पंचसन्धि, उनके अङ्ग इत्यादि वर्णित हैं। बीसवें अध्याय में ऊपर लिखी हुई चार वृत्तियों का सर्वांगपूर्ण विवेचन है। २२वें में अभिनय, अष्टनायिका, चार प्रकार के नायक। २४वें में प्रतिहारी, परिचारिका इत्यादि के लक्षण, सूत्रधार, विदूषक, चेट, इत्यादि के गुण बतलाये हैं। अट्ठाइसवें अध्याय में तत, अवनद्ध, घन, सुषिर इन चार प्रकार के वाद्यों का विचार किया है। इसमें और २९वें में सप्तस्वर, मूर्च्छना, ग्राम, इत्यादि सङ्गीत-विद्या-सम्बन्धी विषयों का सूक्ष्म विचार किया है। यह चौंतीस अध्याय तक चला गया है।

९—अब समय के विषय में विचार किया जाता है। प्रश्न है कि भारतीय नाट्यशास्त्र कब लिखा गया? हम ऊपर लिख आये हैं कि पाणि- नीय अष्टाध्यायी के समय में शिलालि और कृशाश्व के बनाये हुए नट-सूत्र-ग्रन्थ विद्यमान थे। पाणिनि की अष्टाध्यायी में भरतमुनि का नाम नहीं है, इससे यदि कोई यह सिद्धान्त कायम करे कि भरतमुनि पाणिनि के इधर अर्थात् पश्चात् हुए होंगे, तो यह अनुमान ठीक नहीं है; क्योंकि अष्टाध्यायी कोई संस्कृत साहित्य का इतिहास नहीं है जिसमें संस्कृत के सम्पूर्ण प्राचीन लेखकों का उल्लेख होना ही चाहिए। पाणिनि ने तो व्याकरण-शास्त्र को सूत्रबद्ध किया था। उसमें जिनका नाम-निर्देश है वे तो निस्संशय पाणिनि के पूर्व हो ही चुके थे। जिनका नाम उसमें नहीं आया उनका पूर्व अथवा बाद होना सम्भव है, इतना ही कह सकते हैं।

१०—राजा मुंज की सभा में एक धनञ्जय नामक विद्वान पण्डित था। उसने दशरूपक नामक एक ग्रन्थ नाट्यशास्त्र का बनाया है। उसने अपने ग्रन्थ के अन्त में लिखा है कि—

विष्णोः सुतेनापि धनञ्जयेन
विद्वन्मनोरागनिबन्धहेतु।
आविष्कृतं मुंजमहीशगोष्ठी-
वदग्ध्यभाजा दशरूपमेतत् ॥१॥

मुंज नाम के कई राजा हो गये हैं। उनमें से सबसे अन्त का अर्थात् धाराधीश भोज का चाचा भी लिया जाय तो भी धनञ्जय को हुए लगभग एक हज़ार वर्ष हुए मानना चाहिए। पण्डित गौरीशङ्कर ओझा ने लिखा है कि मालवा के प्रसिद्ध राजा मुंज का देहान्त विक्रम संवत् १०५० और १०५४ के बीच हुआ। मुंज के देहान्त को आज ९६७ वर्ष हुए। यदि मान लिया जाय कि धनञ्जय की उम्र मुंज के देहान्त के समय ३२ वर्ष की थी तो धनञ्जय को हुए १००० वर्ष हुए यह अनुमान गलत नहीं है। धनञ्जय ने लिखा है कि सब वेदों के सार नाट्यवेद को ब्रह्मदेव ने निर्माण किया, उस नाट्यशास्त्र का प्रयोग रङ्गभूमि पर भरत मुनि ने किया। यथा—

उद्धृत्योद्धृत्य सारं यमखिलनिगमान्नाट्यवेदं विरिञ्चिश्चक्रे यस्य प्रयोगं मुनिरपि भरतस्ताण्डवं नीलकण्ठः॥

इसी प्रकार का आरम्भ भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में है। इससे यह मालूम होता है कि भारतीय नाट्यशास्त्र की उत्पत्ति की कथा धनञ्जय को भलि भांति मालूम थी। इससे भारतीय नाट्यशास्त्र ईसवी सन् १००० के पहिले लिखा गया था इसमें कोई सन्देह नहीं मालूम होता।

११—रुद्रट कवि का लिखा हुआ एक शृङ्गार-तिलक नामक ग्रन्थ है, उसमें कहा है कि भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र-सम्बन्धी रसादि का वर्णन किया है, परन्तु सामान्यतः काव्य-सम्बन्धी रसों का वर्णन नहीं किया है। जैसे—

प्रायो नाट्यं प्रतिप्रोक्ता भरताद्यैः रसस्थितिः।
यथामतिमयाप्येषा काव्यं प्रतिनिगद्यते॥१॥
(शृङ्गारतिलक) १—

हम ऊपर कह आये हैं कि भरतमुनि नाट्यशास्त्र के छठे अध्याय में शृङ्गारादि रसों का वर्णन किया है, उसीके उपलक्ष रुद्रट का कहना ऊपर दिया है। रुद्रट समय निश्चित नहीं है, तथापि उसके ग्र में मम्मट भोज (सरस्वतीकंठाभरण) इत्या ग्रन्थकारों से श्लोक उद्धृत किये हैं। शृङ्गा तिलक का कर्त्ता रुद्रट और काव्यालङ्कार कर्त्ता रुद्रट एक ही है, ऐसा भी बहुत विद्व समझते हैं। ऐसा अगर हो तो रुद्रट का स ईसवी सन् की ९वीं सदी का उत्तरार्द्ध या उस भी पूर्व का अर्थात् आठवीं सदी होना चाहि रुद्रट के काव्यालङ्कार से उद्धृत श्लोक नवगुप्तपाद के ध्वन्यालोकलोचन में सरस्वतीकण्ठाभरण में तथा प्रतीहारेन्दु के अलङ्कार-सार-संग्रह-लघुवृत्ति में आये हैं।

१२—ध्वन्यालोक नामक अलङ्कार शास्त्र प्रधान ग्रन्थ का कर्त्ता आनन्दवर्धन है। उ भरतमुनि का उल्लेख कई बार किया है। कैशि इत्यादि वृत्ति के सम्बन्ध में लिखा है "वृ वृत्तीनां भरत प्रसिद्धानां कैशिक्यादीनां (ध्वन्यालोक, पृष्ठ १६३)। वैसे ही वेणीसं नाटक के कर्त्ता ने केवल भरत-मत के अनुस दूसरे अङ्क में विलासनामक प्रतिमुखसन्धि अङ्ग का उपयोग किया है—यथा "वेणीसं विलासाख्यस्य प्रतिमुखसन्ध्यङ्गस्य प्र रसनिबन्धनानुगुणमपि द्वितीयेऽङ्के भरतम नुसरणेच्छया घटनम्"। यह आनन्दव काश्मीर देश के राजा अवन्तिवर्मा के राज काल में विख्यात हुआ ऐसा राजतरङ्गिणी कहा है। देखिये—

मुक्ताकणः शिवस्वामी कविरानन्दवर्द्धनः।
प्रथां रत्नाकरश्चागात्साम्राज्येऽवन्तिवर्मणः॥
५।

अवन्तिवर्मा कश्मीर के सिंहासन पर ईसवी सन् ८५५ से ८८३ तक था। इसी समय आनन्दवर्द्धन भी था। और उसके पहिले का रचित वेणीसंहार नाटक है। उसके कर्त्ता को भरतमुनि प्रमाणभूत थे। अर्थात् भरत मुनि नवीं सदी के पूर्वार्ध के पूर्व में थे इसमें सन्देह नहीं।

१३—उपर्युक्त ध्वन्यालोक पर सुप्रसिद्ध आचार्य अभिनवगुप्त की टीका है। इस टीका में लिखा है कि अति पुरातन जो भरत मुनि इत्यादि ने यमक और उपमा को शब्दार्थालङ्कार माना है ("चिरन्तनैर्हि भरतमुनिप्रभृतिभिर्यमकोपमे शब्दार्थालङ्कारत्वेनेष्टे")। अति पुरातन यह विशेषण चिन्तनीय है। अभिनवगुप्त के पूर्व, अर्थात् आठवीं सदी में, जो रुद्रट हुआ और उसके भी पूर्व जो भामह (?) हुआ, इन में से किसीको पुरातन नहीं कहा है; इससे भरत मुनि आठवीं सदी के पहिले से प्रसिद्ध थे इस बात के मानने में कोई बाधा दिखाई नहीं देती। अभिनवगुप्ताचार्य का क्रमस्तोत्र नामक ग्रन्थ ६६१ में लिखा गया और बृहत्प्रत्यभिज्ञाविमर्शिणी का लेखनकाल गत कलि ४११५ अर्थात् ईसवी सन् १०१५ दिया है॥

१४—काव्यप्रकाश के चतुर्थ उल्लास में मम्मटाचार्य कहते हैं—"उक्तं हि भरतेन विभावानुभावव्यभिचारि संयोगाद्रसनिष्पत्तिः" अर्थात् भरत ने कहा ही है "विभावानुभाव व्यभिचारी भाव के संयोग से रस निष्पत्ति होती है"। येही शब्द अब प्रकाशित नाट्यशास्त्र के छठे अध्याय के ६२ पृष्ठ पर हैं। इस एक सूत्र पर मम्मट ने चार टीकाकारों के व्याख्यान दिये हैं, अर्थात् (१) भट्टलोल्लट, (२) भट्ट शंकुक, (३) भट्टनायक और (४) आचार्य अभिनवगुप्तपाद। इनके ये नाम काल-अनुक्रम से दिये हैं। हम अभी कह आये हैं कि अभिनवगुप्तपाद का एक ग्रन्थ ईसवी सन् १०१५ में रचा गया था। उसके बाद ही मम्मट हुए। अभिनवगुप्तपादाचार्य ने अपने लोचननामक टीका में भट्ट नायक पर तीव्र आलोचना की है। भट्ट नायक के सम्बन्ध में जो लिखा है उससे मालूम होता है कि वह अभिनवगुप्तपाद के कुछ ही पहिले हुए थे। राजतरङ्गिणी में लिखा है कि—

"द्विजस्तयोर्नायकाख्यो गौरीशङ्कर सद्मनोः।
चातुर्विद्यः कृतस्तेन वाग्देवीकुलमन्दिरं॥
राजतरङ्गिणी, ५-१६३।

जिससे स्पष्ट है कि भट्ट नायक शङ्करवर्मा की राजसभा में थे। शङ्कर वर्मा अवन्तिवर्मा का पुत्र था और ईसवी सन् ८८३ में गद्दी पर बैठा। इससे मालूम होता है कि भट्ट नायक ईसवी सन् ६०० के लगभग हुए थे। राजतरङ्गिणी में और भी लिखा है कि—

"कविर्बुधमनः सिन्धु शशाङ्कः शङ्कुकाभिधः।
यमुद्दिश्याकरोत्काव्यं भुवनाभ्युदयाभिधम्॥"
रा० त० ४ ७०५

शङ्कुक ने भुवनाभ्युदय काव्य लिखा। शङ्कुक अजितापीड़ राजा के समय में हुए थे। अजितापीड़ ईसवी सन् ८१३ में मृत हुआ, अर्थात् शङ्कुक ईसवी सन् ८०० के लगभग हुए। इस प्रकार शङ्कुक, नायक और अभिनवगुप्तपाद ये कालानुक्रम से ईसवी सन् ८००, ६००, १००० के लगभग हुए। अब रहा भट्टलोल्लट जिस के मत का उल्लेख मम्मटाचार्य ने प्रथम किया है। अतएव उसीको नाट्यशास्त्र का सब से पहिला टीकाकार मानना चाहिए और शङ्कुक से पूर्व में होने के कारण यह लग भग ईसवी सन् ७०० के हुआ होगा यही अनुमान युक्तिसङ्गत मालूम होता है।

१५—महाकवि माघ ने शिशुपाल-वध के चौदहवें अध्याय के ४४ वें श्लोक में कहा है—

"भरतज्ञकविप्रणीतकाव्यग्रथिताङ्का इव नाटकप्रपञ्चाः"—अर्थात् भरत के ग्रन्थ को जानने-वाले कवि के लिखे हुए काव्यसे ग्रथित हैं अङ्क

जिसमें ऐसे नाटक सीखे। माघ कवि ईसवी सन् ६५० से ७०० तक हुए ऐसा रायल एशियाटिक सोसाइटी के जर्नल १६०६ के ५२६ पृष्ठ पर लिखा है। इससे मालूम होता है कि माघ कवि के पहले अनेक नाटक बने थे और उनमें भरत मुनि के मत का अनुवाद हुआ था। तात्पर्य, भारतीय नाट्य शास्त्र ईसवी सन् सात सौ के पहले प्रचालित था।

१६—वाणभट्ट की कादम्बरी में राजपुत्र चन्द्रापीड़ जिन विद्याओं में विशारद था उनकी नामावली दी है। उसमें प्रथम भरत के नृत्यशास्त्र का नाम है—"भरतादिप्रणीतेषु नृत्यशास्त्रेषु"। वाणभट्ट कन्नौज के राजा हर्षवर्द्धन के आश्रित थे। हर्षवर्द्धन सातवीं सदी के प्रथमार्द्ध में हुआ। यह तो सर्वमान्य है, अर्थात् ईसवी सन् ६५० के पहले भरत प्रसिद्ध थे, इसमें सन्देह नहीं।

१७—महाकवि कालिदास ने मालविकाग्निमित्र में जो उल्लेख किया है उसे हम ऊपर कह चुके हैं। कालिदास ने विक्रमोर्वशीय नाटक में फिर कहा है—

"मुनिना भरतेन यः प्रयोगो, भवतीष्वष्टरसाश्रयो नियुक्तः। ललिताभिनयं तमद्य भर्ता मरुतां द्रष्टुमनाः सलोकपालः॥"

अर्थात् "भरत मुनि ने जिस अष्टरसयुक्त नाटक का प्रयोग तुम पर (अप्सराओं पर) नियुक्त कर दिया है, उस सुन्दर अभिनय-युक्त नाटक के देखने की इच्छा इन्द्र को हुई है।"

महाकवि कालिदास ने इस श्लोक में तीन बातों का परिचय भारतीय नाट्यशास्त्र के सम्बन्ध में दिया है। प्रथम तो भरत मुनि का सम्बोधन नाट्याचार्य करके किया है, दूसरे नाटक में अष्टरस होते हैं यह बतलाया है, और बतलाया है कि भरत के समय में अप्सराएँ अभिनय करती थीं। ये तीनों बातें भरत मुनि के साम्प्रत उपलब्ध ग्रन्थ में हैं। भरत मुनि नाट्यशास्त्र को ... पर लाये, यह बात स्वयं नाट्यशास्त्र में ... है जिसका वर्णन ऊपर आ ही चुका है। ... शास्त्र में आठ रस कहे हैं। यथा—

शृङ्गार-हास्य-करुणा-रौद्र-वीर-भयानकाः।
वीभत्साद्भुतसंज्ञाश्चेत्यष्टौ नाट्य रसाः स्मृताः॥
नाट्यशास्त्र, ६।१

तीसरे भरत के समय में ... करती थीं यह भी उसीमें कहा है।

"अप्सरोभिरिदं सार्द्धं क्रीडनीयकहेतुकम्।
अधिष्ठितं मया स्वर्गे स्वामिना नारदेन ...
नाट्यशास्त्र, ३४...

तात्पर्य—कविकुलशिरोमणि कालिदास ... समय में भी भरत मुनि का ... भूत माना जाता था। अब कालिदास के ... का निश्चय करना चाहिए। यह तो विश्रुत है कि कालिदास राजा ... की सभा में थे। विख्यात ... पण्डित गौरीशङ्कर ओझा ने लिखा है ... दक्षिण में राहोले नामक स्थान के एक मन्दिर में जैन कवि रविकीर्ति का रचा एक बृहत् शिलालेख भारतीय युद्ध सं० ३७३५ और शक संवत् ५५६ और विक्रम सं० ६६१ का है। उसमें कालिदास और भारवि कवियों की कविता की प्रशंसा की है—

"स विजयतां रविकीर्तिः कविताश्रित कालिदास-भारवि-कीर्तिः।"

इससे कालिदास का विक्रमादित्य के समय में होना ही बहुत युक्तियुक्त है। शक-कर्त्ता विक्रम को हुए आज १६८६ वर्ष हुए, अर्थात भरत मुनि के ग्रन्थों की प्रसिद्धि ईसवी सन् के जन्म के पहले से भी, इसमें शङ्का के लिए कोई स्थान नहीं है। आज से दो हजार वर्ष, पहले अर्थात

ा स्थलान्तर के मार्ग और साधन सुगम थे, रेल थी, न तार-यन्त्र—ऐसे समय में किसी न्थकार का सर्वत्र प्रसिद्ध हो जाना सहज हीं था। अर्थात् भरत मुनि के ग्रन्थ को ारतवर्ष भर में प्रसिद्ध होने के लिए कालि- ास के समय से पहिले कम से कम हज़ार पाँच सौ वर्ष लगे होंगे। इस अनुमान से भरत मुनि का काल लगभग ३००० वर्ष पहले का होना सम्भव है। आशा है कि अधिक शोध और प्रमाण प्राप्त होने पर यह समय ठीक होना सिद्ध हो जाय।

चन्द बरदाई।

[लेखक—बाबू श्यामसुन्दरदास, बी. ए.]

जिस प्रकार संस्कृत के इतिहास में महर्षि वाल्मीकि आदि कवि माने गए हैं उसी प्रकार संस्कृत की ज्येष्ठ कन्या हिन्दी के इतिहास में चन्द बरदाई का नाम और यश सर्वश्रेष्ठ गिना जाता है, तथा उसका पृथ्वीराजरासो नामक महाकाव्य हिन्दी का आदि ग्रन्थ माना जाता है। हिन्दी का ऐसा कौन प्रेमी होगा जिसने चन्द बरदाई का नाम न सुना हो? पर कितने लोग ऐसे हैं जिन्होंने उसके ग्रन्थ को पढ़ने अथवा उसके मर्म्म को जानने का सौभाग्य प्राप्त किया हो? बहुत दिनों तक तो हिन्दी के प्रेमियों का इस कवि-सम्बन्धी ज्ञान शिवसिंह-सरोज में दिए हुए वृत्तान्त की सीमा से वेष्टित था, परन्तु ऐसा जान पड़ता है कि शिवसिंह को भी इस कवि के ग्रन्थ देखने का अवसर नहीं प्राप्त हुआ। उसने अपने "सरोज" में जो कुछ लिखा है वह सुना सुनाया ही जान पड़ता है। कर्नल टॉड ने अपने राजस्थान के इतिहास में इस कवि के ग्रन्थ से बहुत कुछ सहायता ली है और अँग्रेज़ी पढ़े लिखे लोगों में इस कवि की प्रसिद्धि टॉड साहब की कृपा का ही फल है। इसके अनन्तर वीम्स साहब ने बङ्गाल की एशियाटिक सोसाइटी की अव- ... इस ग्रन्थ के सम्पादन करने का ... किया, पर वे एक 'समय' भी समाप्त ... सके। डाक्टर हॉर्नेली ने भी बीच में ... सम्पादन और अङ्गरेज़ी अनुवाद प्रारम्भ किया। इसी समय में उदयपुर के कविराजा श्यामलदास जी ने एक लेख एशियाटिक सोसाइटी की पत्रिका में छपवाया जिसमें इस बात के सिद्ध करने का उद्योग किया गया कि चन्द का ग्रन्थ ऐतिहासिक नहीं है और न पृथ्वीराज के समय का बना है, क्योंकि उसमें बहुत सी इतिहास-सम्बन्धी भूलें हैं और बहुत कुछ बे-सिर-पैर की गप मारी गई है। बस फिर क्या था! किसी ने तब तक उस ग्रन्थ को सम्पूर्ण पढ़ा तो था ही नहीं, और न उसके विषय में अनुसन्धान ही किया था, कविराजा जी का कहना ठीक माना गया और ग्रन्थ का प्रकाशन बन्द कर दिया गया। एशियाटिक सोसाइटी ने कभी भी हिन्दी के प्राचीन ग्रन्थों की ओर अपनी विशेष श्रद्धा प्रकट नहीं की। आज तक उसने केवल तीन ही ग्रन्थों के प्रकाशित करने का उद्योग किया—अर्थात् पृथ्वीराजरासो, तुलसी-सतसई और पद्मावती। पहिला तो असमाप्त ही छोड़ दिया गया, यद्यपि यह जान कर सन्तोष होता है कि उस सभा के सभापति ने उस वर्ष के वार्षिक अधिवेशन में यह आशा प्रकट की है कि प्राचीन ऐतिहासिक ग्रन्थों की खोज से सम्भव है कि रासो कहीं से आदि रूप में मिल जाय। तुलसी-सतसई पूरी छपी और पद्मावती अभी कई वर्षों से छप रही है। इस अवस्था में यह आशा करनी व्यर्थ थी कि यह सोसाइटी इस अमूल्य ग्रन्थ-रत्न

के प्रकाशित करने का विशेष उद्योग करते रहे। हमारे देशवासियों में तब तक वैसा जागृति ही नहीं हुई थी कि वे अपनी मातृ-भाषा की सेवा करते और उसके प्राचीन इतिहास जानने का उद्योग करते। केवल पण्डित मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या ने कविराजा श्यामलदास जी के आक्षेपों का उत्तर एक पुस्तिका द्वारा दिया और रासो के प्रकाशित करने में हाथ लगाया, पर उत्साह न मिलने के कारण वे भी उत्साह-हीन हो बैठे। निस्सन्देह हमारे लिए यह बड़े आनन्द और सौभाग्य की बात है कि अब पढ़े लिखे लोगों का बहुत कुछ ध्यान अपनी मातृ-भाषा की ओर आकर्षित हुआ है और वे उसकी सेवा में तत्पर हैं। सच बात तो यह है कि वह देश कदापि उन्नति की आशा नहीं कर सकता जिसके वासियों में अपने प्राचीन इतिहास और गौरव की ओर सम्मान-दृष्टि न हो और जहां अपने महत्व को स्थिर रखते हुए आगे बढ़ने का उद्योग न हो। किसी किसी इतिहासवेत्ता विद्वान का तो यह भी मत है कि जो देशसेवक हैं, जिन्होंने किसी प्रकार अपने देश की सेवा कर उसका मुखोज्वल किया है, उनका उनकी जीवनावस्था में ही सम्मान होना आवश्यक है। मरे पीछे तो सिर के लिए रोया जाता है, पर जीते जी किसी की प्रतिष्ठा करने से जो प्रभाव उसका दूसरों के चित्त पर पड़ता है वह मरे पीछे बहुत कुछ करने पर भी नहीं हो सकता। परन्तु हमारे देश की ऐसी अवस्था नहीं है कि लोग ईर्षा और द्वेष को छोड़ कर वास्तविक गुणग्राहकता दिखा सकें। निस्सन्देह वह दिन परम सौभाग्य का होगा जब "गुनगाहक हिरानो" की उक्ति हम पर न लग सकेगी। जब तक यह अवस्था प्राप्त हो तब तक प्राचीन महानुभावों के गुणगान से ही इस अभाव की पूर्ति करना और आगे के लिए वांछित अवस्था का मार्ग प्रशस्त करना प्रत्येक देशहितैषी का कर्तव्य होना चाहिए। हिन्दी-जगत में इस कार्य की ओर काशी नागरीप्रचारिणी सभा ने सराहनीय कार्य किया है। प्राचीन हस्त-लिखित पुस्तकों की खोज से जो हिन्दी ग्रन्थ-रत्नों का पता लगा है और उनके ग्रन्थकारों के नाम विदित हुए हैं उससे हिन्दी भाषा के इतिहास का बहुत कुछ गौरव बढ़ा है। पर दुःख इस बात का है कि इस खोज की जो रिपोर्टें प्रकाशित हुई हैं उनसे हिन्दी प्रेमियों ने कोई विशेष लाभ नहीं उठाया। मुझे आशा है कि पण्डित श्यामबिहारी मिश्र को हिन्दी के इतिहास लिखने में इनसे बहुत कुछ सहायता मिली होगी, परन्तु साधारणतः इन रिपोर्टों का कोई उपयुक्त उपयोग नहीं किया गया। दो एक महाशयों ने जिनसे विशेष न्याय की आशा थी, इन रिपोर्टों को गुदड़ी के भाव तौला है। अस्तु इस उपेक्षा का यह भी कारण हो सकता है कि इन रिपोर्टों का मूल्य गवर्नमेंण्ट ने अधिक रक्खा है और उनका मुख्यांश अङ्गरेज़ी में लिखा गया है। पर इस त्रुटि की पूर्ति बड़ी सुगमता से हो सकती है। आशा है हमारे मित्र पण्डित श्यामबिहारी मिश्र इस ओर ध्यान देंगे। अस्तु इस स्थान पर यह कहना कदाचित् अनुचित नहीं होगा कि चन्द बरदाई और उसके रासो के विषय में हमें जो कुछ ज्ञान प्राप्त हुआ है वह विशेष कर इसी खोज की रिपोर्टों की कृपा से हुआ है।

यह बात सर्वसम्मत है कि ईसवी सन् के २५० वर्ष पहिले भारतवर्ष के उत्तर में एक भाषा बोली जाती थी जिसकी उत्पत्ति प्राचीन काल की वैदिक संस्कृत से हुई और जो समय पाकर नित्य प्रति के व्यवहार की साधारण भाषा हो गयी। इस भाषा का नाम प्राकृत था। इसके साथ ही साथ एक दूसरी परिष्कृत और संस्कार-युक्त भाषा का पढ़े लिखे लोगों में प्रचार था। यह संस्कृत नाम से प्रसिद्ध हुई और अब तक उसी नाम से प्रसिद्ध है।

इस प्राकृत भाषा में ही प्रियदर्शी सम्राट अशोक के आज्ञापत्र जो अब लों चट्टानों पर खुदे हुए पाए जाते हैं, लिखे हुए हैं। उनके देखने और अध्ययन करने से यह स्पष्ट विदित होता है कि उस समय प्राकृत भाषा दो मुख्य भागों में विभक्त थी—एक पश्चिमी और दूसरी पूर्वी। पश्चिमी प्राकृत का दूसरा नाम सौरसेनी था। इससे गुर्जरी, अवन्ती, सौरसेनी और महाराष्ट्री, इन भाषाओं की उत्पत्ति हुई। इसी सौरसेनी से हमारी हिन्दी भाषा ने जन्म ग्रहण किया, पर यह जन्म किस वर्ष में हुआ इसका निश्चय करना बड़ा कठिन है। शिवसिंहसरोज के अनुसार तो हिन्दी का आदि कवि पुण्ड है, पर न तो उसके किसी ग्रन्थ का और न उसकी भाषा का ही कहीं कुछ पता लगता है। दूसरा ग्रन्थ खुमानरासो* है जो सन् ८३० में लिखा गया था। पर इस ग्रन्थ की जो प्रतियाँ अब विद्यमान हैं उनमें महाराणा प्रतापसिंह का भी वृत्तान्त सम्मिलित है, जिससे यह मानना पड़ेगा कि इसकी भाषा जैसी कि अब यह वर्त्तमान है, नौवीं शताब्दी की नहीं कही जा सकती। तीसरा प्रसिद्ध कवि जिसके विषय में हमें कुछ वास्तविक वृत्तान्त विदित है, वह चन्द बरदाई है। इसने एक ऐसी भाषा में ग्रन्थ लिखा है जो प्राकृत के अन्तिम रूप और हिन्दी के आदि रूप से बहुत कुछ मिलती जुलती है। इससे यह सिद्धान्त होता है कि उस समय भाषा का रूपान्तर हो रहा था। इसके अतिरिक्त प्राकृत का अन्तिम वैयाकरण हेमचन्द्र भी ११५० के लगभग वर्तमान था। इस लिए जहाँ तक अभी पता लगा है चन्द को ही हिन्दी का आदि कवि मानना पड़ता है और हिन्दी भाषा की उत्पत्ति का काल ११वीं शताब्दी निश्चित करना पड़ता है। यदि अनुसन्धान करने पर और ग्रन्थों का पता लग गया तो इस मत को छोड़ना पड़ेगा, परन्तु जब तक यह न हो, इसी सिद्धान्त को स्थिर मानना चाहिए।

अस्तु, चन्द बरदाई का नाम हिन्दी और ऐतिहासिक समाज में प्रसिद्ध है। यह हिन्दू के अन्तिम सम्राट पृथ्वीराज चौहान का लँगोटिया मित्र और उनके दरबार का कविराज था। यह भट्ट जाति के, जो आज कल राव कहलाते हैं, जगात नामक गोत्र का था और उसके पुरखे पञ्जाब के रहनेवाले थे और उनकी यजमानी अजमेर के चौहानों के यहाँ थी। चन्द का जन्म लाहौर में हुआ था*। ऐसा कहा जाता है कि चन्द का जन्म उसी दिन हुआ था जिस दिन पृथ्वीराज ने जन्म ग्रहण किया और दोनों ने इस असार संसार को भी एकही दिन छोड़ा†। जैसा कि आगे लिखा जायगा, पृथ्वीराज का जन्म संवत् १२०५ में और मृत्यु १२४९ में हुई। इस हिसाब से चन्द का समय ईसवी की बारहवीं शताब्दी के अन्तिम अर्धभाग में मानना चाहिए। उसके पिता का नाम वेण और विद्यागुरु का नाम गुरुप्रसाद था। वह षट्भाषा, व्याकरण, काव्य, साहित्य, छन्दशास्त्र, ज्योतिष, वैद्यक, मन्त्रशास्त्र, पुराण, नाटक और गान आदि विद्याओं में अच्छा व्युत्पन्न था और उसे भगवती जालंधरी देवी का इष्ट था और अपने आराध्य-देव की कृपा से वह अदृष्ट काव्य भी कर सकता था। चन्द के जीवन-चरित की विशेष विशेष घटनाएँ पृथ्वीराज के चरित

---

* मुझे बड़े दुःख के साथ यह लिखना पड़ता है कि अनेक वर्षों के उद्योग के अनन्तर मैंने इस ग्रन्थ को एक हस्तलिखित प्रति प्राप्त की थी और काशी नागरी-प्रचारिणी सभा के पास ग्रन्थमाला में प्रकाशित करने के लिए भेजी थी, पर कोई दस महीने रख छोड़ने के अनन्तर बिना उसकी प्रति लिये हुए उसके मालिक के माँगने पर वह लौटा दी गयी। हा, कैसा अच्छा अवसर इस ग्रन्थ को जीव का हाथ से जाता रहा!

* "चन्द उपजि लाहौरह।"

† "इक्क दीह उपन्न, इक्क दीह समाय क्रम।"

इस भाँति मिली हुई हैं कि वे अलग सकतीं।

राज का नाम भारतवर्ष के इतिहास में रणीय बना रहेगा। हिन्दू साम्राज्य का पीछे साथ समझना चाहिए। आपस ह और परस्पर के वैर विरोध ने भारत- नाश किया। यही कारण पृथ्वीराज अधःपतन का हुआ। पृथ्वीराज सोमे- ा पुत्र तथा अर्णोराज का पौत्र था। र का विवाह दिल्ली के तोंवर राजा अनङ्ग- की कन्या से हुआ था। अनङ्गपाल की याएँ थीं।

ाल पुत्री उभय, इक दीनी विजपाल।
र्नी सोमेस को, बीज बपन कलिकाल॥
ाम सुरसुन्दरी, अनिवर कमला नाम।
सुर नर दुहूनी, मनों पुत्तलिका काम॥

तएव अनङ्गपाल की सुन्दरी नाम कन्या का ह कन्नौज के राजा विजयपाल के साथ और इसी संयोग से जयचन्द राठौर की त्ति हुई। दूसरी कन्या कमला का विवाह मेर के चौहान सोमेश्वर से हुआ और इनकी त्ति पृथ्वीराज हुआ। अनङ्गपाल के कोई न होने के कारण उसने अपने नाती पृथ्वी- को गोद लिया। इससे अजमेर और ी का राज्य एक होगया। यह बात कन्नौज ाजा जयचन्द को न भाई, क्योंकि वह कहता कि दिल्ली के सिंहासन पर मुझे बैठना हिए न कि पृथ्वीराज को। परन्तु विवाह पूर्व विजयपाल ने अनङ्गपाल पर चढ़ाई की , और उस समय सोमेश्वर ने तोंवरराज की ायता की थी, इसी कारण अनङ्गपाल का ्नेह उन पर अधिक होगया था। अस्तु, इसी द्वेष कारण जयचन्द ने राजसूय यज्ञ रचा और भिन्न भिन्न देशों के राजाओं को के काम करने के लिए न्योता भेजा। थ्वीराज भी निमन्त्रित हुए, पर उन्होंने जय- चन्द के घर जाकर दासकृत्य करना स्वीकार नहीं किया। जयचन्द ने अपनी कन्या संयोगिता का स्वयंवर भी इसी समय रचा। संयोगिता की माता कटक के सोमवंशी राजा मुकुन्ददेव की कन्या थी। पृथ्वीराज से और संयोगिता से बिना एक दूसरे को देखे एक दूसरे का वृत्तान्त जानने ही से आन्तरिक प्रेम हो गया था, पर तिस पर भी वह यज्ञ में नहीं गया। जयचन्द ने जब यह देखा कि सब राजे तो आ गये पर पृथ्वीराज नहीं आया, तो उसे बड़ा क्रोध आया और उसने पृथ्वीराज की एक स्वर्णमूर्ति बनवा कर द्वार पर रखवा दी। ऐसा करने से उसका आशय यह प्रकट करने का था कि यद्यपि पृथ्वी- राज नहीं आया, पर उसकी प्रतिष्ठा ऐसी है कि वह आ कर इस यज्ञ के समय द्वारपाल का कार्य करता। निदान जब स्वयंवर का समय आया तो जयचन्द की कन्या जयमाल लेकर निकली। सब राजाओं को देखते देखते उसने अन्त में आकर पृथ्वीराज की मूर्ति के गले में माला डाल दी और इस प्रकार अपने गाढ़ तथा गूढ़ प्रेम का पूर्ण परिचय दिया। यह बात जयचन्द को बहुत बुरी लगी। उसने अपनी कन्या का मन फेरने के लिए अनेक उद्योग किये, पर जब किसी प्रकार सफलता नहीं हुई तो गङ्गा के किनारे एक महल में उसे एकान्तवास का दण्ड दे दिया। इधर पृथ्वीराज के सामन्तों ने आकर जयचन्द का यज्ञ विध्वंस कर दिया। जब पृथ्वीराज को सब वृत्तान्त विदित हुआ तो उसने छिप कर कन्नौज जाने की तैयारी की। प्रकट रूप में तो चन्द बरदाई आया, पर वास्तव में पृथ्वीराज सामन्त सहित पहुँच गया। निदान किसी प्रकार जय- चन्द को यह वृत्तान्त प्रकट हो गया और उसने चन्द का डेरा घेर लिया। [illegible] युद्ध आरम्भ हो गया [illegible]

रहा था। घूमते घूमते यह उसी महल के नीचे जा पहुँचा जहाँ संयोगिता कैद थी। दोनों की आँखें चार होते ही परस्पर मिलने की इच्छा प्रबल हो उठी। सखियों की सहायता से दोनों का मिलाप हुआ और वहीं गन्धर्व विवाह कर के दोनों ने सदा के लिए अपना सम्बन्ध स्थापित किया। इसके अनन्तर पृथ्वीराज अपनी सेना में आ मिला। सामन्तों ने मुखछवि देख कर मामला समझ लिया और उसे बहुत कुछ धिक्कारा कि वह अकेला ही क्यों चला आया और अपनी नवविवाहिता दुलहिन को क्यों नहीं साथ लाया? इस पर लज्जित हो पृथ्वीराज पुनः संयोगिता के पास गया और उसे अपने घोड़े पर चढ़ा अपनी सेना में ले आया। बस, फिर क्या था, संयोगिता को इस प्रकार हरी जान कर पग-सेना चारों ओर से उमड़ आई और बड़ा भयानक युद्ध प्रारम्भ हुआ। निदान युद्ध होता जाता था और पृथ्वीराज धीरे धीरे दिल्ली की ओर बढ़ता जाता था। बहुत से सामन्त मारे गए, सेना की बड़ी हानि हुई, पर अन्त में पृथ्वीराज अपनी राज्य-सीमा में आ पहुँचा और जयचन्द ने हार मानी। इसके अनन्तर उसने बहुत कुछ दहेज भेज कर दिल्ली में ही पृथ्वीराज और संयोगिता का विधिवत विवाह करा दिया। अब तो पृथ्वीराज को राज काज सब भूल गया, केवल संयोगिता संयोगिता के ही ध्यान और रस-विलास में सारा समय बीतने लगा। इस युद्ध में ही बल का ह्रास हो चुका था। जो कुछ बचा बचाया था उसे इस रास-रङ्ग ने नष्ट कर दिया। यह अवसर उपयुक्त जान शहाबुद्दीन चढ़ आया। बड़ी गहरी लड़ाई हुई, पर अन्त में पृथ्वीराज हारा और बन्दी हो गया। कुछ काल के पीछे चन्द भी पृथ्वीराज के पास गज़नी पहुँच गया और वहाँ दोनों एक दूसरे के हाथ से स्वर्गधाम को पधारे। शहाबुद्दीन और पृथ्वीराज का वैर पुराना था। इस का प्रारम्भ इस प्रकार हुआ था। शहाबुद्दीन एक नवयौवना सुन्दरी पर आसक्त था जो उसे नहीं चाहती थी। वह हुसैनशाह पर आसक्त थी। शहाबुद्दीन के उस युवती और हुसैनशाह को बहुत दिक करने पर वे दोनों भाग कर पृथ्वीराज की शरण चले आये। उस समय तक हिन्दुओं में इतनी वीरता और इतना आतिथ्य-धर्म वर्त्तमान था कि वे शरणागत के साथ कभी विश्वासघात न कर के सदा उनकी रक्षा करते थे। जब शहाबुद्दीन को यह प्रकट हुआ तो उसने पृथ्वीराज को कहला भेजा कि तुम उस स्त्री और उसके प्रेमी को अपने देश से निकाल दो। पृथ्वीराज ने उत्तर भेजा कि शरणागत की रक्षा करना क्षत्रियों का धर्म है, उन्हें निकालना तो दूर रहा, मैं सदा उनकी रक्षा करूँगा। बस, अब क्या था, शहाबुद्दीन दिल्ली पर चढ़ दौड़ा। कई युद्ध हुए जिनका वर्णन पढ़ कर इस समय भी हिन्दू-हृदय रोमाञ्चित और वीररस-पूर्ण हो जाता है।

इन्हीं घटनाओं को चन्द बरदाई ने अपने ग्रन्थ में अत्यन्त विस्तार-पूर्वक वर्णन किया है। हिन्दी भाषा में यह ग्रन्थ अपनी समता नहीं रखता। यह ग्रन्थ ६९ अध्यायों में विभक्त है जिनका मैं संक्षेप में नीचे वर्णन करता हूँ—

(१) आदि-पर्व—इसमें चौहानों की उत्पत्ति, वीसलदेव, अर्णोराज और सोमेश्वर आदि का वृत्तान्त तथा पृथ्वीराज की जन्मकथा है।

(२) दसम समय—इसमें दसावतारों की कथा है।

(३) दिल्ली किल्ली कथा—इसमें राजा अनङ्गपाल के किल्ली गड़वाने और पुरोहित के कहने पर विश्वास न करके उसे उखड़वाने की कथा है जो पृथ्वीराज की माता ने अपने पुत्र से कही।

(४) लोहाना आजानबाहु समय—इसमें लोहाना के ३२ हाथ ऊँची भीत से

की चित्ररेखा नामक वेश्या थी। शहाबुद्दीन ने उस पर चढ़ाई की, पर लड़ाई होने के पहिले ही सिन्ध का राजा मुसलमान हो गया और शहाबुद्दीन के माँगने पर उसने अपनी चित्ररेखा नामक वेश्या उसके अर्पण की और उसका दासत्व स्वीकार किया। अन्त में इस वेश्या का प्रेम मीर हुसेन से हो गया जो उसे लेकर पृथ्वीराज के पास भाग आया।

(१२) भोलाराय समय—गुजरात के राजा भोलाराय भीमदेव ने आबू के राजा सलख पँवार पर चढ़ाई की। सलख पँवार की दो कन्याएँ मन्दोदरी और इन्छनी थीं। मन्दोदरी का विवाह भोलाराय के सङ्ग हुआ था। भोलाराय इन्छनी को भी ब्याहा चाहता था, पर सलख ने उसका सम्बन्ध पृथ्वीराज से स्थिर किया था। जब सलख ने भोलाराय का प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया तो वह उस पर सेना ले चढ़ आया। इधर सलख ने पत्र लिख कर पृथ्वीराज को सब सूचना दे दी। इस खबर को पाकर भोलाराय ने चढ़ाई पर शीघ्रता की। घोर युद्ध हुआ जिसमें सलख पँवार मारा गया और आबू पर भोलाराय का अधिकार हो गया। पृथ्वीराज इस समय नागौर में था। उसने झट सेना की तैयारी की। दोनों का सामना हुआ, भोलाराय मारा गया और पृथ्वीराज की जय हुई।

(१३) सलख युद्ध समय—इसी समय शहाबुद्दीन आबू पर चढ़ आया। सलख पँवार का [illegible] इन्छनी और पृथ्वीराज की सगाई [illegible]। इस युद्ध में शहाबुद्दीन हार कर [illegible] हो गया।

(१४) इन्छनी ब्याह कथा—इस प्रस्ताव में [illegible]

जैतसी की बहिन इन्छनी के पृथ्वी[illegible] के सङ्ग ब्याह होने का वर्णन है।

(१५) मुगल युद्ध कथा—जिस समय पृथ्वीराज इन्छनी का ब्याह कर आबू [illegible] दिल्ली लौट रहा था उस समय [illegible] के मुगल सरदार ने पुराना बैर स्म[illegible] कर पृथ्वीराज से बदला लेने की ठा[illegible] जो युद्ध हुआ उसमें मुगल सर[illegible] की हार हुई और वह कैद हो गया।

(१६) पुंडीर दाहिमी विवाह कथा—[illegible] अध्याय में चन्द पुंडीर की कन्या [illegible] कैमास की दोनों बहिनों के साथ पृथ्वीराज के विवाह की कथा है।

(१७) भूमिस्वप्न प्रस्ताव—इस अध्याय में पृथ्वीराज के शिकार खेलने का वर्णन है। शिकार के अनन्तर पृथ्वी में धन[illegible] धन गड़े रहने के शुभ चिह्न देख[illegible] और राजधानी में लौटने पर [illegible] वन में धन गड़े रहने का पृथ्वीराज को स्वप्न भी हुआ।

(१८) दिल्ली दान प्रस्ताव—इस प्रस्ताव में पृथ्वीराज के दिल्ली गोद जाने [illegible] कथा है।

(१९) माधो भाट कथा—इस प्रस्ताव में [illegible] बुद्दीन के एक [illegible] माधो भाट के दिल्ली आने और यहाँ के सब समा[illegible] ले जाने का वर्णन है। [illegible] समय अनुकूल जान दिल्ली पर [illegible] आया, पर लड़ाई में हार कर [illegible] हो गया।

(२०) पद्मावती विवाह कथा—समुद्र शिखर गढ़ के राजा [illegible] की [illegible] पद्मावती के सङ्ग पृथ्वीराज के [illegible] की कथा है। जब पृथ्वीराज [illegible]

हुई और वह क़ैद हो गया।

पृथा विवाह कथा—इस प्रस्ताव में पृथ्वीराज की बहिन पृथ्वाबाई के चित्तौरगढ़ के रावल समरसी के सङ्ग विवाह होने का वृत्तान्त है।

होली कथा—इस प्रस्ताव में चन्द होलिका कथा का वर्णन करता है।

दीपमालिका कथा—इस प्रस्ताव में कवि चन्द दीपमालिका की कथा वर्णन करता है।

) धन कथा—इसमें खट्टू वन में ज़मीन के नीचे गड़ा हुआ धन निकालने की तथा शहाबुद्दीन से लड़ाई होने की कथा है।

) शशिवृता वर्णन—देवगिरि के सोमवंशी राजा भानराय यादव की कन्या शशिवृता का हाल एक नट द्वारा जानकर पृथ्वीराज उस पर आसक्त हो गया। इस कन्या की सगाई कन्नौज के राजा के भतीजे के सङ्ग हुई थी, पर शशिवृता पृथ्वीराज पर मोहित थी। निदान इधर पंग सेना बरात लेकर आयी और उधर पृथ्वीराज भी गुप्त रीति से आ पहुंचा और अवसर पाकर शशिवृता को ले भागा। पंग सेना ने पीछा किया, पर पृथ्वीराज को वह पकड़ न सकी। अन्त में यादव ने सादर पृथ्वीराज को विदा किया।

२६) देवगिरि समय—जयचन्द के भतीजे वीरचन्द को यह हार बड़ी दुस्सह प्रतीत हुई। उसने देवगिरि का क़िला घेर लिया और सहायता के लिए कन्नौज से सेना मंगाई। इधर पृथ्वीराज भी अपने ससुर की सहायता पर आ पहुंचा। जब अनेक उद्योग करने पर भी क़िला न टूट सका तो जयचन्द ने अपनी सेना की बाग मोड़ी और वह अपने राज्य को लौट आया।

(२७) रेवा तट समय—रेवा तट के सघन वन में पृथ्वीराज शिकार खेलने गया। वहाँ ग़ज़नी की सेना ने उस पर आक्रमण किया, पर जीत पृथ्वीराज की ही हुई।

(२८) अनङ्गपाल समय—इधर मालवा के राजा ने सोमेश्वर पर चढ़ाई की, और उधर अनङ्गपाल यह सुन कर कि पृथ्वीराज उसके कर्मचारियों को छुड़ा कर अजमेर के लोगों को अपनी सेवा में नियुक्त कर रहा है, बद्रिकाश्रम से अपना राज्य लौटाने की चेष्टा में लगा। मालवा के राजा की हार हुई और पृथ्वीराज ने राज्य लौटाना अस्वीकार किया। इस समय शहाबुद्दीन अनङ्गपाल की सहायता के लिए उद्यत हो बैठा। युद्ध में अनङ्गपाल की हार हुई। पृथ्वीराज ने उसे बड़े आदर से अपने पास रक्खा और शहाबुद्दीन को क़ैद कर लिया। अन्त में एक वर्ष दिल्ली में रह कर अनङ्गपाल बद्रिकाश्रम को लौट गया।

(२९) घग्घर नदी का युद्ध—पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन का युद्ध जिसमें चन्द ने शाह को क़ैद कर लिया।

(३०) करनाटी पात्र समय—इस युद्ध के अनन्तर पृथ्वीराज ने कर्नाट देश पर चढ़ाई की। सब राजाओं ने निरुपाय कर्नाट देशीय एक परम सुन्दरी वेश्या पृथ्वीराज के अर्पण की। इस वेश्या को उपयुक्त शिक्षा का प्रबन्ध किया गया और वह सब नृत्य कला में आनन्द से सुशोभित हुई।

(३१) पीपायुद्ध—पृथ्वीराज ने जयचन्द पर चढ़ाई करने की तैयारी की पर शहाबुद्दीन ने आ रास्ता रोका। लड़ाई हुई जिसमें पीपा पड़िहार ने शहाबुद्दीन को बन्दी कर लिया।

(३२) कटहरा युद्ध—पृथ्वीराज मालवा देश में शिकार खेलने गया। उज्जैन के राजा ने इसका बड़ा आदर-सत्कार किया और अपनी कन्या इन्द्रावती का पाणिग्रहण भी पृथ्वीराज के साथ कर देने की प्रतिज्ञा की; टीका चढ़ा और विवाह का पक्का हुआ। इसी समय समाचार आया कि गुर्जर नरेश भीमदेव चालुक्य ने चित्तौर पर चढ़ाई की है। पृथ्वीराज समरसिंह की सहायता के लिए चल दिया और परजूनराय को उसने अपना खड्ग बँधा कर उज्जैन विवाह-निमित्त भेजा। इस युद्ध में भीमदेव ने हार मानी और वह भाग गया।

(३३) इन्द्रावती विवाह—उज्जैनपति ने खड्ग के साथ इन्द्रावती का विवाह करना स्वीकार नहीं किया। इस पर बहुत कुछ विवाद और विग्रह हुआ। अन्त में खड्ग के सङ्ग विवाह किया गया और सामन्तमण्डली इन्द्रावती को लेकर दिल्ली चली आई।

(३४) जैतराय युद्ध—पद्मवन में पृथ्वीराज शिकार खेल रहा था। उसी समय शहाबुद्दीन ने कहला भेजा कि हुसेन खाँ को हमें दे दो। पृथ्वीराज ने यह न माना। शहाबुद्दीन दलबल सहित चढ़ आया। लड़ाई हुई जिसमें जैतराव ने उसे पकड़ लिया।

कांगुरा युद्ध प्रस्ताव—जालन्धरी रानी ने पृथ्वीराज से कहा कि आपने मेरे लिए कांगड़े का क़िला दिला देने का वचन दिया था, सो अब खाली करा दीजिए। पृथ्वीराज ने वहाँ के राजा को कहला भेजा कि क़िला खाली कर दो, नहीं तो युद्ध करो। राजा ने लड़ाई स्वीकार की, पर उसमें उसकी हार हुई। पृथ्वीराज ने इसकी कन्या से विवाह करना स्वीकार किया।

(३६) हंसावती नाम प्रस्ताव—रणथम्भ के यादववंशी राजा भान की हंसावती नाम परम सुन्दरी कन्या थी। चन्देरी का शिशुपालवंशी राजा पञ्चाइन उस से विवाह किया चाहता था। उसने अपना सँदेसा राजा भान के पास कहला भेजा, पर उसने स्वीकार नहीं किया। इस पर पञ्चाइन एक बड़ी सेना ले रणथम्भ-गढ़ पर चढ़ दौड़ा और शहाबुद्दीन को भी अपनी सहायता पर बुलाया। शहाबुद्दीन ने एक सेना पञ्चाइन की सहायता के लिए भेज दी। राजा भान ने यह अवस्था देख पृथ्वीराज से सहायता माँगी। पृथ्वीराज वट सेना ले चल पड़ा और उसने चित्तौरपति को भी सब समाचार कहला भेजा। वे भी रणथम्भ की ओर चल पड़े। घोर युद्ध हुआ जिसमें पञ्चाइन मारा गया और रणथम्भ की जीत हुई। यहाँ से पृथ्वीराज शिकार खेलने चला गया। मङ्गलगढ़ के राजा सारङ्ग ने बदला लेने का यह अवसर अच्छा जान पृथ्वीराज को न्योता दिया। जब वे क़िले में आये तो उन्हें अकेला जान घेर लिया, पर बाहर पड़ी सामन्त मण्डली ने सहायता की। सारङ्ग ने हार मानी और अपनी बहिन समरसिंह को ब्याह दी। इसके अनन्तर जब विवाह का दिन निकट आया तो पृथ्वीराज ने रणथम्भ-गढ़ जाकर हंसावती को ब्याहा।

पहाड़राय समय—शहाबुद्दीन ने पृथ्वीराज पर आक्रमण किया। घोर युद्ध हुआ जिसमें पहाड़राय ने शहाबुद्दीन को पकड़ लिया।

वरुण कथा—एक समय चन्द्रग्रहण के अवसर पर सोमेश्वर यमुना स्नान करने गये। वहाँ कुछ ऐसा दैवी उत्पात हुआ कि सोमेश्वर मूर्च्छित हो गये। पृथ्वीराज ने उनकी उस समय रक्षा की।

सोम वध—गुजरात का राजा सोलङ्की भीमदेव था। वह पृथ्वीराज से बुरा मानता था। इसलिये उसने अजमेर पर चढ़ाई की। सोमेश्वर युद्ध करने पर सन्नद्ध हुए। लड़ाई में सोमेश्वर मारे गये। पृथ्वीराज अजमेर की गद्दी पर बैठा।

पज्जून छोगा नाम प्रस्ताव—गुजरात के राजा भीमदेव के अकारण अजमेर पर चढ़ आने के कारण पृथ्वीराज बड़ा क्रुद्ध हुआ। उसने पज्जूनराय कछवाहे को उसके पुत्र मलयसिंह के साथ भीमदेव के पास भेजा। दोनों ने बड़ा उत्पात मचाया। लड़ाई करके वह भीमदेव का सिर-मंडल, छोगा, छत्र आदि लेकर दिल्ली चला आया।

पज्जून चालुक प्रस्ताव—जब जयचन्द ने देखा कि सीधी चाल से चौहान नहीं दबता तो उसने अपने भाई वालुकाराय को सहायक सेना देकर शहाबुद्दीन से दिल्ली पर चढ़ाई करा दी। इस समय पृथ्वीराज पिता की मृत्यु के कारण अशौच में था। इसलिये उसने पज्जूनराय को सेनानायक बना कर संयुक्त शत्रुसेना के मुक़ाबिले पर भेजा। लड़ाई में पज्जून राय की जीत हुई।

चन्द द्वारिका गमन—एक समय चन्द ने पृथ्वीराज की आज्ञा ले द्वारिकापुरी की यात्रा की। पहिले वह चित्तौर गया। वहां से पट्टनपुर होता हुआ वह द्वारिका गया। लौट कर वह पुनः पट्टनपुर आया। यहाँ उससे और पट्टनपुर के भाट जगदेव से कुछ विवाद हो गया। चन्द ने अपनी शक्ति का चमत्कार दिखाया पर यह समाचार पाकर कि शहाबुद्दीन ने चढ़ाई की है वह शीघ्र दिल्ली लौट गया।

(४३) कैमास युद्ध—इसमें पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन के युद्ध और कमास द्वारा शाह के पकड़े जाने का वर्णन है।

(४४) भीमवध—अपने पिता का वध पृथ्वीराज को नहीं भूला। बदला लेने की इच्छा उसे सदा सताती रही। अवसर पाते ही वह भीमदेव पर चढ़ दौड़ा। घोर युद्ध हुआ जिसमें भीमदेव मारा गया और पृथ्वीराज की जय हुई।

(४५) विनयमङ्गल नाम प्रस्ताव—इस खंड में संयोगिता के पूर्व जन्म की कथा तथा जैचन्द के सोमवंशी राजा मुकुन्ददेव की कन्या से विवाह करने का वर्णन है। संयोगिता का जन्म ११३३ अनन्द संवत् में हुआ।

(४६) विनयमङ्गल—इस प्रस्ताव में संयोगिता के शैशवकाल की कथा तथा उसका मदनब्राह्मणी के यहाँ विनय की शिक्षा पाने का वृत्तान्त है।

(४७) सुक वर्णन—इस खंड में शुक-वेषधारी यक्ष का ब्राह्मण-रूप धारण कर पृथ्वीराज के पास जाने और संयोगिता के रूप गुण की कथा सुना कर उसके मन को लुब्ध करने का वर्णन है।

(४८) बालुकाराय प्रस्ताव—इस प्रस्ताव में जयचन्द के यज्ञ करने का वर्णन है।

जयचन्द ने पृथ्वीराज के पास यज्ञ में आने का निमन्त्रण दिया और दरवान का कार्य करने को कहा। पृथ्वीराज बड़ा ही क्रोधित हुआ और सेना सजा कर कन्नौज राज्य के स्थानों पर उसने आक्रमण कर दिया। जयचन्द का भाई सामने आया, पर मारा गया।

(४९) यज्ञयस विध्वंस वर्णन—जिस समय जयचन्द यज्ञ क्रिया में व्यस्त था, उसी समय बालुकाराय ने आकर पुकार की और दुखड़ा रो सुनाया। जयचन्द ने शीघ्र ही दिल्ली पर आक्रमण करने की तयारी कर दी।

(५०) संयोगिता नाम प्रस्ताव—पंग सेना ने दिल्ली पर चढ़ाई की, पर जय पृथ्वीराज की हुई। इसके अनन्तर जयचन्द ने संयोगिता का स्वयम्बर रचा। पर संयोगिता ने इसे स्वीकार नहीं किया। इस पर क्रुद्ध हो जयचन्द ने उसे गङ्गा के किनारे एक महल में एकान्तवास का दण्ड दिया।

(५१) हाँसीपुर प्रथम युद्ध—यह युद्ध शहाबुद्दीन की सेना में और पृथ्वीराज की सामन्तमण्डली में हुआ। अन्त में हाँसीपुर का किला सामन्तमण्डली के हाथ रहा।

(५२) द्वितीय हाँसी युद्ध—हार का हाल सुनने पर शाह ने चढ़ाई की तैयारी की। इधर पृथ्वीराज भी समरसिंह के साथ अपनी सेना सजा कर शाह से लड़ने पर उद्यत हुआ। दोनों ओर से विशेष उद्योग किया गया, पर शहाबुद्दीन हारा और पृथ्वीराज की जय हुई।

(५३) [illegible] [illegible] [illegible]—पृथ्वीराज ने हाँसीपुर का किला [illegible] को [illegible]

दिया। इस समय शहाबुद्दीन महुवा पर चढ़ाई की। पज्जून ने शाह सेना पर आक्रमण किया और उसे मार हटाया।

(५४) पज्जून पातिसाह युद्ध प्रस्ताव—महुवा की हार शहाबुद्दीन को बड़ी खली। उसने एक दिन भरी सभा में प्रतिज्ञा की कि पज्जून का खून पी लूंगा तब पाग बाँधूंगा। सेना सजा कर वह नागौर में चला आया। वहाँ से उसने पज्जून को कहला भेजा कि या तो किला छोड़ कर चले जाओ या मुझसे लड़ाई लो। पज्जून लड़ने पर उद्यत हुआ। लड़ाई में पज्जून की जीत हुई और शहाबुद्दीन कैदी हो गया। पीछे पृथ्वीराज ने उसे छोड़ दिया।

(५५) सामन्त पंग युद्ध प्रस्ताव—जब जयचन्द किसी प्रकार पृथ्वीराज को [illegible] वश न कर सका तब उसने यह नीति सोची कि पहिले समरसिंह से मैत्री कर के उसे अपनी ओर मिला लेना चाहिए पर समरसिंह ने यह स्वीकार नहीं किया। इस पर जयचन्द ने क्रुद्ध हो कर अपनी सेना के दो भाग किये। एक तो दिल्ली को भेजा, दूसरा चित्तौर को। दिल्ली को जो सेना गयी वह हार खा कर लौट आयी।

(५६) समर पंग युद्ध नाम प्रस्ताव—जो सेना भाग चित्तौर को गया उसके अनेक उद्योग करने पर भी समरसिंह वश में न हुए। अन्त में [illegible] जय हुई और पंग सेना उल्टी [illegible] को लौट आयी।

(५७) कैमास वध समर—पृथ्वीराज [illegible] [illegible] हुआ था। कैमास [illegible] में था। एक दिन संयोगवश [illegible]

की और कर्नाटकी वेश्या की आँखें चार हो गयीं। दोनों एक दूसरे पर लोलुप हो पड़े। यह समाचार रानी इंछनी ने पृथ्वीराज के पास भेज दिया। पृथ्वीराज छिपा छिपा दिल्ली आया और अपनी आँखों सब हाल देख कर उसे बड़ा क्रोध हुआ। उस समय एक तीर से उसने कैमास का काम तमाम किया। दासी महल से निकल भागी और जयचन्द के यहाँ चली गयी।

) दुर्गाकेदार समय—शहाबुद्दीन का दरबार-कवि केदार पृथ्वीराज के पास आया। उसने अपना कलाकौशल बहुत कुछ दिखाया जिसपर प्रसन्न हो पृथ्वीराज ने उसे बहुत कुछ इनाम दिया। केदार ने लौट कर शहाबुद्दीन को सब हाल सुनाया। उसने उसी समय चढ़ाई की तैयारी कर दी। इसका समाचार केदार ने अपने भाई के हाथ पृथ्वीराज के पास भेज दिया। पृथ्वीराज भी सचेत हो उठा। जब दोनों सेनाओं का सामना हुआ तो घोर युद्ध मचा। अन्त में शाह पकड़ा गया और पृथ्वीराज की जय हुई।

) दिल्ली वर्णन—इस खंड में दिल्ली की शोभा का तथा राजकुमार रेणसी की बाल क्रीड़ा का वर्णन है।

) जंगम कथा—इस प्रस्ताव में कन्नौज से एक जंगम के दिल्ली आने की कथा तथा उसके संयोगिता के स्वयम्बर का वृत्तान्त सुनाने का वर्णन है। पृथ्वीराज कन्नौज जाने को उद्यत हुआ। चन्द के बहुत समझाने पर उसने न माना।

) कनवज कथा—इस प्रस्ताव में पृथ्वीराज के भेष बदल कर कन्नौज जाने और वहाँ से संयोगिता को हर लाने की कथा है। इसका वर्णन प्रारम्भ में किया जा चुका है। यह प्रस्ताव बड़ा ही रोचक है।

(६२) शुकचरित्र—इस प्रस्ताव में एक तोते द्वारा रानी इंछनी के पृथ्वीराज और संयोगिता की क्रीड़ा का समस्त वृत्तान्त जानने की कथा है।

(६३) आखेटक शाप प्रस्ताव—इस प्रस्ताव में पृथ्वीराज के शिकार खेलने की कथा है। शिकार में खबर मिली कि एक सिंह निकला है, पृथ्वीराज उसके पीछे दौड़ा। उसे यह भ्रम हुआ कि सिंह एक गुफा में घुस गया। उसने उसके द्वार पर आग जलवा कर धुआँ करवाया। उस गुफा में एक तपस्वी तपस्या करता था। उसे बड़ा कष्ट पहुँचा। वह बाहर निकल आया और क्रोध में भर कर उसने शाप दिया कि तूने मेरे नेत्रों को कष्ट पहुँचाया है, अतः तेरा शत्रु तेरे दोनों नेत्र निकालेगा। चन्द के बहुत कुछ प्रार्थना करने पर ऋषि ने कह दिया कि पृथ्वीराज का शत्रु भी उसके हाथों मरेगा।

(६४) धीर पुंडीर प्रस्ताव—इस खण्ड में धीर पुंडीर के विशेष पराक्रम दिखाने तथा शहाबुद्दीन को [illegible] पकड़ने की कथा है। अन्त में पुंडीर धोखे में मार डाला गया।

(६५) विवाह समय—इसमें पृथ्वीराज के सब विवाहों का वर्णन है।

(६६) बड़ी लड़ाई समय—इस खण्ड में पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन के अन्तिम युद्ध का वर्णन है जिसमें पृथ्वीराज बन्दी हुआ और गज़नी में कैद किया गया।

(६७) बान बेध समय—इसमें पृथ्वीराज के बन्दी किये जाने तथा गज़नी में ले जाने

के कौशल से शब्दवेधी बाण चलाने और शहाबुद्दीन को मारने तथा चन्द और पृथ्वीराज के परस्पर एक दूसरे को मारने का वर्णन है।

(६८) राजा रैणसी नाम प्रस्ताव—इस खंड में रैणसी के गद्दी पर बैठने और शाका करने का वर्णन है।

(६९) महोबाखंड—इस खंड में पृथ्वीराज और परमर्दिदेव के युद्ध का वर्णन है। यह अंश संदिग्ध है तथा इसके चन्द रचित होने में सन्देह है, अतएव यह अन्त में रक्खा गया है।

यह पृथ्वीराज रासो का सारांश है। इसमें जिन जिन ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख है उन पर विचार करने से लेख के बहुत बढ़ जाने का भय है। काशी नागरीप्रचारिणी सभा की ओर से यह ग्रन्थ छप रहा है। आज कल 'बड़ी लड़ाई समय' छप रहा है। शेष तीन समयों के छप जाने पर इस ग्रन्थ की भूमिका में इन बातों पर सविस्तर विचार किया जायगा। इस लेख का उद्देश्य केवल दिग्दर्शन मात्र कराना है। अस्तु कवि चन्द ने अपने रासो के आदि पर्व में अपने पूर्व के कवियों का इस प्रकार वर्णन किया है—

प्रथमं भुजंगी सुधारी ग्रहणं।
जिने नाम एकं अनेकं कहनं॥
द्रिती लम्भयं देवतं जीवतेसं।
जिनें विश्व राख्यौ बली मंत्र सेसं॥
चर्व वेद बंभं हरी किति भाखी।
जिन धुम्म साधम्म संसार साखी॥
तृती भारती व्यास भारत्थ भाख्यौ।
जिनें उत्त पारत्थ सारत्थ साख्यौ॥
चवं सुक्खदेवं परीक्खत पावं।
जिनें उद्धर्यौ अग्ग कुरवंस रावं॥

नरं रूप पंचम्म श्रीहर्ष सारं।
नलै राय कंठं दिने पद्ध हारं।
छट्टं कालिदासं सुभाषा सुबद्धं।
जिनें बागवानी सुवानी सुवद्धं।
कियो कालिका मुक्ख वासं सुसुद्धं।
जिनें सेत बंध्योति भोज प्रबंधं॥
सतं डंडमाली उलाली कवित्तं।
जिनें बुद्धि तारङ्ग गङ्गा सरित्तं॥
जयदेव अट्ठं कवी कब्बिरायं।
जिनें केवलं किति गोविन्द गायं॥
गुरुं सब्ब कब्बी लहू चंद कब्बी।
जिनें दर्सियं देवि सा अंग हब्बी॥
कवी किति कित्ती उकत्ती सुदिक्खी।
तिन की उचिष्टी कवी चंद भक्खी॥

इस प्रकार कवि चन्द अपनी दीनता दिखाता हुआ कहता है कि मेरे पूर्व जो कविगुरु हो गये हैं उन्हींकी उक्ति को मैं पुनः कहता हूँ। वह कहता है—

कहाँ लगि लघुता बरनवौं,
कविन-दास कवि चन्द।
उन कहि ते जो उब्बरी,
सो व कहौं करि छन्द॥
सरस काव्य रचना रचौं,
खल जन सुनि न हसंत।
जैसे सिंधुर देखि मग,
स्वान सुभाव भुसंत॥

आगे चल कर कवि अपने काव्य के विषय में यह लिखता है—

आसा महीव कव्वी,
नव नव कित्तीयं संग्रहं ग्रंथं॥
सागर सरिस तरङ्गी,
बोहथ्थयं उक्तियं चलयं॥
काव्य समुद कवि चन्द कृत,
मुगति समप्पन ग्यान।
राजनीति बोहिथ सुफल,
पार उतारन यान॥

छंद प्रबन्ध कवित्त जति,
साटक गाह दुहथ्य।
लहु गुरु मंडित खंडि यहि,
पिंगल अमर भरथ्थ ॥
अनि ढंक्यौ न उधार,
सलिल जिमि सिप्पि सिवालह।
वरन वरन सोभंत।
हार चतु रंग विसालह ॥
विमल अमल बानी विसाल,
वयन बानी बर ग्रनन।
उक्ति वयन विनोद,
मोद थी तन मन हर्नन ॥
युत अयुत जुक्ति विचार विधि,
वयन छंद छुट्यौ न कह।
घटि बढ़ि मति कोऊ पढ़ह,
तौ चंद दोस दिज्जौ न वह ॥

[illegible] धर्म विशालस्य, राजनीति नवं रसं।
[illegible]भाषा पुराणं च, कुरानं कथितं मया ॥

[illegible]वि चंद अपने ग्रन्थ की काव्यसंख्या यों
[illegible]ता है—

सत सहस नष सिष सरस
सकल आदि मुनि दिष्य।
घट बढ़ मत कोऊ पढ़ौ,
मोहि दूसन न वसिष्य।

अपने महाकाव्य का सारांश चंद एक स्थान
[illegible] इस प्रकार देता है—

[illegible]नव कुल छत्रीय, नाम ढूढा रष्यस वर।
[illegible]हिं सु जोन पृथिराज, सूर सामंत अस्ति भर ॥
[illegible]ह जोनि कवि चंद, रूप संजोगि भोगि भ्रम।
[illegible] दीह अप्रम, इक्क दीहै समाय भ्रम ॥
[illegible]य कथ्य होइ निर्मये, जोग भोग राजन लहिय।
[illegible]जह बाहु अरिदलमलन, तासु किति चंदह
कहिय ॥

प्रथम राज चहुआन पिथ्थवर।
राजथान रंजे जगल धर ॥
गुष सू भट्ट सूर सामंत दर।
जिहि बंधो सुर तान प्रान भर ॥
हूं कवि चन्द मित्त सेवह पर।
अरु मुहित सामंत सूर वर ॥
बंधौं किति पुसार सार सह।
अप्पौं वरनि भंति थिति थह ॥

जैसा कि आगे लिखा जा चुका है चन्द ने दो विवाह किये थे। इनमें से पहिली स्त्री का नाम कमला उपनाम मेवा, और दूसरी का गौरी उपनाम राजोरा था। चन्द रासो की कथा अपनी स्त्री गौरी से कहता है। चन्द की ग्यारह सन्तति हुई, दस लड़के और एक लड़की। कन्या का नाम रागबाई था। रासो के बान-बेध समय में चन्द के लड़कों के नाम इस प्रकार दिये हैं—

देहति पुत्र कवि चन्द,
"सूर" "सुन्दर" "सुज्जानं"।
"जल्ह" "वल्ह" "वलिभद्र",
कविय "केहरि" वष्षानं ॥
"वीरचन्द" "अवधूत"
दसम नन्दन "गुनराजं"।
अप्प अप्प कुम जोग,
बुद्धि भिन भिन करि काजं ॥
जतहन जिहाज गुनसाज कवि,
चंद छंद सायर तिरन।
अप्पौ जिहत्त रासौ सरस,
चल्यौ अप्प रज्जन सरन ॥

यह विदित नहीं है कि किस स्त्री से कौन सन्तति हुई थी और 'जल्ह' को छोड़ कर अन्य किसीके विषय में भी कुछ ज्ञात नहीं है। 'जल्ह' के विषय में तीन सूचनाएँ रासो में मिलता हैं, जो इस प्रकार हैं—

(१) पृथ्वीराज के पुत्र का नाम रैणसी था। रासो के "दिल्ली वर्णन प्रस्ताव" में रैणसी की बालक्रीड़ा का वर्णन है। वहीं पर उन सामन्त पुत्रों के नाम भी दिये हैं जो राज-कुमार के संग खेल कूद में सम्मिलित रहते थे।

उस वर्णन में जल्ह के विषय में यह लिखा है—

"बरदाइ सुतन जल्हन कुमार।
गुन्न यस देवि अम्बिका सार" ॥

(२) दूसरा वर्णन जल्ह के विषय में उस स्थान पर है जहाँ पृथ्वीराज की बहिन पृथाबाई के विवाह की कथा है। रासो के अनुसार पृथाबाई का विवाह चित्तौर के रावल समरसिंह के संग हुआ था। कवि वर्णन करता है कि अन्य तीन लोगों के साथ जल्ह भी दहेज में दिया गया था। 'पृथा विवाह समय' में यह लिखा है—

"श्रीपत साह सुजान देश दम्भह संग दिन्नो।
अरु प्रोहित गुरराय ताहि आग्या नृप किन्नो।
रिषीकेस दिय ब्रह्म ताहि धनंतर पद सोहै।
चन्द सुतन कवि जल्ह असुर सुर नर मन मोहै।

कवि चन्द कहै बरदाय बर
फिर सुराज अग्या करिय।
करि जोर कह्यो पीथल नृपति
तब रावर सत भाँवर फिरिय ॥"

समरसिंह का रासो में अनेक स्थानों पर वर्णन है। जयचन्द ने इन्हें अपनी ओर मिलाने का उद्योग किया था, पर वे सदा पृथ्वीराज का साथ देते रहे और अन्त में शहाबुद्दीन के साथ पृथ्वीराज के अन्तिम युद्ध में मारे गये। उस समय पृथाबाई उनके शरीर के साथ सती हुई। सती होने के पहिले उन्होंने अपने पुत्र को एक पत्र लिखा था जिसमें सूचना दी थी कि श्री हजूर समर में मारे गये और उनके संग रिषीकेस जी भी वैकुण्ठ को पधारे हैं। रिषीकेस जी उन चार लोगों में से हैं जो दिल्ली से मेरे संग-दहेज में आये थे, इसलिए इनके वंशजों की खातिरी रखना। "ने पाछे मारा क्यारी गर्रा का मनषां की पात्री राष जो। ई मारा जीव का चाकर है जो थासु फदी हरामषोर नीवेगा।" यह पत्र माघ सुदी १२ अनन्द विक्रम संवत् ११५१ (१२४८) का लिखा है। यह पत्र समान माना जाता था, इसलिए पुराना हो गया तो संवत् १७११ में के महाराणा जयसिंह ने इसे पुनः [illegible] अपनी सही कर दी। नये परवाने में ऊप[illegible] वाक्यों को उद्धृत करके यह लिखा है— लप्यो हो जो देवेन नवी करा देवाणो जो अणी राज का स्यामघोर हो।" अतएव [illegible] स्पष्ट है कि जल्ह दहेज में चित्तौर को दिया ग[illegible] था और वहाँ इसको प्रतिष्ठा प्राप्त हुई थी। कहा जाता है कि मेवाड़ राज्य का "राजौरा-राय[illegible] वंश जल्ह से ही प्रारम्भ होता है।

(३) तीसरा उल्लेख जल्ह का उस स[illegible] पर है जब अन्तिम लड़ाई हो चुकी है [illegible] पृथ्वीराज शहाबुद्दीन के बन्दी हो गये हैं [illegible] अपने सखा तथा राजा के पकड़ जाने पर चन्द को बड़ा दुःख हुआ। उसने अपने राजा के पास जाने की ठानी। उसकी स्त्री ने बहुत समझाया, पर चन्द ने एक भी किस[illegible] न सुनी। इस स्थान पर रासो में जो [illegible] पत्नी का सम्भाषण दिया है, वह बड़ा ही मन[illegible] हर तथा उत्साहवर्धक है। अन्त में यह लिखा है—

उत्तर जानि त्रिया पय लग्गी।
तुम पिय नाद अनाहद जग्गी ॥
जोग जुगति उद्धारन सामं।
दो दो गतह सरै किम कामं ॥

(चन्द वाक्य)

सकल जोग सांइ सुभम, तप जप सांई धम्म।
मोहियुगतिसूझतंमरम, सुजस किन्तिगुन क्रम्म।
दिवस रयन राजन सुमति, अरु गज्जनवै रोस।
मन बच क्रम एकंगय, सांमि उधारौं दोस।
उभय सत्त नवरस त्रिगुन, क्रिय पूरन गुन तत्त।
रासौ नाम, उदद्धि जुति, गहौ मत्ति मैं सत्ति।
इस प्रकार कवि कहता है [illegible]

ो का उद्धार न कर लूँगा मुझे चैन नहीं
ा। मैंने उसकी कीर्त्ति लिख ली है, वह
र के समान है। इस कीर्त्तिरूपी रासो
चन्द ने जल्ह को सौंप कर सब बातें
ा दीं और आप ग़ज़नी की राह ली।

पुत्र कवि चन्द के, सुन्दर रूप सुजान।
जल्ह गुन बावरो, गुन समन्द ससि भान॥
अन्त लगि वृत्त मन, अग्नि गुनी गुन राज।
क जल्हन हथ्थ दे, चलि गज्जन नृप काज॥

ाजा रैणसी समय' में लिखा है—

वेद उद्धार, बम्भ मच्छहत्तन किन्नो।
र धरि वाराह, धरनि उद्धरि जस लिन्नो॥
रक नभदेस, धरम उद्धरि सुर सप्पिय।
सूर नरेस, हिन्द हद उद्धरि रप्पिय॥

रघुनाथ चरित हनुमन्त क्रित,
भूप भोज उद्धरिय जिम।
प्रथिराज सुजस कविचन्द क्रित,
चंद नंद उद्धरिय इम॥

न बातों से स्पष्ट है कि जिस प्रकार काद-
ी के रचयिता बाणभट्ट के अधूरे काम को
के पुत्र ने अंशतः पूर्ण किया, उसी प्रकार हिन्दी
ादि काव्य को चन्द पूरा नहीं कर सका।
मम लड़ाई के अनन्तर उसको अपने प्यारे
के उद्धार की उत्कण्ठा ने अव्यवस्थित कर
ा था और उसी ओर वह अपने चित्त को
ये हुए था, पर साथही उसे भय था
कहीं इस उद्योग में मेरा शरीरपात हो
तो मेरे साथ ही मेरे राजा की कीर्त्ति का
लोप हो जायगा। इसलिए उसने सब
को "उभय सत नव रस त्रिगुन" दिनों
ा करके अपने पुत्र जल्ह के हवाले किया।
ह भी लिखता है कि जिस प्रकार हनुमन्त-
रघुनाथ-चरित का भोजराज ने उद्धार
ा था उसी प्रकार कवि चन्द-कृत पृथ्वी-
सुजस का चन्द के पुत्र (जल्ह) ने उद्धार
ा। इन बातों से यह स्पष्ट है कि पृथ्वी-
राज रासो का संस्कार, उसका क्रम आदि सब
जल्ह की कृति है। साथ ही यह भी निश्चय
है कि बड़ी लड़ाई के अनन्तर की कथा अर्थात्
बानवेध समय और रैणसी समय तो पूर्णतया
उसीकी रचना है तथा बड़ी लड़ाई का कम से
कम अन्तिम भाग उसका लिखा है।

जल्ह की कविता के विषय में इतना ही
कहना यथेष्ट होगा कि चन्द का यह प्रिय पुत्र
था और निस्सन्देह कवित्व-शक्ति में अपने पिता
का वात्सल्यभाजन था। चन्द ने स्वयं
लिखा है कि इसके "मुख बसै देवि अम्बिका
सार"। जल्ह की कविता में वह प्रौढ़ता और
गम्भीरता नहीं पायी जाती जो चन्द की रचना
में पद पद पर मिलती है और न उसका वर्णन
अपने पिता के समान उत्साहवर्धक ही है।
नीचे जल्ह की कविता के कुछ चुने हुए उदा-
हरण दिये जाते हैं। यदि मेवाड़ के 'राजोरा-
राय-वंश' के इतिहास की विशेष छानबीन की
जाय तो कदाचित् उसके आदि पुरुष जल्ह
के विषय में अनेक नवीन बातें ज्ञात हो
सकें।

जल्ह पृथ्वीराज की शब्दवेधी बाणविद्या
की प्रशंसा करता हुआ यह कहता है—

नयन बिना नरघात, कहौ ऐसी कहु किद्धौ।
हिन्दू तुरक अनेक, हुए पै सिद्ध न सिद्धौ॥
धनि साहस धनि हथ्थ, धनि जस बासनि पायौ।
ज्यौं तरु छुट्टै पत्र, उड्डत आप सत्तियौ कायौ॥
दिष्षै सुसथ्थ यौं साहबो, मनु नक्षिन नभतें टरयौ।
गोरी नरिंद कविचन्द कहि, आय धरणि रह रह करयौ॥

मृत्यु पर पृथ्वीराज का वर्णन करता हुआ
कवि कहता है—

पर्यौ संभरी राइ दीसै उतंगा।
मनों मेर बज्जी दियं शृंग भंगा॥
जिनै बार बारं सुरत्तान मारौ।
जिनै भोज के भीम चालुक्क मारौ॥

जिनैं भंजि मैवान पै वार पन्यौ ।
जिनैं नादरं राइ गिरिनार मंध्यौ ॥
जिनैं भंजि थट्टा सुकट्टयौ निकंदं ।
जिनैं भंजि महिपाल रिनथंभ बंदं ॥
जिनैं जीति जद्दौं ससी मत्त मानी ।
जिनैं भज्जि कमधज्ज रप्पौं जुगानी ॥
जिन भंजि पंडा सुउज्जन मांही ।
परमार भीमंग पुत्री विवाही ॥
जिनैं दौरि कनवज्ज साहाय कीयौ ।
जिनैं कंगुरा लेय हम्मीर दीयौ ॥
जिनैं पीलि कज्ज बालका पेत ढाह्यौ ।
जिनैं गाहिरा पंग संजोग लायौ ॥
भए राइ राजा अनेकं सुथानं ।
किनैं सत्त के सथ्थ सुघ्यो न थानं ॥
इनैं संभरी राइ साहाय संध्यौ ।
उभै दीन जासं पराक्रम्म पंध्यौ ॥
सबं देवदूरं पुहप्पं वधारा ।
सुरं जोति जोतिं सजोती समारा ॥
तिनकी उपम्मा कवी चंद भाषी ।
मिले हंस हंसं रवी चन्द साषी ॥

जल्ह रासो की कथा समाप्त करके उसका माहात्म्य इस प्रकार वर्णन करता है—

नव रस विलास रासौ विराज ।
एकेक भाषा अनेक काज ॥
सो सुनय विविध रासौ विवेक ।
गुन अनंत सिद्धि पावहिं अनेक ॥
सूरतदान विग्यान मान ।
नाटक गेय विद्या विनान ॥
चातुरी भेद वचनह विलास ।
गति गरम नरम रस हास रास ॥
गति साम दाम भर दंड भेद ।
सब काम धाम निव्रान वेद ॥
बाचंन कवित्त काव्य गोप ।
थर विनय विद्धि बुझभय सदोष ॥
विधि सस्त्र सार रिम वहन भार ।
गति मान दान निरवान कार ॥
चौ वरन धरम कारन विवेक ।
रस भाव भेय विग्यान नेक ॥

नन्द परदाई ।

पौरान सकल कथ अथ्थ
भारथ्थ अथ्थ वेवर्न लाय ॥
कलि काव्य रस्स माहा सरं
पंपनिय छंद घुमके सुजंग ॥
निर्ब्रंक दान विचार सार ।
गति थाम थाम रति रंग भार ॥
नय सपत कला विचार वेद ।
विग्यान थान चौरासि भेद ॥
गति पंत्र अरथ विग्यान मान ।
उप्पमा जेन मनि अंग थान ॥
रितु रस रसानि वेलास गति ।
मंतन सुमंत आभास अत्ति ॥
भोगवन पहु मिति विचार विद्धि ।
अरु इष्ट देव उप्पाय सिद्धि ॥
गंध्रब्ब कला संगीत सार ।
पिङ्गलह भेद लघु गुरु प्रचार ॥
पिता मात पति परिचरन भेय ।
राजंग राज राजंत जेय ॥
परब्रह्म ध्यान उद्धार सार ।
विधि भगति विस्व तारन पार ।
आधुनह वेद हय गय विनान ।
ग्रह गति मति जोतिग थान ॥
कलि सार सार बुभकहि विचार ।
संभलहि भूप रासौ प्रचार ॥
पावहि सु अरथ अरु ध्रम्म काम ।
निरमान मोष पावहि सुधाम ॥

यह वृत्तान्त चन्द और उसके पुत्र जल्ह का है। वास्तव में ऐसा अपूर्व ग्रन्थ हिन्दी में दूसरा नहीं है। इस ग्रन्थ पर, जैसा कि अ[illegible] लिखा जा चुका है, बहुत कुछ आक्षेप हुए हैं। पहिले विचारने की बात यह है कि यह ग्रन्थ बहुत पुराना है, यहाँ तक कि इसके पहिले का कोई ग्रन्थ हिन्दी में मिलता ही नहीं। दूसरे इसका राजपुताने में बहुत कुछ प्रचार रहा है, यहाँ तक कि अनेक राज्यों का इतिहास इसी के आधार पर बना है। जिस पर यह काव्य

ग्रन्थ है। अतएव इसमें अन्योक्ति का होना सम्भव ही नहीं वरन आवश्यक भी है। इस अवस्था में जो लोग यह आशा करते हैं कि चन्द के ग्रन्थ को हम केवल निरे इतिहास ग्रन्थ की दृष्टि से जाँचें वे भूल करते हैं। निस्सन्देह इसमें ऐतिहासिक बातें भरी पड़ी हैं पर यह इतिहास ग्रन्थ नहीं है, यह एक महाकाव्य है। अतएव इस पर विचार करते समय दोनों—इतिहास और काव्य—के लक्षणों पर ध्यान देकर तब इस पर अपना मत प्रकाशित करना चाहिए। इसके अतिरिक्त इसकी आदि प्रति हमें प्राप्त नहीं है और न उसके प्राप्त होने की आशा ही है। जो प्रतियाँ इस समय प्राप्त हैं वे न जाने कितनी प्रतिलिपियों के बाद लिखी गई हैं। जिन्होंने गोस्वामी तुलसीदास जी के रामचरित मानस को देखा और उसकी प्राचीन प्रतियों को आधुनिक छपी प्रतियों से मिलाया होगा उन्होंने पाया होगा कि तुलसीदास की असल रामायण में और आज कल की छपी रामायणों में आकाश पाताल का अन्तर है। केवल शब्दों ही का परिवर्तन नहीं है वरन क्षेपकों की यहाँ तक भरमार हुई है कि सात के स्थान पर आठ काण्ड हो गये हैं*। जब तुलसीकृत रामायण जैसे सर्वमान्य, सर्व-प्रचलित और सर्व-प्रसिद्ध ग्रन्थ की यह अवस्था हो सकती है तो इसमें आश्चर्य ही क्या है कि चन्द के महाकाव्य में भी क्षेपक भर गये हों और वह हमें आज आदि रूप में प्राप्त न हो। आशा है कि समय पाकर और प्रतियों के मिलने पर इस का बहुत कुछ निर्णय हो सके, परन्तु जब तक यह न हो तब तक जो प्रतियां इस समय प्राप्त हैं उनके आधार पर इसको प्रकाशित करना और इसका रसास्वादन करना कदापि अनुचित नहीं है।

एक बड़ा भारी आक्षेप इस ग्रन्थ पर यह लगाया जाता है कि इसमें जितने संवत् दिये हैं वे सब झूठे हैं। पृथ्वीराज का राजत्व-काल तीन मुख्य घटनाओं के लिए प्रसिद्ध है (१) पृथ्वीराज और जयचन्द का युद्ध, (२) कालिञ्जर के परमर्द्दि देव की पराजय, और (३) शहाबुद्दीन और पृथ्वीराज का युद्ध जिसमें पृथ्वीराज बन्दी बने और अन्त में मारे गये। इस स्थान पर यह उचित होगा कि पृथ्वीराज, जयचन्द, परमर्दिदेव और शहाबुद्दीन का समय ठीक ठीक जान लिया जाय और इस बात का निर्णय दानपत्रों तथा शिलालेखों से हो तो अति उत्तम है, क्योंकि इनसे बढ़ कर दूसरा कोई विश्वासदायक मार्ग इस बात के जानने का नहीं है।

अब तक ऐसे चार दानपत्रों और शिला-लेखों का पता लगता है जिन पर पृथ्वीराज का नाम पाया जाता है। इनका समय विक्रम संवत १२२४ और १२४४ के बीच का है।

जयचन्द के सम्बन्ध में १२ दानपत्रों का पता लगा है। इनमें से दो पर, जो विक्रम संवत १२२४ और १२२५ के हैं, इसे युवराज करके लिखा है। शेष १० पर 'महाराजाधिराज जयचन्द' यह नाम लिखा है। इनका समय विक्रम सम्वत् १२२६ से १२४३ के बीच में है।

कालिञ्जर में राजा परमर्द्दिदेवके, जिनको पृथ्वीराज ने पराजित किया था, ६ दानपत्र और शिलालेख वर्तमान हैं, जिनका समय विक्रम संवत १२२३ से १२५८ तक है। इनमें से एक पर जो विक्रम संवत १२३९ का है पृथ्वीराज और परमर्दिदेव के युद्ध का वर्णन है।

शहाबुद्दीन मुहम्मद ग़ोरी का समय फ़ारसी

* यह आनन्द की बात है कि काशी नागरी-प्रचारिणी सभा और इंडियन प्रेस के उद्योग से इस ग्रंथ का एक शुद्ध संस्करण प्रकाशित हो गया है।

इतिहासों से भिन्न हैं और उसमें विषय में किसीका मतभेद नहीं है। मेजर रेवर्टी 'तबक़ाते नासरी' के अनुवाद के ४५६ पृष्ठ में लिखते हैं कि ५८७ हिजरी (सन् ११९० ई०) में उन सब ग्रन्थकारों के अनुसार जिनसे मैं उद्धृत कर रहा हूँ तथा अन्य अनेक ग्रन्थकारों के अनुसार, जिनमें इस ग्रन्थ का कर्त्ता भी सम्मिलित है, राय पिथौरा के साथ शहाबुद्दीन मुहम्मद ग़ोरी का पहिला युद्ध हुआ और उस का दूसरा युद्ध जिसमें राय पिथौरा पराजित हुआ और मुसलमान लेखकों के अनुसार मारा गया, निस्सन्देह हिजरी सन् ५८८ (११९१ ई०=वि० सं० १२४८) में हुआ।

ऊपर जिन सन् संवतों का वर्णन किया जा चुका है वे पृथ्वीराज, जयचन्द और परमर्दि देव के दानपत्रों तथा शिलालेखों से लिये गये हैं और एक दूसरे को शुद्ध और प्रामाणिक सिद्ध करते हैं। निदान इन सबसे यह सिद्धान्त निकलता है कि पृथ्वीराज विक्रमीय तेरहवीं शताब्दी के प्रथमार्द्ध और ईसवी बारहवीं शताब्दी के द्वितीयार्द्ध में वर्त्तमान था और उसका अन्तिम युद्ध वि० संवत् १२४८ (ई० ११९१) में हुआ।

जिन शिलालेखों का ऊपर उल्लेख है उनके अतिरिक्त अर्णोराज और सोमे भी शिलालेख और दानपत्र मिलते ऊपर दिये हुए सन संवतों की प्रामाणि और ऐतिहासिक सत्यता को सिद्ध करते हैं

अब हम रासो के सन् संवतों पर वि करेंगे। चार भिन्न भिन्न संवतों पर विचार करने से यह स्पष्ट विदित हो जायगा कि वे अन्य इतिहासों में दिये हुए संवतों से ९० तक मिलते हैं। चन्द ने पृथ्वीराज का जन्म काल संवत् ११९५ में, दिल्ली गोद जाना ११२२ में, कन्नौज जाना ११५१ में और शहाबुद्दीन साथ युद्ध ११५८ में लिखा है। 'तबक़ा नासरी' में अन्तिम युद्ध का समय जिसमें पृथ्वी राज पराजित हुआ और बन्दी बनाया गया, ५८८ हिजरी (१२४८ वि०) दिया है। यदि १२४८ में से ११५८ घटा दिया जाय तो ९० बाक़ी बचता है। इसके अतिरिक्त इन चार भिन्न भिन्न अवसरों पर पृथ्वीराज के वयःक्रम का हम ध्यान करें तो यह सिद्ध होता है कि कथित घटनाएँ १२०५, १२१२, १२४१ और १२४८ में हुईं, न कि १११५, ११२२, ११५१ और ११५८ में, जैसा कि रासो में दिया है। यह भेद नीचे दिये हुए कोष्टक से स्पष्ट हो जायगा।

घटनाएँ	रासो के संवत्	पृथ्वीराज का उस समय वय	अन्य पुस्तकों का संवत्	अन्तर,
जन्म	१११५-१६	०	१२०५-०६	९०-९१
गोद जाना	११२२-२३	७	१२१२-१३	९०-९१
कन्नौज गमन	११५१-५२	३६	१२४१-४२	९०-९१
अन्तिम युद्ध	११५८-५९	४३	१२४८-४९	९०-९१

अब यदि प्रत्येक घटना के संवत् में पृथ्वीराज के जीवन के शेष वर्ष जोड़ दिये जांय तो य का समय १२४८ हो जाता है। जो कुछ पर लिखा जा चुका है उससे स्पष्ट है कि द ने अपने ग्रन्थ में ९०—९१ वर्ष की भूल की है। परन्तु सब स्थानों में समभेद का रहना भूल की गिनती में नहीं आ सकता। चन्द ने ९०—९१ वर्ष का अन्तर अपने ग्रन्थ में वर्णित घटनाओं में क्यों रक्खा इसका कोई उपयुक्त कारण अवश्य होगा।

हिन्दी हस्तलिखित पुस्तकों की प्रथम वार्षिक रिपोर्ट (सन् १९०० ई०) में मैंने कुछ पट्टों और परवानों के फ़ोटो दिये हैं जिनका सम्बन्ध ऊपर कही हुई घटनाओं से है। ये पट्टे ११३५ से ११५७ के बीच के लिखे हुए हैं। इनसे ये बातें प्रकट होती हैं—

(१) ऋषीकेश कोई बड़ा वैद्य था जिसका बहुत ही घनिष्ट सम्बन्ध मेवाड़ और दिल्ली के राज घरानों से था और जो पृथा बाई के विवाह समय चित्तौर के रावल समरसिंह जी को दहेज में दिया गया था। यह घटना इन परवानों के अनुसार संवत् ११४५ में हुई। महारानी पृथाबाई ने जो अन्तिम पत्र अपने पुत्र को लिखा था उसमें उन चार घरानों का उल्लेख था जो उनके साथ दिल्ली से आये थे और जिन्हें सम्मानपूर्वक रखने के लिए उसने अपने पुत्र को आदेश किया था। रासो के पृथा-विवाह समय के एक पद* से जो ऊपर दिया जा चुका है यह कथा स्पष्ट हो जाती है।

इस पद से प्रकट होता है कि जिन घरों का वर्णन पृथाबाई ने अपने पत्र में किया है उनके विषय में चन्द का कथन है कि वे दहेज में रावल समरसिंह को दिये गये थे। श्रीपत साह देपुरा महाजनवंश का, गुरुराम प्रोहित सनाढ्य ब्राह्मणों का, ऋषीकेश अचारज (दायमा) ब्राह्मणों का और चन्द का पुत्र जल्ह राजोरराय वंश का आदि पुरुष था। ये चारों लोग पृथाबाई के साथ चित्तौर गये थे और अब तक इनके वंशजों की मेवाड़ दर्बार में विशेष प्रतिष्ठा है।

(२) पृथ्वीराज का अन्तिम युद्ध जिसमें रावल समरसिंह मारे गये, संवत् ११५७ के माघ शुक्ल पक्ष में हुआ था जो समय चन्द के दिए हुए समय से मिलता है।

(३) कविराजा श्यामलदास जी और उनके अनुयायी लोगों के न मानने पर भी यह बात सिद्ध है कि पृथाबाई का विवाह समरसिंह के साथ हुआ। जो वंशवृत्त मेवाड़ वंश का उस दर्बार से प्रकट किया जाता है वह ठीक नहीं माना जा सकता। मुहम्मद अबदुल्ला लिखित "तारीख़ तुहफ़ै राजस्थान" में, जो मेवाड़ दर्बार की ओर से छापी गई थी और जिसे स्वयं महाराणा जी तथा कविराजा श्यामलदास जी ने सुना और स्वीकार किया था, उदयपुरवंश की नामावली दी हुई है जिसमें से दो नाम जान बूझ कर निकाल दिए गए हैं—एक तो उदयसिंह का और दूसरा वनवीर का, यद्यपि आगे चल कर यह लिखा गया है कि ये दोनों उदयपुर की गद्दी पर बैठे थे। इस स्पष्ट पूर्वापर विरोध का कारण भी खोजने पर उसी ग्रन्थ से मिल जाता है। उसमें लिखा है कि इन दोनों में से एक तो दासी पुत्र था और दूसरे ने अपनी कन्या को एक मुसलमान को देने को कहा था। अतएव एक ऐसे वंश ने जो बहुत दिनों से राजपूताने की अन्य वंशों में प्रसिद्ध तथा श्रेष्ठ चला आता है, यह उचित न समझा कि ऐसे दो नाम उसके वंश में बने रहें जिनके कारण उसके निर्मल यश में कलङ्क लगता हो। बस, फिर क्या था, दोनों नाम वंशावली में से अलग कर दिये गये। यद्यपि वंश गौरव के विचार से यह कार्य किसी प्रकार प्रशंसनीय माना जा सकता है, पर इतिहास के लिए इससे बढ़कर दूसरा कोई घोर पाप नहीं हो सकता। इस बात से स्पष्ट है कि जो वंश इस प्रकार का कार्य कर सकता है वह यदि इस बात को माने कि पृथाबाई का विवाह समरसिंह के साथ हुआ ही नहीं और समरसिंह पृथ्वीराज की पताका के आधीन होकर न लड़े और न मारे गये, तो इतिहासवेत्तागण उन पट्टों और परवानों पर जिनका ऊपर उल्लेख हो चुका है

* दोहा चाह सुन न देउ पन्नद संग दिल्ली-श्वर है।

ध्यान देकर स्वयं विचार और न्याय कर सकते हैं कि यह बात कहाँ तक सत्य मानी जा सकती है।

इस सम्बन्ध में एक ऐतिहासिक घटना ऐसी है जिस पर विचार कर लेना आवश्यक है। यदि समरसिंह पृथ्वीराज के समकालीन थे तो उनके पुत्र रतनसी का युद्ध अलाउद्दीन ख़िलजी के साथ १३०२-३ ई० में कैसे हुआ? सादड़ी में जैनी शिलालेख में जिस पर १४९६ विक्रम संवत् खुदा है और जो राणा कुम्भाकरण के राजत्वकाल का है, बाप्पा रावल से लेकर कुम्भाकरण तक राजाओं की नामावली दी है। उसमें लिखा है कि भुवनसिंह ने जिसका नाम समरसिंह के पीछे दिया है अलाउद्दीन को हराया। 'तुहफ़ै राजस्थान' में जो नामावली दी है उस में समरसिंह और भुवनसिंह के बीच में ९ राजाओं के नाम और दिये हैं, वे ये हैं समरसी, रतनसी, करनसी, राहुत, नरपत, दिनकर, जसकरण, नागपाल, पूर्णपाल, पृथ्वीपाल, भुवनसिंह। भुवनसिंह के पीछे भीमसिंह प्रथम, जयसिंह प्रथम और लक्ष्मणसिंह ये तीन नाम दिए हैं। कर्नल टाड लिखते हैं कि राहुल से लक्ष्मणसिंह के बीच में ९ राजे चित्तौर की गद्दी पर बैठे और थोड़े थोड़े दिनों तक राज करके स्वर्गधाम को सिधारे। इन ९ राजाओं में से ६ लड़ाई में मारे गये! इन सबों ने गया को मुसल्मानों से रक्षित रखने के लिए अपने प्राण दिये। पृथ्वीराज ने इन मुसल्मानों को हरा दिया और अलाउद्दीन के पूर्व तक वे अपने अपने कर्म से पराङ्मुख रहे। अब इससे भुवनसिंह का समय १२०० ई० के लग भग होता है और लक्ष्मणसिंह का उससे कुछ पीछे। इससे यह स्पष्ट प्रकट होता है कि यह रतनसी नहीं था जिसकी स्त्री प्रसिद्ध सुन्दरी पद्मावती के लिए अलाउद्दीन ने चित्तौर का नाश किया,

वरन वह लक्ष्मणसिंह था जिसका ... तक इस सम्बन्ध में प्रचलित चला आया। कविराजा श्यामलदास जी जिस शिलालेख से अपना पक्ष समर्थन करने के लिए उ... करते हैं, वह ठीक नहीं माना जा सकता। पण्डित मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या उसकी पोल भली भाँति खोल चुके हैं। इन लि... लेखों पर पूर्णतया विश्वास कदापि नहीं कि... जा सकता जब तक उनके फ़ोटो न छापे ... क्योंकि ऐसा कहा जाता है कि किसी ... पक्षपाती ने उनमें २ के स्थल पर ३ बना दि... है।

(४) पृथ्वीराज के परवानों पर जो संवत् है उससे उसके सिहांसन पर बैठने का स... ११२२ विदित होता है। यह भी चन्द के दिए हुए समय से मिलता है। रासो ... किसी दान समय में लिखा है—

एकादस संवतः अट्ठ अग्ग हत तीस भने।
क्रय सुरित तहाँ हेम सुद्ध मगसिर सुमास...
सेत पक्ख पञ्चमीय सकल गुर पूरन।
सुदि मृगसिर सम इन्दु जोग सदहि सिध पू...
पहु अनगपाल अधिपहुनि पुत्तिय पुत्त ...
धुन्धा सुमोह सुरन तन परनि पत्ती पद्री ...

तो अब चन्द के अनुसार अनङ्गपाल ने ... सिंहासन अपने दौहित्र को शुद्ध मन से ११... ११२२ की मार्गशीर्ष सुदी ५ को दिया। इस... यह सम्भव है कि पृथ्वीराज गद्दी पर बैठा हो... ३ संवत् ११२२ को बैठा हो।

इन परवानों और पट्टों की सत्यता में कि... प्रकार का सन्देह नहीं किया जा सकता, क्यों... वे एक दूसरे की सत्यता को प्रमाणित करते... कुछ फ़ारसी शब्दों के प्रयोग से सन्देह ... सकता है, पर यह जान लेने से सन्देह ... कारण दूर हो जाता है कि पृथ्वीराज ... से पहिले भी जहाँ एक ऐसा मुसल्मान ... राजाओं की सेना रहती थी और जहाँ ...

के मुसलमानी दर्बार से दूतों का आना जाना सदा लगा रहता था, क्योंकि दोनों राज्यों की सीमा मिली हुई थी और पृथ्वीराज के १०० वर्ष पहिले से मुसलमानी राज्य पञ्जाब में स्थापित हो चुका था। इस अवस्था में क्या यह आश्चर्य की बात है कि दिल्ली के रहने वालों की भाषा में कुछ फ़ारसी शब्द मिल गये हों?

जो कुछ ऊपर कहा जा चुका है उससे स्पष्ट है कि चन्द ने निज रासो में जो सब सन् संवत् दिये हैं वे अशुद्ध नहीं हैं, वरन वे उस अब्द से ठीक मिलते हैं जो उस समय दर्बार के काग़ज़ों में प्रचलित था और जो प्रचलित विक्रम संवत से ९०-९१ पूर्व था। इसी अब्द से हम यह बात सिद्ध कर सकते हैं कि शिलालेख और परवाने तथा पट्टे सब सत्य हैं। इस नवीन अब्द का आभास हमें इस दोहे से मिलता है—

एकादस सै पञ्च दह विक्रम जिमि ध्रुम सुत्त।
त्रितिय साथ पृथिराज को लिख्यो विप्र गुन गुत्त॥

इसका तात्पर्य यह है कि जैसे युधिष्ठिर के ११५० वर्ष पीछे विक्रम का संवत चला वैसे विक्रम के ११५० वर्ष पीछे मैं (चन्द) पृथ्वीराज का संवत चलाता हूं। चन्द्र पुनः लिखता है—

एकादस सै पञ्चदह विक्रम साक अनन्द।
तिहि रिपु जयपुर हरन को भय पृथिराज नरिन्द॥

अब तक मेवार में यह बात प्रसिद्ध है कि पूर्व काल में दो विक्रम संवत थे। कर्नल टाड भी हारावती के वर्णन में इस बात का उल्लेख करते हैं। अब तक "अनन्द" शब्द का अर्थ "आनन्द" "शुभ" लगाया जाता था, परन्तु पण्डित मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या का कथन है कि इसका अर्थ "नन्द रहित" है। नन्द, के अर्थ नौ के हैं, क्योंकि "नव नन्दा प्रकीर्तिताः" ऐसा भागवत में लिखा है। 'अ' का अर्थ हुआ शून्य। "अंकानां वामतो गतिः" के अनुसार अनन्द का अर्थ हुआ "९०" और इस संख्या को प्रचलित विक्रम संवत में से घटा देने से चन्द का संवत निकल आता है। दूसरा अर्थ अनन्द का यह है। मौर्यवंश का आदि राजा चन्द्रगुप्त हुआ जो महानन्द का दासी-पुत्र था। इस वंश के राजा, नन्दवंशीय कहलाते थे। सम्भव है मेवाड़ के अभिमानी राजपूतों ने जान बूझ कर इन राजाओं के काल की गणना न करने के उद्देश्य से प्रचलित विक्रम संवत् में से उनका राज्यकाल घटा दिया और इस "अनन्द विक्रम संवत" का प्रचार किया हो। इन अर्थों के अतिरिक्त सब से उपयुक्त एक दूसरी ही बात सूझती है जिसे मैं यहाँ लिख देना उचित समझता हूं। यह बात इतिहास में प्रसिद्ध है कि कन्नौज का राजा जयचन्द अपने को अनङ्गपाल का उत्तराधिकारी बताता था और कहता था कि दिल्ली की गद्दी पर बठने का अधिकार मेरा है न कि पृथ्वीराज का। इस कारण पृथ्वीराज और जयचन्द दोनों में परस्पर विवाद रहा और अन्त में दोनों का नाश हुआ। कन्नौज के राजाओं ने जयचन्द तक केवल ९०-९१ वर्ष राज्य किया था। अतएव आश्चर्य नहीं कि उनके राज्यकाल को न गिनने के प्रयोजन से और उन्हें नन्दवंशियों के तुल्य मानने के अभिप्राय से इस नवीन संवत का प्रचार किया गया हो।

जो कुछ ऊपर लिखा जा चुका है इससे स्पष्ट है कि चन्द के संवत मनोकल्पित और असत्य नहीं हैं, तथा रासो में जो बातें लिखी हैं वे निरी गप्प नहीं हैं। यह भी सिद्ध कर दिया गया है कि बारहवीं शताब्दी में मेवार में दो संवतों का प्रचार था—एक सनन्द और दूसरा अनन्द विक्रम संवत और दोनों में ९०-९१ वर्ष का अन्तर था। अब यह बात स्वतः सिद्ध है कि चन्द का रासो वास्तविक घटनाओं में

पूरित महाकाव्य है, जैसे कि उस काल के ऐतिहासिक काव्य प्रायः सब देशों में मिलते हैं, और अब इसे झूठा सिद्ध करने का उद्योग केवल निरर्थक, निष्प्रयोजनीय तथा द्वेषपूर्ण माना जायगा। पृथ्वीराज और—उसके सामन्तों का चरित्र इङ्गलैण्ड के राजा आर्थर (King Arthur and his round table) से बहुत कुछ मिलता है। अस्तु इसमें सन्देह नहीं कि यह ग्रन्थ सहस्रों मनुष्यों के हाथों गया और सैकड़ों ने इसे लिखा है। यदि आज हमको इसके पाठ में दोष या कहीं गड़बड़ अथवा क्षेपक मिले तो आश्चर्य ही क्या है? इससे इस ग्रन्थ के और आदर में किसी प्रकार की कमी नहीं होनी

सामयिक अवस्था

हिन्दी-साहित्य की वर्त्तमान अवस्था।

—०:४:०—

[लेखक पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी]

बीज-वपन।

हिन्दी का बीज-वपन हुए बहुत काल हुआ। परन्तु निश्चयपूर्व्वक यह नहीं कहा जा सकता कि किस सन्, किस संवत् या [illegible] समय में वर्त्तमान हिन्दी की आद्यावस्था [illegible] आरम्भ हुआ। इस अनिश्चय का कारण [illegible]ह है कि भाषाओं की उत्पत्ति एक दिन में [illegible]हीं होती। अनेक प्राकृतिक कारणों से देश, [illegible]ल और समाज की अवस्था-विशेष के अनु[illegible]ार उनमें परिवर्त्तन हुआ करते हैं। नई नई [illegible]ाषायें उत्पन्न हो जाती हैं और पुरानी भाषाओं [illegible]ा प्रचार कम हो जाता है। कभी कभी तो [illegible]रानी भाषायें धीरे धीरे विलय को भी प्राप्त हो [illegible]ती हैं। चन्द बरदायी ने जिस हिन्दी में [illegible]थ्वीराज-रासो लिखा है उसके पहले भी हिन्दी [illegible]िद्यमान थी। उस पुरानी हिन्दी के पूर्व्ववर्ती [illegible]प भी प्राकृत भाषाओं में पाये जाते हैं और [illegible]नके भी प्राक्कालीन रूप भारत के प्राचीनतम [illegible]न्थों में मिलते हैं। अतएव इस परिवर्त्तन-[illegible]रम्परा की प्रत्येक अवस्था का ठीक ठीक पता [illegible]गाना सहज काम नहीं। हमारी हिन्दी भाषा [illegible]िकाश-सिद्धान्त का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। [illegible]सका क्रम-विकाश हुआ है। धीरे धीरे वह [illegible]क अवस्था से दूसरी अवस्था को प्राप्त हुई है। [illegible]ह एक प्रकार से अनादि है। नहीं कह सकते, [illegible]ब से मानव-जाति उसके सबसे पहले रूप-[illegible]ाली उसकी पूर्व्ववर्त्तिनी भाषा बोलने लगी। [illegible]र्त्तमान हिन्दी की प्रथमावस्था का सबसे प्रतिष्ठित ग्रन्थ जो अब तक उपलब्ध हुआ है, पृथ्वीराज-रासो ही है। अतएव निश्चयपूर्व्वक केवल इतना ही कहा जा सकता है कि वर्त्तमान हिन्दी का बीज-वपन चन्द बरदायी के समय में, या उसके कुछ पहले, हुआ। चन्द के पूर्व्व-वर्त्ती भी कुछ कवियों और उनके काव्यों का पता चलता है। पर चन्द के और उनके स्थितिकाल में बहुत अधिक अन्तर नहीं।

२—अङ्कुरोद्गम।

बोने के अनन्तर बीज से अङ्कुर निकलता है। चन्द बरदायी आदि कवियों ने जिस बीज को बोया उससे अङ्कुर तो शीघ्र निकल आया, परन्तु पत्तियां बहुत देर में निकलीं। जिस हिन्दी में आज कल समाचारपत्र और पुस्तकें लिखी जाती हैं उसके उद्भव तक हिन्दी में प्रायः काव्य-ग्रन्थों ही की उत्पत्ति हुई। संख्यातीत ग्रन्थ बने, पर बहुत करके सब पद्यात्मक। अनेक कवियों ने अपने अपने उपास्य देवता पर कविता की। राजाश्रित कवियों ने अपने अपने आश्रयदाता की रुचि के अनुकूल शृङ्गार या वीर रसात्मक काव्य निर्म्माण किये। किसी ने अलङ्कार-शास्त्र पर लिखा, किसी ने नायिका भेद पर। सबकी प्रवृत्ति केवल कविता ही की ओर रही। सात आठ सौ वर्ष तक यही हाल रहा। हिन्दी का अङ्कुर निकला तो सही पर वह अङ्कुर ही रहा। वह कुछ बढ़कर हरा हो गया, पर उसमें पत्तों पल्लवों के आने की शक्ति बहुत काल के अनन्तर हुई।

३—पत्रोद्गम।

अङ्गरेज़ी-शासन की कृपा से जब शिक्षा का प्रचार कुछ बढ़ा और अन्य भाषाओं में अच्छे अच्छे समाचार-पत्र और पुस्तकें निकलने लगीं तब हिन्दी के दो चार हितचिन्तकों का ध्यान अपनी मातृभाषा की हीनता की ओर गया। अतएव उन्होंने उसे उन्नत करने के इरादे से प्रचलित प्रणाली की हिन्दी में काव्य, नाटक और इतिहास आदि की पुस्तकें गद्य में लिखनी और समाचार-पत्र तथा सामयिक पुस्तकें निकालनी आरम्भ कीं। उस समय, मानों हिन्दी के अङ्कुरित पौधे में, चिरकालोत्तर, पत्रोद्गम हुआ। जो अङ्कुर सैकड़ों वर्ष तक प्रायः एक ही रूप में था उसमें पत्तियाँ निकल आईं। इसके भी पहले यद्यपि कलकत्ते के फ़ोर्ट विलियम में हिन्दी की पूर्व्वागत अवस्था परिवर्तित करने की चेष्टा हुई थी, तथापि वह विशेष फलवती नहीं हुई। नये ढङ्ग की दो एक पुस्तकें निकलने से ही हिन्दी का अवस्था-परिवर्त्तन नहीं हो सकता।

४—वर्त्तमान अवस्था।

हिन्दी के जिस नये पौधे में आज से तीस पैंतीस वर्ष पहले केवल दो चार कोमल कोमल पत्ते दिखाई दिये थे, वह अब, इस समय, अनेक पल्लव-पुञ्जों से आच्छादित है। यद्यपि उसमें अब तक शाखा-प्रशाखाओं का प्रायः अभाव है, यद्यपि उसका तना अभी बहुत पतला और कमज़ोर है, यद्यपि उसमें फूल और फल लगने में अभी बहुत विलम्ब है, तथापि वह बढ़ रहा है और आशा है कि किसी समय उसके अङ्ग प्रत्यङ्गों की पूर्ति और पुष्टि भी देखने को मिलेगी। हिन्दी की वर्त्तमान अवस्था को देख कर यहीं अनुमान होता है।

५—साहित्य का महत्त्व।

[illegible] कई विभाग किये जा सकते हैं। [illegible] जो कुछ जानने योग्य है वह कई भागों में विभक्त किया जा सकता है। ऐसे प्रत्येक भाग की शास्त्र संज्ञा है। आकाशस्थित ज्योतिर्मय पिण्डों से सम्बन्ध रखनेवाले शास्त्र का नाम ज्योतिष-शास्त्र है। बिजली से सम्बन्ध रखनेवाले शास्त्र का नाम विद्युच्छास्त्र है। मानव-शरीर से सम्बन्ध रखनेवाले शास्त्र को शारीरक शास्त्र कहते हैं। तत्त्वज्ञान-सम्बन्धी शास्त्र दर्शन-शास्त्र कहलाता है। इसी तरह रसायन शास्त्र, आयुर्वेद-शास्त्र, जीवाणु-शास्त्र, कृषि-शास्त्र, वनस्पति-शास्त्र, ज्यामिति शास्त्र, भूगर्भ शास्त्र, अङ्क-शास्त्र, शिल्प-शास्त्र, सङ्गीत-शास्त्र, सम्पत्ति शास्त्र, यहाँ तक कि कीट-पतङ्ग आदि से सम्बन्ध रखनेवाला शास्त्र भी है। सारांश यह कि इस विशाल विश्व में जो कुछ है वह, अपने अपने वर्ग या विभाग के अनुसार, पृथक् पृथक् शास्त्र सम्बन्धिनी सामग्री प्रस्तुत कर सकता है। मनुष्य की बुद्धि का जैसे जैसे विकास होता जाता है वैसे ही वैसे ज्ञेय वस्तुओं का ज्ञान भी उसे क्रम क्रम से अधिकाधिक होता जाता है। ज्ञानवृद्धि के साथ ही साथ शास्त्रों की संख्या भी बढ़ती जाती है। जिस विषय का ज्ञान जितना ही अधिक होता है उस विषय का शास्त्र भी उतना ही अधिक विस्तृत और महत्वपूर्ण होता है। भिन्न भिन्न प्रकार का यह शास्त्रीय ज्ञान पुस्तकों में संगृहीत रहता है। उनके प्रकाशन और प्रचार से सारे देश का भी कल्याण होता है और जुदा जुदा समाज का भी। एक मनुष्य के ज्ञानार्जन या ज्ञानानुभव से अनेक मनुष्यों को तभी लाभ पहुँचता है जब पुस्तकों के द्वारा उसका प्रचार होता है। इस ज्ञान-समुदाय को संग्रह करने और फैलानेवाली पुस्तकों के समूह का नाम साहित्य है। जिस भाषा में ज्ञानगर्भ शास्त्रों और पुस्तकों की जितनी ही अधिकता होती है उस भाषा का साहित्य-भाण्डार उतना ही अधिक श्रीसम्पन्न होता है।

ज्ञानार्जन का प्रधान साधन शिक्षा है। बिना शिक्षा के मनोविकास नहीं होता और [illegible]

काश के ज्ञानोन्नति नहीं होती। अतएव
द्धि के लिए शिक्षा की बड़ी आवश्यकता है।
ारपत्रों और सामयिक पुस्तकों से भी
मिलती है। उनसे भी ज्ञानोन्नति होती
ससे उन्हें भी भाषा साहित्य का एक अङ्ग
ा एक अंश अवश्य समझना चाहिये।
ारणों से मनोरञ्जन, समालोचन, इति-
ौर जीवनचरित आदि से सम्बन्ध रखने-
पुस्तकें भी साहित्य के अन्तर्गत हैं। इन
ो ध्यान में रख कर अब यह देखना है
दी के वर्तमान साहित्य की अवस्था कैसी
हिन्दी के दूसरे साहित्य-सम्मेलन के
ारियों ने मुझे इसी विषय पर एक
लिखने की आज्ञा दी है।

६—समाचारपत्र

माचारपत्रों और निर्दिष्ट समय में निक-
ी पुस्तकों की संख्या से प्रत्येक देश की
और सभ्यता की इयत्ता जानी जा सकती
देश जितना ही अधिक सभ्य और सु-
होता है उसमें उतने ही अधिक पत्र और
प्रकाशित होती हैं। शिक्षित जनों की
पर ही इस प्रकार के साहित्य की अधि-
ा न्यूनता अवलम्बित रहती है। हिन्दी
लनेवाली पुस्तकों और समाचारपत्रों
ा पर विचार करने से यह स्पष्ट जान
है कि पच्चीस तीस वर्ष पहले जिस
ा में हिन्दी थी उससे अब यह अधिक
अवस्था में है। पत्रों और पुस्तकों की
अब बहुत बढ़ गई है। विवेचनीय विषयों
ार भी अब अधिक हो गया है। भाषा
ो की अपेक्षा अधिक परिमार्जित और
हो गई है। कई एक साप्ताहिक पत्र
ासिक पुस्तकें योग्यतापूर्वक सम्पादित
है। नये नये पत्र निकलते आते हैं।
क पुस्तकों की भी संख्या दिनों दिन वृद्धि
बहुत पुराने पत्रों में विशेष करके
कविता, नाटक, हँसी दिल्लगी की बातें और
बहुत ही साधारण लेख और समाचार रहते थे।
सामयिक पुस्तकों की भी निकृष्ट अवस्था थी।
यह बात अब नहीं रही। अब बहुत कुछ उन्नति
हुई है। सम्पादक-समुदाय अपने कर्तव्य को
अब पहले की अपेक्षा अधिक समझने लगा है।
सुरुचि का भी अब अधिक ख़याल रक्खा जाता
है; लोकशिक्षा का भी; और जन-समुदाय के
हित तथा मत-बाहुल्य का भी।

परन्तु जब हम अँगरेज़ी और एतद्देशीय
अन्यान्य समुन्नत भाषाओं के इस साहित्य की
ओर देखते हैं तब हमें अपनी भाषा की हीना-
वस्था को देख कर दुःख और आश्चर्य होता
है। दुःख का कारण तो स्पष्ट ही है। आश्चर्य
का कारण यह है कि हिन्दी बोलनेवालों की
संख्या इतनी अधिक होने पर भी हमारी मातृ-
भाषा की इतनी अनुन्नत अवस्था! इस दुरवस्था
के कई कारणों में से तीन मुख्य हैं। पहला कारण
लोकशिक्षा की कमी; दूसरा कारण मातृ भाषा
से शिक्षित जनों की अरुचि; तीसरा कारण
पत्र-सम्पादकों और सञ्चालकों की न्यूनाधिक
अयोग्यता है।

जितने समाचारपत्र, इस समय, हिन्दी में
निकलते हैं उनमें से प्रायः सभी के सम्पादकीय
लेखों और समाचारों के लिए, अनेक अंशों में,
पायनियर, बङ्गाली, अमृतबाज़ार-पत्रिका, एंड-
वोकेट आव् इन्डिया आदि अँगरेज़ी-पत्र उप-
मर्ण का काम देते हैं। मासिक पुस्तकों का भी
यही हाल है। वे भी प्रायः औरों के दिमाग़ से
निकले हुए लेखों की छाया और अनुवाद से
ही अपना कलेवर पूर्ण करती हैं। प्रत्येक भाषा
की आदिम अवस्था में बहुत करके ऐसा ही
होता है। अपने से अधिक उन्नत भाषाओं की
सहायता से ही वे अपनी अभिवृद्धि करती हैं।
इस अवस्था में धीरे धीरे परिवर्तन होता है।
जैसे जैसे अधिक शिक्षित जन समाचारपत्रों के
सम्पादन-कार्य्य में प्रवृत्त होते हैं वैसे ही वैसे

परावलम्बन की प्रवृत्ति कम हो जाती है, स्वाधीन विचारों की सृष्टि होती है और सामयिक बातों की स्वतन्त्रतापूर्वक समालोचना होने लगती है। शिक्षा की कमी के ही कारण स्वावलम्बन-समर्थ योग्य सम्पादक कम मिलते हैं। अतएव समाचारपत्रों के होनेवाले लाभों को जो लोग समझते भी हैं वे भी हिन्दी के पत्रों का बहुधा इस लिए आदर नहीं करते कि वे सुचारुरूप से सम्पादित नहीं होते। आशा है, यह त्रुटि धीरे धीरे दूर हो जायगी।

कुछ लोग अँगरेज़ी भाषा और उसके जाननेवालों से द्वेष करते हैं। उन्हें उनकी प्रत्येक बात से अँगरेज़ी बू आती है। उनको जानना चाहिए कि समाचारपत्रों का निकालना हम लोगों ने अँगरेज़ी जाननेवालों ही की बदौलत सीखा है। वह अँगरेज़ी शासन का ही प्रसाद है। अँगरेज़ी में इस प्रकार के साहित्य ने जितनी उन्नति की है उतनी उन्नति करने के लिये हमें सैकड़ों वर्ष चाहिए। अँगरेज़ी के समाचारपत्र-साहित्य को, अनेक बातों में, आदर्श माने विना हिन्दी के साहित्य को हम कभी यथेष्ट उन्नत न कर सकेंगे। मेरी जड़ बुद्धि में तो सम्पादकों के लिए अँगरेज़ी जानना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य्य है। मैं तो यहां तक कहने का साहस कर सकता हूं कि हमारे साहित्य की इस शाखा की जो इतनी हीन दशा है उसका एक कारण यह भी है कि हम, हिन्दी लेखक, अँगरेज़ी नहीं जानते और जानते भी हैं तो बहुत कम।

७—वैज्ञानिक पुस्तकें।

'विज्ञान'-शब्द आजकल 'शास्त्र'-शब्द का पर्य्यायवाची हो रहा है। शास्त्र किसे कहते हैं, इसका उल्लेख ऊपर हो चुका है। ज्ञान और विज्ञान कोई ऐसी वैसी चीज़ नहीं। उसकी महिमा सीमारहित है। संसार में सबसे अधिक महत्त्व की ज्ञेय वस्तु परमेश्वर है। वह भी ज्ञानगम्य है। ज्ञान की बदौलत ही उसका ज्ञान हो सकता है। ऐसे विज्ञानात्मा—"निरतिशयसर्वज्ञ-बीज"—जगदीश्वर को ज्ञान के प्रसाद से मनुष्य पहचान सकता है उस ज्ञान का माहात्म्य सर्वथा अकथनीय है। परन्तु हा! इस ज्ञानगर्भ साहित्य का हिन्दी में सर्वतोभाव से अभाव है। यह बड़े दुःख, बड़े खेद, बड़े परिताप की बात है। ज्ञान की जो अनेक शाखायें हैं—शास्त्रीय विषयों के जो अनेक भेद हैं—उनमें से एक पर भी दो चार अच्छे अच्छे ग्रन्थ नहीं। एक जीव-विज्ञान-विटप, या एक पदार्थ-विज्ञान-विटप, या एक रसायन शास्त्र, या और भी ऐसा ही एक आध ग्रन्थ हुआ तो क्या और न हुआ तो क्या। इससे किसी ज्ञानांश के अभाव की पूर्ति नहीं हो सकती। अन्य समुन्नत भाषाओं में जिस ज्ञान या विज्ञान की एक एक शाखा पर सैकड़ों महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ विद्यमान हैं उसकी किसी शाखा-विशेष से सम्बन्ध रखनेवाली दो चार या दस पाँच छोटी मोटी पुस्तकें हिन्दी में हुईं भी तो वे न होने के बराबर हैं। जिस ज्ञान ही की बदौलत अन्य प्राणियों में मनुष्य को श्रेष्ठता मिली है उसी ज्ञानात्मक साहित्य का हिन्दी बोलनेवाले मनुष्य नामक प्राणियों की भाषा में प्रायः पूर्णाभाव होना बड़ी ही लज्जा की बात है। गीता, सिद्धान्त-शिरोमणि, सांख्य, योग और मीमांसा आदि सूत्रों के टूटे फूटे हिन्दी-अनुवाद से इस अभाव का तिरोभाव नहीं हो सकता। इसका तिरोभाव तभी होगा जब संस्कृत और अँगरेज़ी, दोनों भाषाओं, के ज्ञानार्णव का मन्थन करके सब प्रकार के ज्ञानांश-सम्बन्धी ग्रन्थों की रचना होगी।

८—कोश और व्याकरण।

बहुत दिनों से यह निर्घोष सुनाई दे रहा है कि हिन्दी में न तो एक अच्छा सा कोश है और न एक अच्छा सा व्याकरण। अतएव इ

ही बड़ी आवश्यकता है। इनकी आव-
ा है अवश्य, परन्तु बड़ी आवश्यकता
इनसे साहित्य के एक अङ्ग की पूर्ति
हो सकती है; परन्तु यह बात मेरी
में नहीं आती कि अन्यान्य परमावश्यक
ी पूर्ति की अपेक्षा इस अङ्ग की पूर्ति
षय में क्यों इतना ज़ोर दिया जाता
क्या बिना इनके हिन्दी-साहित्य की थोड़ी
ट असम्भव है? तुलसीदास, सूरदास,
लाल, बंशीधर वाजपेयी, हरिश्चन्द्र,
ाद, प्रतापनारायण मिश्र आदि ने किस
और किस व्याकरण को सामने रख कर
ना की है? हिन्दी के सौभाग्य से उस-
अच्छा वैज्ञानिक कोश वर्त्तमान है। उसे
वर्ष हुए। उसकी सहायता से आज
तने वैज्ञानिक ग्रन्थों की सृष्टि हिन्दी में
बँगला और मराठी में कोई वैसा कोश
तथापि इन भाषाओं की पुस्तकें बेचने-
कमी भी प्रतिष्ठित दुकानदार या प्रका-
यहाँ प्राप्य पुस्तकों की सूची यदि आप
ता आपको अनेक वैज्ञानिक ग्रन्थों के
मलेंगे। इससे सिद्ध है कि यह काम,
ा में, बिना कोश की सहायता के भी हो
है। हिन्दी-साहित्य अभी अत्यन्त हीना-
में है। उसकी एक भी शाखा अभी तक
ने योग्य समृद्ध नहीं। और, किसी भी
ाश में साहित्य की सब शाखाओं के शब्द
ाहिए। अतएव जब सब प्रकार के शब्दों
ए ही नहीं हुई तब बहुत बड़ा और पूर्ण
न कैसे बनेगा? अनेक महत्त्वपूर्ण शब्दों
ग के उदाहरण कहां से आवेंगे? इस
यदि कोई कोश बनेगा भी तो उसमें
ंत शब्दों की कमी रह जायगी। जब
ों की सृष्टि होगी तब या तो एक नया
श बनाना पड़ेगा या पुराने कोश का
िक संशोधन करना पड़ेगा।
ी हाल व्याकरण का भी है। बिना एक

बहुत बड़े व्याकरण के भी हिन्दी के साहित्य की वृद्धि में, अभी, इस समय, विशेष बाधा नहीं उपस्थित हो सकती। कल्पना कीजिये कि एक मनुष्य ऐसा है जो न तो हिन्दी का अच्छा व्याकरण ही जानता है और न उसके पास हिन्दी का कोई अच्छा कोश ही है। परन्तु हिन्दी उसकी मातृ-भाषा है। वह अपने घर में अपने कुटुम्बियों से हिन्दी में ही बात चीत करता है। उसे यह लिखना है कि-"प्रात काल सूर्योदय सदा पूर्व में होता है"। कोश और व्याकरण से अच्छा परिचय न होने के कारण, सम्भव है, वह इस वाक्य को इस तरह लिखे—

(१) सूरज हमेशा पूरब में निकलता है—या

(२) सूर्य सदा पूर्व में उदय होता है—या

(३) सूरज का उदय हमेशा पूरब की तरफ होता है—या

(४) सूर्य रोज़ पूर्व से उदय होता है—या

इस भाव को वह किसी और ही तरह प्रकट करे। परन्तु वह चाहे जैसे शब्द-प्रयोग करे और व्याकरण की दृष्टि से उसका वाक्य चाहे जितना अशुद्ध हो उसके कहने का मतलब सुननेवाला अवश्य समझ लेगा। यह तो सम्भव ही नहीं कि वह इस वाक्य को इस तरह लिखे—

में है होना सूरज पूरब उदय हमेशा

फिर कैसे कोई कह सकता है कि बिना उत्तम कोश और व्याकरण के हिन्दी का काम इस समय नहीं चल सकता? लिखने का एक मात्र प्रयोजन यही है कि लेख का भाव पढ़नेवाले की समझ में आ जाय। यदि मतलब समझ में आ गया तो लिखने का प्रयोजन सिद्ध हो गया। अतएव व्याकरण और कोश अच्छी तरह न जानने पर भी मन का भाव औरों पर प्रकट किया जा सकता है। हिन्दी के वैयाकरणों की राय है कि मैं व्याकरण नहीं जानता। यदि जानता तो रामायण, महाभारत, [illegible] [illegible] इत्यादि शब्दों के लिङ्ग प्रयोग में मुझसे भूल न

होतीं, और जो कुछ मैं लिखता शुद्धतापूर्व्वक लिखता। हिन्दी के व्याकरण से इतना अनभिज्ञ होने पर भी मेरे इस लिखने या कहने का मतलब, सच कहिए, आपकी समझ में आता है या नहीं? यदि आता है तो आपको स्वीकार करना पड़ेगा कि व्याकरण और कोश में उत्तमतापूर्व्वक पारङ्गत हुए बिना भी समझने लायक़ हिन्दी लिखी जा सकती है।

हिन्दी के व्याकरण और कोश से विशेष लाभ वही उठा सकते हैं जिनकी जन्मभाषा हिन्दी नहीं। सरकारी कचहरियों और दफ्तरों के अफसरों और अधिकांश कर्मचारियों का भी हिन्दी के वृहत्कोश से बड़ा काम निकल सकता है। हिन्दी लिखनेवालों का काम तो, इस समय, उन्हीं कई एक छोटे मोटे व्याकरणों और कोशों से निकल सकता है जो इस समय हिन्दी में वर्त्तमान हैं। जो हिन्दी लिखना या पढ़ना बिलकुल ही नहीं जानते उनकी बात जुदी है। उनका काम बिना कोश और व्याकरण के चाहे न भी चले, पर जो साधारण हिन्दी जानते हैं उनका काम अवश्य चल सकता है। विशुद्ध, सरस और आलङ्कारिक भाषा लिखने के लिए व्याकरण और कोश का अच्छा ज्ञान अवश्य अपेक्षणीय है। परन्तु ऐसी भाषा लिखने का यही एक साधन नहीं। उसके लिए अभ्यास और पुस्तकावलोकन की भी आवश्यकता है। कोश और व्याकरण रट कर कोई अन्धा लेखक नहीं हो सकता।

मेरे इस कथन का यह तात्पर्य्य नहीं कि हिन्दी में सर्व्वाङ्ग पूर्ण कोश और व्याकरण न बनें। अवश्य बनें। उनके बनने से हिन्दी-साहित्य के एक अङ्ग की अवश्य पुष्टि होगी और हिन्दी लिखने और सीखनेवालों को लाभ भी होगा। मेरे कहने का मतलब सिर्फ़ इतनाही है कि बिना एक वृहत्कोश और वृहद्व्याकरण के भी वर्त्तमान हिन्दी-साहित्य के अन्यान्य आवश्यकीय अङ्गों की साधारण उन्नति हो सकती है।

६—इतिहास और जीवनचरित।

हिन्दी-साहित्य के किस किस अङ्ग की कमी पर खेद-प्रदर्शन किया जाय? एक भी अङ्ग तो परिपुष्ट नहीं। साहित्य में इतिहास का भी आसन बहुत ऊँचा है। हिन्दी में ऐतिहासिक पुस्तकों का यद्यपि सर्वथा अभाव नहीं, तथापि नाम लेने योग्य दस पाँच भी ऐसी पुस्तकें हिन्दी में नहीं। मिस्टर आर० सी० दत्त ने भारतीय सभ्यता का जो इतिहास अङ्गरेज़ी में लिखा है उसका अनुवाद, टाड साहब के राजस्थान का अनुवाद और देहली के मुसलमान बादशाहों के राजत्वकाल से सम्बन्ध रखनेवाले दो एक फ़ारसी ग्रन्थों के भी अनुवाद उल्लेख-योग्य हैं। पृथ्वीराज-रासो पुरानी हिन्दी में है और पद्यात्मक है। वह यदि इतिहास कहा जा सकता हो तो उसकी भी गिनती साहित्य की इस शाखा के अन्तर्गत हो सकती है। हाँ, सोलङ्कियों का इतिहास अवश्य नाम लेने योग्य है। वह बड़ी खोज और श्रम से लिखा गया है। इसके सिवा और भी कुछ ऐतिहासिक पुस्तकें हिन्दी में हैं। परन्तु हिन्दी बोलने वालों की संख्या और हिन्दी की व्यापकता का विचार करने से दो चार या दस बीस ऐतिहासिक पुस्तकों का होना बड़ी बात नहीं। जिस उर्दू के बोलने वालों और पक्षपातियों की संख्या हिन्दी बोलने वालों के मुक़ाबले में बहुत ही कम है उसमें इस दस पन्द्रह पन्द्रह जिल्दोंवाले भारतीय इतिहास बन जायँ और हिन्दी में हज़ार पाँच सौ पृष्ठ का भी एक अच्छा इतिहास न बने, यह इन लोगों के लिए बड़ी ही लज्जा की बात है।

जीवनचरित भी साहित्य की एक बड़ी ही महत्वपूर्ण शाखा है। इस शाखा के ग्रन्थ छोटे बड़े, स्त्री-पुरुष, सब की समझ में आ सकते हैं। सबको उनसे लाभ भी पहुंचता है और साथ ही मनोरञ्जन भी होता है। न इनके ग्रन्थों का आशय समझने के लिए विशेष विद्वत्ता

की आवश्यकता होती है, न विशेष विद्वत्ता की। ऐसे सुखपाठ्य, मनोरञ्जक और सर्व्व-जनोपयोगी साहित्यांश की कुछ ही पुस्तकें हिन्दी में हैं। जो हैं उनको भी बने अभी कुछ ही समय हुआ और वे भी अच्छी तरह खोज और विचारपूर्व्वक नहीं लिखी गईं। बङ्गला में माइकेल मधुसूदन दत्त और ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के जैसे चरित हैं वैसा एक भी जीवन-चरित हिन्दी में नहीं। अङ्गरेज़ी में बासवेल-कृत डाकृर जॉनसन का और लार्ड मार्ले-कृत मि० ग्लैडस्टन का जीवनचरित इस शाखा के आदर्श ग्रन्थ हैं। हिन्दी में ऐसे ग्रन्थ निकलने के लिए बहुत समय दरकार है। परन्तु अङ्गरेज़ी शिक्षा पाये हुए हिन्दी-भाषाभाषी दो चार सज्जन भी यदि हिन्दी लिखने का अभ्यास करें तो छोटे मोटे अनेक जीवनचरित थोड़े ही समय में तैयार हो सकते हैं। हिन्दी की कई एक मासिक पुस्तकों में प्रसिद्ध पुरुषों के जीवनचरित नियम-पूर्व्वक निकलते हैं। उन्हें लोग बड़े चाव से पढ़ते हैं, यह मैं अपने निज के अनुभव से कह सकता हूँ। इससे यह सूचित है कि इस साहित्य को लोग पसन्द करते हैं। अतएव यदि अच्छे अच्छे जीवनचरित प्रकाशित हों तो उन से लेखक, प्रकाशक और पाठक सभी को लाभ पहुंच सकता है।

१०—पर्य्यटन-विषयक पुस्तकें।

देश-दर्शन और पर्य्यटन-विषयक पुस्तकें भी साहित्य का एक अङ्ग हैं। उनसे बहुज्ञता बढ़ती है। उन्हें पढ़ने में भी मन लगता है। जो देश या जो स्थान जिसने नहीं देखा उसका वर्णन पढ़कर तत्सम्बन्धिनी अनेक बातें उसे मालूम हो सकती हैं। हिन्दी में इस विषय का एक खूब अच्छा ग्रन्थ है। उसके कई भाग हैं। लेखक ने भारत के अनेक प्रान्तों में स्वयं भ्रमण करके इस पुस्तक की रचना की है। इसके सिवा चीन, जापान और इङ्गलैंड की जिन लोगों ने सैर की है उनमें से भी दो एक हिन्दी-हितैषियों ने अपनी यात्रा का वर्णन हिन्दी में पुस्तकाकार प्रकाशित किया है। इस विषय की और भी दो एक पुस्तकें निकली हैं। पर इस अङ्ग की पुष्टि के लिये इतनी पुस्तकें समुद्र में एक बूंद के बराबर हैं।

अनेक भारतवर्षीय युवक प्रति वर्ष विदेश-यात्रा करते हैं। यदि उनमें से दो एक भी अपनी यात्रा का वर्णन हर साल प्रकाशित करें तो साहित्य के इस अङ्ग की बहुत शीघ्र उन्नति हो जाय। परन्तु बड़े दुःख की बात है कि ऐसे यात्रियों या प्रवासियों में से जो सज्जन हिन्दी से प्रेम रखते हैं और विदेश से हिन्दी में लिख लिख कर लेख भी भेजने की कृपा करते हैं वे जब इस देश को लौटते हैं तब, औरों की तो बात ही नहीं, वे भी हिन्दी लिखने से पराङ्मुख हो जाते हैं।

११—काव्य और नाटक।

हिन्दी के साहित्य में काव्यों का बाहुल्य है। अनेक अच्छे अच्छे काव्य हैं। अनन्त काव्य ग्रन्थ तो अब तक अप्रकाशित अवस्था में ही पड़े हैं। सर्व्वाधिक संख्या शृङ्गार-रस प्रधान काव्यों की है, उससे कम भक्त कवियों के काव्यों की, उससे भी कम वीर-रस के काव्यों की। फुटकर विषयों के काव्य भी बहुत हैं। यह सब पुराने काव्यों की बात हुई। वर्त्तमान समय में जो काव्य हिन्दी में निकले हैं या निकल रहे हैं उनमें से कुछ गिने कवियों की कृतियों को छोड़ कर और को काव्य या कविता कहते सङ्कोच होता है। आज कल कवियों की संख्या बहुत बढ़ रही है। परन्तु जिस तरह के काव्य प्रकाशित होते हैं उनसे विशेष लाभ नहीं। अपद्रूपद्य और गद्य में अङ्ग की कमी के काव्यों की इस समय आवश्यकता है। काव्यों की भाषा ऐसी होनी चाहिए जो सब की समझ में आ जाय—यहां पर होना काम की बात है, परं

व्रज की भाषा। ब्रजभाषा न जानने या न लिखनेवालों को शाखामृग कहने का अब समय नहीं। काव्यों की रचना और उनका विषय ऐसा होना चाहिए जो देशकाल के अनुकूल हो। पढ़नेवाले के हृदय पर कविता पाठ का कुछ असर होना चाहिए; उससे सदुपदेश मिलना चाहिए; और नहीं तो थोड़ी देर के लिए प्रमोदानुभव तो अवश्य ही होना चाहिए। भारत में अनन्त आदर्श नरेश, देशभक्त वीरशिरोमणि और महात्मा होगये हैं। हिन्दी के सुकवि यदि उन पर काव्य करें तो लाभ हो। पलाशी का युद्ध, वृत्रसंहार मेघनादवध और यशवन्तराव महाकाव्य की बराबरी का एक भी काव्य हिन्दी में नहीं। वर्त्तमान कवियों को इस तरह के काव्य लिखकर हिन्दी की श्रीवृद्धि करनी चाहिए।

बाबू हरिश्चन्द्र के कई काव्य और अनुवाद बहुत अच्छे हैं। राजा-लक्ष्मणसिंह-कृत मेघदूत का अनुवाद भी प्रशंसा के योग्य है। संस्कृत-काव्यों के जो और अनेक अनुवाद हिन्दी में हुए हैं वे उतने अच्छे नहीं। गोल्डस्मिथ के "हरमिट" का अनुवाद एकान्तवासी योगी भी अच्छा है। पुराणादि के जो अनेक अनुवाद हिन्दी में हुए हैं उनसे हिन्दी-साहित्य का लाभ अवश्य हुआ है, पर उनमें पण्डिताऊ ढँग के अनुवादों की भाषा संशोधन-योग्य है।

कुछ नाटकों को छोड़ कर हिन्दी में अच्छे नाटक भी नहीं। इन 'कुछ' में से शतांधिक तो संस्कृत तथा अन्य कई भाषाओं के नाटकों के अनुवाद मात्र हैं। समाज की भिन्न भिन्न अवस्थाओं और दशाओं का जैसा अच्छा चित्र अभिनय द्वारा दिखाया जा सकता है उतना और किसी तरह नहीं। अभिनय के लिये ही नाटकों की रचना होती है। परन्तु हिन्दी में नाटक के नाम से इस समय जो अनेक पुस्तकें वर्तमान हैं उनमें से अधिकांश का ठीक ठीक अभिनय ही नहीं हो सकता। [illegible] है, जिसने अनेक अभिनय देखे हैं, जो अभिनय-स्थल और नेपथ्य की रचना-विशेषता आदि से परिचित है, जो मनुष्य-स्वभाव और मानवी मनोविकारों का ज्ञाता है, वही अभिनय करने योग्य अच्छे नाटकों की रचना कर सकता है। जो नाटक आज कल, इन प्रान्तों में, नाटक-कम्पनियों के द्वारा खेले जाते हैं वे प्रायः उर्दू में हैं। उनमें दिखलाये जानेवाले सामाजिक चित्र बहुधा अच्छे नहीं। उन्हें देखकर दर्शकों की–विशेष करके युवकों की—चित्तवृत्ति के कलुषित होने का डर रहता है। अतएव योग्य लेखकों के द्वारा अच्छे अच्छे नाटकों के लिखे जाने की बड़ी आवश्यकता है।

१२–उपन्यास।

खुशी की बात है, हिन्दी-साहित्य का यह अङ्ग दिन पर दिन पुष्ट होता जा रहा है। यद्यपि हिन्दी में अच्छे उपन्यास, ढूंढ़ने से, दस ही पाँच निकलेंगे–यद्यपि हमारा साहित्य बुरे उपन्यासों के लिए बदनाम हो रहा है–तथापि उपन्यासों का अधिक प्रकाशित होना हिन्दी के उत्थान का शुभ लक्षण है। उपन्यासों ही की बदौलत हिन्दी पाठकों की संख्या में विशेष वृद्धि हुई है। उपन्यास चाहे जासूसी हों, चाहे मायावी, चाहे तिलिस्मी, विशेष करके कम उम्र के पाठकों को उन्होंने हिन्दी पढ़ने की ओर अवश्य आकृष्ट किया है। हिन्दी के उपन्यासों का अधिकांश अन्य भाषाओं के उपन्यासों का अनुवादमात्र है। अतएव दुःख इस बात का है कि यदि अनुवादही करना था तो चुन चुन कर अच्छी अच्छी पुस्तकों का ही अनुवाद क्यों न किया गया? परन्तु जब किसी भाषा का उत्थान होता है तब सुरुचि की ओर एकदम ध्यान नहीं जाता। यह काम धीरे धीरे होता है। बंकिम बाबू और रमेशचन्द्र दत्त के उपन्यासों ने हिन्दी साहित्य को समलंकृत किया है। इनके कई उपन्यासों के अनुवाद

हिन्दी में हो भी चुके हैं। और विषयों की पुस्तकों की अपेक्षा उपन्यासों के पढ़नेवालों की संख्या अधिक हुआ करती है। अतएव अच्छे उपन्यासों से बहुत लाभ और बुरों से बहुत हानि होने की सम्भावना रहती है। उपन्यासों में समाज के ऐसे चित्र होने चाहिए जिनसे दुराचार की वृद्धि न होकर सदाचार की वृद्धि हो। इस बात पर भी ध्यान रखना चाहिए कि कहानी बनावटी या अप्राकृतिक न जान पड़े। यदि कहानी की घटना में स्वाभाविकता होगी तभी पाठकों के चित्त पर उसका अधिक असर होगा और समझदार पाठकों का जी भी तभी पढ़ने में लगेगा। इन गुणों से पूर्ण कहानी लिखना कोई सरल काम नहीं। इसके लिए बड़ी योग्यता चाहिए। आजकल हिन्दी में जो कहानियां निकलती हैं उनके अच्छे न होने का कारण स्पष्ट है। योग्य लेखकों को चाहिए कि उपन्यास-रचना को ओछा काम न समझकर अच्छे अच्छे उपन्यासों से समाज और साहित्य दोनों का कल्याण-साधन करें।

१३—समालोचना।

वर्त्तमान हिन्दी-साहित्य में समालोचनाओं की कमी नहीं। कोई समाचारपत्र, कोई सामयिक पुस्तक, ऐसी नहीं जिसमें समालोचनायें न निकलती हों। परन्तु उनको समालोचना कहना भूल है। वे विज्ञापन मात्र हैं। और जो लोग समालोचना के लिए पुस्तकें भेजते हैं उनका आन्तरिक अभिप्राय भी बहुधा यही होता है कि इसी बहाने हमारी पुस्तक का विज्ञापन प्रकाशित हो जाय। यथार्थ समालोचनायें भी कभी कभी निकलती हैं, परन्तु बहुत कम। समालोचना साहित्य की एक महत्वपूर्ण शाखा है। इससे बड़े लाभ हैं। योग्य समालोचक अपनी समालोचना में समालोचित ग्रन्थ के ऐसे ऐसे रहस्य प्रकट करते हैं जो साधारण बुद्धि के पाठकों के ध्यान में नहीं आ-सकते। कभी कभी तो ऐसा होता है कि ग्रन्थकर्त्ता के आशय को समालोचक इस विशदभाव से व्यक्त करके दिखलाता है कि स्वयं ग्रन्थ-कर्त्ता को चकित होना पड़ता है। शकुन्तला और दुष्यन्त तथा पुरूरवा और उर्वशी की कथायें पुराणों में जिस प्रकार वर्णित हैं कालिदास के नाटकों में उस प्रकार नहीं। उनमें कवि ने क्यों और कहां तक परिवर्त्तन किया है, शकुन्तला में कवि ने दुर्वासा के शाप की क्यों अवतारणा की है, मेघदूत में कवि ने यक्षही को क्यों नायक बनाया है, धारिणी और औशीनरी, प्रियम्वदा और अनसूया के स्वभाव में क्या अन्तर है—ये ऐसी बातें हैं जो सबकी समझ में नहीं आ सकतीं। समालोचक ऐसी ही ऐसी बातों की मीमांसा करता है और कवि के हृदय को मानों खोलकर सर्व-साधारण के सामने रख देता है। उसके गुणों को भी वह दिखाता है और दोषों को भी। बंगला में शकुन्तलारहस्य और शकुन्तलातत्त्व आदि समालोचना-पुस्तकें ऐसी ही हैं।

दुःख है, ऐसी एक भी समालोचनात्मक पुस्तक हिन्दी में मेरे देखने में नहीं आई। हां, दो एक सत्समालोचनात्मक निबन्ध अवश्य मैंने देखे हैं। सच तो यह है कि ग्रन्थकार की जीवितावस्था में उसके ग्रन्थों की यथार्थ समालोचना नहीं हो सकती; अथवा यह कहना चाहिए कि होनी ही न चाहिए। इसीसे पश्चिमी देशों के विद्वान् बहुधा ऐसे ही ग्रन्थों की विस्तृत आलोचनायें करते हैं जिनके कर्त्ता इस लोक में विद्यमान नहीं। परन्तु हमारी हतभागिनी हिन्दी के विलक्षण साहित्य-संसार में ऐसा करने की आज्ञा ही नहीं। जो बात अन्य उन्नत भाषाओं के साहित्यसेवी भूषण समझते हैं वही यहां दूषण मानी जाती है। यदि किसी प्राचीन कवि या ग्रन्थकार के ग्रन्थ की समालोचना में कोई उसके दोष दिखलाता है तो उसके लिए हिन्दी में यह कहा जाता है कि

उसने ग्रन्थकर्ता को चचोर डाला ; उस पर मुष्टिका प्रहार किया ; उसका अञ्जर पञ्जर ढीला कर दिया ; और सैकड़ों मन भूसी फटक कर गेहूं का एक दाना निकाल लाया। समालोचक मूर्ख, उद्दण्ड, अभिमानी और उपहासपात्र बनाया जाता है ! ! बड़े बड़े शास्त्री, आचार्य्य, उपाध्याय और विशारद उसके पीछे पड़ जाते हैं और उस पर यह इलज़ाम लगाते हैं कि इस ने पूजनीय प्राचीन ग्रन्थकारों की कीर्ति को कलङ्कित करने की चेष्टा की ! ! ! जीवित ग्रन्थकारों के ग्रन्थों की समालोचना करना और प्रसंगवश उनके दोष दिखाना मानों उन्हें अपना शत्रु बनाना है और परलोकवासी कवियों या लेखकों की पुस्तकों के प्रतिकूल कुछ कहना उनकी यशोराशि पर धब्बा लगाना है। इस "उभयतः पाशारज्जुः" की दशा में भगवान ही हिन्दी-साहित्य की इस शाखा की उत्पत्ति और उन्नति की कोई युक्ति निकाले तो निकल सकती है।

१४—फुटकर विषयों के ग्रन्थ ।

साहित्य की जिन शाखाओं का नामोल्लेख ऊपर किया गया उनके सिवा पुरातत्व, भूगोल, भवननिर्म्माण, नौकानयन, शिक्षण, व्यापार-वाणिज्य आदि और भी कितनी ही शाखायें हैं जिनपर अन्यान्य उन्नत भाषाओं में शतशः ग्रन्थों की रचना हुई है। तदतिरिक्त फुटकर विषयों के भी अनन्त ग्रन्थ हैं। हिन्दी में इन शाखाओं और विषयों की बहुत ही थोड़ी पुस्तकों को छोड़ कर उल्लेख-योग्य अधिक पुस्तकें मेरे देखने में नहीं आईं।

१५—भाषा ।

विषय के अनुसार भाषा में बहुत कुछ भेद हो सकता है। जैसा विषय हो, और जिस श्रेणी के पाठकों के लिए पुस्तक लिखी गई हो, तदनुसार ही भाषा का प्रयोग होना चाहिए। बच्चों और साधारण जनों के लिए लिखी गई पुस्तकों में सरल भाषा लिखी जानी चाहिए। प्रौढ़ और विशेष शिक्षित जनों के लिये परिष्कृत और आलङ्कारिक भाषा लिखी जा सकती है। वैज्ञानिक ग्रन्थों में पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग करना पड़ता है। अतएव उनमें कुछ न कु क्लिष्टता आ ही जाती है। यह अनिवार्य है। मैं तो सरल भाषा के लेखक को ही बहुत बड़ा लेखक समझता हूं। लिखने का मतलब और पर अपने मन के भाव प्रकट करना है। जिस का मनोभाव जितने ही अधिक लोग समझ सकेंगे उसका प्रयत्न और परिश्रम उतना ही अधिक सफल हुआ समझा जायगा। जितने बड़े बड़े लेखक हो गये हैं प्रायः सभी सीधी सादी और बहुजन-बोधगम्य भाषा के पक्षपाती थे।

आज कल कुछ लेखक तो ऐसी हि लिखते हैं जिसमें संस्कृत शब्दों की प्रचुर रहती है। कुछ लोग संस्कृत, अंगरेज़ी, फ़ार अरबी आदि सभी भाषाओं के प्रचलित श का प्रयोग करते हैं। कुछ लोग विदेशीय श का बिलकुल ही प्रयोग नहीं करते ; ढूंढ कर ठेठ हिन्दी-शब्द काम में लाते हैं। मे राय में शब्द चाहे जिस भाषा के हों यदि प्रचलित शब्द हैं और सब कहीं बोल चाल आते हैं तो उन्हें हिन्दी के शब्द-समूह के बा समझना भूल है। उनके प्रयोग से हिन्दी कोई हानि नहीं, प्रत्युत लाभ है। अरबी-फ़ार के सैकड़ों शब्द ऐसे हैं जिनको अपढ़ आद तक बोलते हैं। उनका बहिष्कार किसी प्रका सम्भव नहीं।

१६—उन्नति के उपाय

तीस चालीस वर्ष पहले हिन्दी-साहित्य क जो अवस्था थी उससे इस समय की अवस् अवश्य अच्छी है। परन्तु इस देश की अन राग्यशालिनी भाषाओं की अपेक्षा अब भ

वह अत्यन्त हीनावस्था में है। हिन्दी भाषा-भाषियों के लिये यह बड़े ही परिताप की बात है। जैसा ऊपर एक जगह कहा जा चुका है, पुस्तकों ही के द्वारा ज्ञानवृद्धि होती है। और जो समाज या जो जन-समुदाय जितना ही अधिक ज्ञान सम्पन्न होता है वह लौकिक और पारलौकिक दोनों विषयों में उतनी ही अधिक उन्नति कर सकता है। अतएव अपनी सामाजिक, नैतिक, धार्म्मिक आदि हर तरह की उन्नति के लिए सब विषयों की अच्छी अच्छी पुस्तकों की हिन्दी में बड़ी ही आवश्यकता है। हिन्दी में इसलिये कि यही हमारी मातृभाषा है। इसी भाषा में दी गई शिक्षा से समाज का सर्वाधिक अंश लाभ उठा सकता है। इसी भाषा में वितरण किये गये ज्ञान का प्रकाश गांव गांव, घर घर पहुंच सकता है। यही हमारी भाषा है; यही हमारी माताओं की भाषा है; यही हमारी बहनों की भाषा है; यही हमारे बच्चों की भाषा है। अँगरेज़ी या अन्य किसी भाषा में दी गई शिक्षा से जितना लाभ पहुंच सकता है उससे सैकड़ों गुना अधिक लाभ मातृभाषा में दी गई शिक्षा से पहुंच सकता है।

किसी भी भाषा में नये नये ग्रन्थ पहले ही से नहीं निकलने लगते। जैसे जैसे शिक्षाप्रचार और ज्ञानोन्नति होती जाती है वैसे ही वैसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ भी बनते जाते हैं। अतएव जब तक नये नये ग्रन्थ निकलने का समय न आवे तब तक हमें चाहिए कि हम अँगरेज़ी और संस्कृत आदि भाषाओं के अच्छे अच्छे ग्रन्थों का सरल हिन्दी में अनुवाद करके अपने देश और अपने जन-समुदाय का कल्याण साधन करें। इन भाषाओं के साहित्य में अनन्त ज्ञान-राशि भरी हुई है। उसकी प्राप्ति से जब हम लोगों की विद्याभिरुचि और ज्ञान-सम्पन्नता बढ़ेगी तब हम भी नाना विषयों के नये नये ग्रन्थ लिख कर अपने साहित्य की पुष्टि करेंगे। हां, जो लोग इस समय भी, अपनी उन्नत शिक्षा और विशद विद्या के कारण, नये नये ग्रन्थ लिख सकते हैं उनके लिये भाषान्तर कार्य्य में प्रवृत्त होने की तादृश आवश्यकता नहीं। परन्तु प्रत्येक भाषा के साहित्य में कुछ न कुछ विशेषता होती है। अतएव भिन्न भाषाओं के विशिष्ट ग्रन्थों के अनुवाद की आवश्यकता भी सदा बनी रहती है। अँगरेज़ी बहुत उन्नत भाषा है। परन्तु उसमें भी अब तक प्रति वर्ष अन्य भाषाओं की पुस्तकों के सैकड़ों अनुवाद निकलते हैं।

हमारी भाषा की शिक्षा और हमारे साहित्य की उन्नति के विषय में गवर्नमेंट और विश्व-विद्यालय का जो कर्त्तव्य है उसके पालन में यदि एक भी दोष न हो, एक भी त्रुटि न हो, एक भी भूल न हो तो भी उस मार्ग से हमारे साहित्य की सर्व्वाङ्गीण उन्नति नहीं हो सकती। ऐसी उन्नति का होना एकमात्र हमारे ही हाथ में है। उद्योग करने से हमीं अपने साहित्य को उन्नत कर सकते हैं और उद्योग न करने से हमीं उसे रसातल पहुंचा सकते हैं। और प्रान्तों के राजा, महाराजा, तअल्लुक़ेदार और धनी जन अपनी मातृ-भाषा के लिए लाखों रुपये खर्च करते हैं। वे जानते हैं कि अज्ञानों को सज्ञान करना, अशिक्षितों को शिक्षा देना और ज्ञान प्रसार के प्रधान साधन उत्तमोत्तम ग्रन्थों के रचयिताओं को उत्साहित करना पुण्य-कार्य्य है। परन्तु, बड़े दुःख की बात है, इस प्रान्त में ऐसे एक ही दो रत्नाकर निकलेंगे जो इस सम्बन्ध में अपना कर्त्तव्य पालन करते हों। हिन्दी की वर्त्तमान हीनावस्था में बहुत कम लोग साहित्य-सेवा का व्यवसाय करके सुख से जीविका-निर्वाह कर सकते हैं। अतएव साहित्य-सेवकों के लिए उत्साहदान की बड़ी आवश्यकता है।

परन्तु सबसे बड़ी आवश्यकता एक और ही बात की है। हम लोगों में अपनी मातृभाषा के प्रेम की बहुत कमी है। जिन्होंने अंग्रेज़ी की उच्च शिक्षा पाई है—जो संस्कृत के उत्कृष्ट विद्वान हैं—वे हिन्दी का अनादर करते हैं। यदि यह इसलिए कि हिन्दी भिखारिनी है तो इसके एकमात्र उत्तरदाता हमीं हैं। इसका पाप एकमात्र हमारे ही सिर है। जो मनुष्य अपनी माता का अनादर करता है, जो मनुष्य रेशमी परिच्छद पहन कर चीथड़ों में लिपटी हुई अपनी माता की तरफ घृणाव्यञ्जक कटाक्ष करता है, जो मनुष्य समर्थ होकर भी अपनी माता का उद्धार आपदाओं से नहीं करता उसे और कुछ नहीं तो क्या लज्जा भी न आनी चाहिए? माता के बिना मनुष्य का काम केवल बाल्यावस्था में नहीं चल सकता, परन्तु मातृभाषा के बिना तो किसी भी अवस्था में मनुष्य का काम नहीं चल सकता। इसीसे माता और मातृभाषा की इतनी महिमा है। अतएव हमारे उच्च शिक्षा पाये हुए भाइयों को चाहिए कि वे हिन्दी लिखने और पढ़ने का अभ्यास करें, हिन्दी के साहित्य को उन्नत करने की चेष्टा करें; हिन्दी को नफ़रत की निगाह से देखना बन्द कर दें। यदि वे इस तरफ़ ध्यान दें तो न किसी और से कुछ कहने की आवश्यकता है, न किसी और से सहायता मांगने की आवश्यकता है, न किसी और से उत्साह पाने की आवश्यकता है। और कोई कारण नहीं कि वे अपनी भाषा की उन्नति का यत्न न करें। जिस अंग्रेज़ी शिक्षा का उन्हें इतना गर्व है उसके आचार्य्य, बड़े बड़े विद्वान् अंगरेज़, क्या अपनी मातृभाषा की सेवा नहीं करते? बड़े बड़े बङ्गाली, मदरासी, गुजराती, महाराष्ट्र और मुसलमान सिवीलियन तक क्या अपनी अपनी भाषाओं में पुस्तक रचना नहीं करते? क्या हिन्दी भाषाभाषियों की उच्च शिक्षा में सुरख़ाब का पर लगा हुआ है? यदि हमें अंगरेज़ी से अतिशय प्रेम है तो हम ख़ुशी से उसमें अपने विचार प्रकट कर सकते हैं, ले[ख] लिख सकते हैं, पुस्तक प्रणयन कर सकते है[ं]; परन्तु क्या वर्ष छः महीने में एक आध लेख [या पुस्तक] हिन्दी में लिख डालना हमारे लिए कोई ब[ड़ा] पाप है? हमें याद रखना चाहिए कि अंगरे[ज़ी] लेखों और पुस्तकों से समाज या देश के ब[हुत] ही थोड़े लोगों को लाभ पहुंच सकता है[।] अतएव उसकी तरफ़ कम और अपनी निज [की] भाषा की तरफ़ हमें विशेष सदय होना चाहिए[।] जिस समाज में हम उत्पन्न हुए हैं—जिस प्रा[न्त] या देश में हमने जन्म लिया है—उसका विशे[ष] कल्याण उसीकी भाषा को उन्नत करने से [हो] सकता है। जिस समाज और जिस देश [की] बदौलत हम सभ्य, शिक्षित और विद्वान् हुए [हैं] उसे अपनी सभ्यता, शिक्षा और विद्वत्ता [का] लाभ न पहुंचाना घोर कृतघ्नता है। इस कृतघ्न[ता] के पाश से हम तब तक नहीं छूट सकते [जब] तक अपनी निज की भाषा में पुस्तक-रचना औ[र] समाचारपत्र सम्पादन करके अपनी सभ्य[ता] अपनी शिक्षा और अपनी विद्वत्ता से सारे ज[न]समुदाय को लाभ न पहुंचावें।

आइए तब तक हमीं लोग, अपनी अल्पश[क्ति] के अनुसार, कुछ विशेषत्वपूर्ण काम कर दिख[ाने] की चेष्टा करें। 'हमीं' से मेरा मतलब, शिक्षि[तों] के मतानुसार, उन अल्पज्ञ और अल्प शिक्षि[त] जनों से है जो, इस समय, हिन्दी के साहि[त्य] सेवियों में गिने जाते हैं और जिनमें मैं मैं अ[पने] को सबसे निकृष्ट समझता हूं। पिछले साहि[त्य] सम्मेलन ने क्या काम किया और क्या न कि[या] इस पर विचार करने की यहां, इस लेख [में,] आवश्यकता नहीं। उसकी तो रिपोर्ट भी [छप] कर अब तक प्रकाशित नहीं हुई। आवश्यक[ता] इस समय हिन्दी में थोड़ी सी अच्छी अच[्छी] पुस्तकों की है। विभक्तियां मिलाकर लिख[नी] चाहिए या अलग अलग; पाई, गई और आई आदि शब्दों में केवल ई-स्वर लिखना चाहि[ए]

या ई-युक्त यकार; पर-सवर्ण-सम्बन्धी नियम का पालन करना चाहिए या केवल अनुस्वार से काम निकाल लेना चाहिए—ये तथा और भी ऐसी ही अनेक बातों पर विचार करने की भी आवश्यकता है। परन्तु तदपेक्षा अधिक आवश्यकता उपयोगी विषयों की कुछ पुस्तकें लिखने की है। आइए, हमलोग मिलकर भिन्न भिन्न विषय की एक एक पुस्तक लिखने का भार अपने ऊपर ले लें; और एक वर्ष बाद, उसकी छपी हुई या हस्तलिखित कापी अगले सम्मेलन में उपस्थित करके यह दिखला दें कि अपनी मातृभाषा हिन्दी पर हमारा कितना प्रेम है और उसकी सेवा करना हम कहां तक अपना कर्त्तव्य समझते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि, अल्पज्ञता के कारण, हमसे यह काम उतना अच्छा न हो सकेगा जितना अच्छा कि संस्कृत और अंगरेज़ी के पारङ्गत विद्वानों से हो सकता। परन्तु इसके लिए हमें दोष नहीं दिया जा सकता। मुझे आशा है कि हमारी दोषपूर्ण रचनाओं को देख कर—सन्तान के समान अपनी प्यारी मां से सौंपी हुई भाषा की दुर्दशा को देख कर—अंगरेज़ी और संस्कृत के हिन्दी भाषाभाषी विद्वानों को हम पर, और हम पर नहीं तो अपनी मातृ-भाषा पर, अवश्य दया आवेगी और वे अवश्य ही उसके उद्धार का कार्य्य आरम्भ कर देंगे। बस, मुझे अब इतना ही प्रार्थना करनी है कि—

> “अनुत्तमांशिमस्यादि किंचिद्गुण-
> मज्ञानतो वा मतिविभ्रमाद्वा ।
> औदार्य्य-कारुण्य-विशुद्धबुद्धि-
> र्मनोऽभिमानप्रभिमार्ज्जनं तत् ॥”

हिन्दी की वर्त्तमान दशा।

[लेखक-श्री साहित्याचार्य्य पाण्डेय रामावतार शर्म्मा, एम्० ए०]

"या शिल्पशास्त्रादि पयो महार्हं
मंदुग्धे योजितबुद्धिवत्सैः ।
वैज्ञानिके विश्वहिताय शश्वत्
भारती कामदुघामुपासे ॥"

वाङ्-मयमहार्णवे ।

बारहवीं शताब्दी में, अर्थात् आज से कोई सात सौ वरस पहले, कन्नौज के राजा जयचन्द्र के समय में नैषधकार श्रीहर्ष कवि थे। प्रायः इसी समय में दिल्ली के राजा पृथुराज अथवा राय-पिथौरा की सभा में चान्द कवि हुए थे। इनकी कविता जिस प्राकृत में है उसी को किसी प्रकार हिन्दी भाषा का एक पूर्वरूप कह सकते हैं। उस समय से आज तक सात सौ वरस में कितने ही परिवर्तनों के बाद आज खड़ी हिन्दी कुछ ऐसी उठ खड़ी हुई देख पड़ती है कि अब इसमें गद्य-पद्यात्मक साहित्य निकल चला है। और आशा है कि इस भाषा के बोलनेवाले और समझनेवाले—जिनकी संख्या दस सात करोड़ से ऊपर ही होगी—यदि ठीक ठीक वर्ते और शक्ति का व्यर्थ व्यय न कर उत्साहपूर्वक तन मन धन से लगें तो थोड़े ही दिनों में हिन्दी का साहित्य उपयोगी ग्रन्थों से पूर्ण हो जायगा। हिन्दी की जो दशा हो चुकी है उसका वर्णन करना इस प्रबन्ध का उद्देश्य नहीं है। और वस्तुतः इसकी प्राचीन दशा कुछ ऐसी छिन्न भिन्न है कि इसके विषय में बहुत कहने से कुछ लाभ भी नहीं है। अनेक अपभ्रंशों के रूप में आज तक यह भाषा रही है; थोड़े ही दिनों से खड़ी भाषा का रूप धारण कर अब कुछ कार्य के योग्य हुई है। इस लिये यहाँ खड़ी या पक्की हिन्दी की वर्त्तमान दशा के विषय में ही कुछ कहने का उद्योग किया जा रहा है जिससे इस भाषा ने क्या कर लिया है और क्या इसका कर्त्तव्य है, इस विषय का कुछ परिचय हो जाय।

अब यहाँ हिन्दी एक [illegible] की भाषा हो चली है। इस हिन्दी और उर्दू में प्रायः नाम ही मात्र का भेद है। हिन्दी बोलनेवाले उर्दू-रूपवाली हिन्दी को भी खूब समझ लेते हैं, और उर्दूवाले इसके हिन्दी रूप को भी समझते हैं। इस लिये पञ्जाब से लेकर [illegible] बंगाल तक और नागपुर से लेकर [illegible] तक हिन्दू मुसलमान आदि सभी [illegible] की [illegible] भाषा अर्थात् हिन्दी-उर्दू हिन्दी ही है [illegible] घर में वे अपनी बोली, [illegible] आदि [illegible] शब्दों में [illegible] हैं। [illegible] बड़े बड़े [illegible] और [illegible] की जो एक हिन्दी-उर्दू है [illegible] रहा है [illegible] तो कितने ही [illegible] पर यदि उन [illegible] में कुछ [illegible] हो जाते और कुछ [illegible] और [illegible] इसके [illegible]

मनुष्यों की भाषा विशेषतः-ऐसे मनुष्यों की भाषा जिनमें से कितने ही बड़े लाट की सभा के सदस्य हैं और हाईकोर्ट के जज हैं तथा श्वेतद्वीप की पार्ल्यमेण्ट में भी बैठने का प्रयत्न कर रहे हैं और एकआध पार्ल्यमेण्ट की सीढ़ियों तक पहुंच भी गये हैं—ऐसी भाषा अभी ऐसी दशा में है कि इसमें अभी तक न तो एक भी छोटे से छोटा विश्वकोष है, न सैकड़ों शास्त्रों में से एकआध के अतिरिक्त किसी शास्त्र के ग्रन्थ ही हैं। जिन एकआध शास्त्रों के ग्रन्थ हैं भी सो अभी बच्चों के खेल ही के सदृश हैं। अनेक कोटि बालकों की मातृरूपा जो यह भाषा है इसके तुच्छ भाण्डार में वैज्ञानिक और दार्शनिक आदि ग्रन्थों की चर्चा कौन करे, स्वतन्त्र कोई उत्तम काव्य, नाटक आदि भी नहीं हैं। उपन्यासों की संख्या केवल कुछ बढ़ी चढ़ी सी देख पड़ती है। पर इन उपन्यासों में न तो कोई नवीनता है, न कोई उपदेश है और न विशेष कोई साहित्य के गुण ही हैं। कुछ थोड़ी सी हाथ की गर्मी से गलने पर नाक में उड़कर लगनेवाली और बेहोशी देनेवाली मोतियों की और पाकेट में रखने लायक कमन्दों की कहानियां जहां तहां भरी हुई हैं जिनसे पुलिस के मारे आजकल चोरों का भी कोई काम नहीं चल सकता।

साहित्य की अभी यही दशा है कि उपयोगी ग्रन्थ न तो पहले ही से बने हुए हैं और न आज ही कोई बनाने की चेष्टा कर रहे हैं। आगे की आशा कुछ की जाय तो किसके बल से ?। कौन ऐसा सभ्य देश है जहां मातृभाषा में नये और पुराने ग्रन्थों के अनुसन्धान के लिये और उत्तमोत्तम ग्रन्थों के निर्माण के लिये अनेकानेक सभाएं लाख लाखों और करोड़ों रुपयों के खर्च से नहीं स्थापित हैं ? क्या भारतवर्ष अपने को सभ्य नहीं कहता है ? क्या इतर भारत को भोग कार्यक्षेत्र नहीं कहते आये हैं ? यदि यह स्पष्ट विदित हो जाय कि यह भारतवर्ष घोर-

अविद्या के अन्धकार में रहनेवाले अनार्य भूमि हो चली है तब तो फिर इस भू वर्णन के समय अन्य सभ्य जातियों का लेना बड़े भारी प्रायश्चित्त का काम होगा यदि यह वही भूमि है जहां याज्ञवल्क्य, पाणि आर्यभट्ट, भास्कर आदि अनेक दार्शनिक वैज्ञानिक हुए थे और यदि वन्य-रुधिर का कुछ समावेश होने पर भी आर्य-रुधिर का भी अंश इस भूमि में रह गया है तो इस के निवासियों को यह कह देना सभी देश पियों का परम कर्त्तव्य है कि संस्कृत हि आदि देशभाषाओं को जिस अवस्था इन लोगों ने रक्खा है इससे किसी स जाति में ये मुंह दिखाने लायक नहीं देशभाषा में दर्शन विज्ञान आदि के उत्तमो ग्रन्थों के निर्माण के लिये यदि सौ सभाएं भारत में होतीं तोभी यहां के मनुष्य अन्य स जातियों से कुछ बढ़े चढ़े नहीं कहे जा सक थे। परन्तु यहां तो एक भी ऐसी समिति न है जहां वर्ष में दो एक बार अच्छे अच्छे वि एकत्र हों और विद्या प्रचार, ग्रन्थ निर्माण के विषय में पूर्ण विचार कर आपस में का बांट कर अपने अपने घर जांय और पुनः पु सम्मिलित हो कर देखें कि उनमें से किस कितना कार्य किया और जब इन के ग्रन्थ स्पान आदि तैयार हो जांय तो उन्हें प्रकाशि करने, पढ़ने, पढ़ाने आदि का पूर्ण प्रब प्रबन्ध किया जाय। दो चार नगरों में जो सभ हैं वे तो केवल सड़ीगली सौ पचास वर्ष दोहा चौपाई की पोथियों के अन्वेषण में दने की डिक्शनरियों के निर्माण में देश समय, शक्ति, उत्साह और धन का व्यय कर रह हैं। और जो एकआध सामयिक सम्मेलन हैं उ भी न तो इतर दो की सहायता है और न अ कोई ऐसा मार्ग ही सूझता है जिससे राज

को अभिमानवाली, हिन्दी बोलनेवाली, भारतीय जातियों में असली विद्या का प्रचार हो और घोर अविद्या का नाश हो।

अविद्या का कुछ ऐसा स्वभाव है कि जिन पर इसका बोझ रहता है वे इसे बड़ी प्रसन्नता से ढोते हैं। और इसे महाविद्या के सदृश देवी समझ कर पूजते हैं। कुछ तो ऐसा ही सब बोझा ढोने वालों का स्वभाव होता है। काल पाकर भारी से भारी बोझ भी हलका ही ज्ञान पड़ता है। शरीर पर हजारों मन के वायु का बोझ इसी अभ्यास के कारण कुछ भी नहीं मालूम पड़ता। ऐसे ही अविद्या का बोझ भी अविद्या के भक्तों को कभी नहीं सताता। इस बोझे का एक और भी बड़ा भारी गुण है कि इसके भक्त इसकी गुरुता को नहीं समझते। इतना ही नहीं, कुछ दिनों में इससे बड़ा प्रेम करने लगते हैं। सुनने में आया है कि बेतिया के पास कुछ ऐसी भूमि है जहां लोगों का गला बहुत फूल आता है। इस व्याधि को घेघा कहते हैं। उस अद्भुत भूमि के लोग बिना घेघा के मनुष्य को देख कर बहुत ही हँसते हैं और कहते कि यह कैसे मनुष्य हैं जिनके गले में उंधनी नहीं है। ऐसे ही अविद्या के बोझवाले वस्तुत: विद्या ही को व्यर्थ का बोझ समझते हैं और बिना अविद्या के पुरुषों को नास्तिकता आदि में पचते हुए समझते हैं। जिस भूमि के अधिकांश मनुष्य ऐसी अविद्या-व्याधि से पीड़ित हों उस भूमि का सुधार सहज में नहीं हो सकता। ऐसी भूमि के सुधार में कितनी कठिनाइयां हैं सो तो उत्तर भारत के नेताओं को विदित ही है। अफीम की पिनक में समाधि का आनन्द लेनेवाले या माड़ी घुंघरू पहिन के नाचनेवाले महात्माओं के आराम के लिये कंम खम्भ का मन्दिर बनवा देना या तीर्थ के कौओं की नियमाओं को ऋण करके भी पालने वाले बाबू लोगों के लिये सरायखाना बनवाने में कांड़ी खर्च कर देना यहाँ के लोगों के लिये आसान सी बात है। पर विज्ञान की वृद्धि में ऐसे दुर्व्ययों का सहस्रांश भी निकाल लेना बड़े बड़े वक्ताओं और नेताओं के लिये भी कठिन काम है। पर काम कठिन हो या सहज, जब छोटी बड़ी सभा सम्मेलन आदि देश में हो रही हैं और देशवाले अपनी सभ्यता के गौरव पर इतने जोर से चिल्ला रहे हैं तो आज उनका क्या कर्त्तव्य है यह हमें कहना ही पड़ेगा।

शिक्षा के तीन अङ्ग हैं—संग्रहाङ्ग, संघटनाङ्ग और कार्याङ्ग। जैसे प्राणिमात्र का यह धर्म है कि वह भोज्य पदार्थों को बाहर से अपने अङ्गों में रखता है और उनसे अपने रुधिर आदि की पुष्टि कर फिर बड़े बड़े कार्यों को करता है, वैसे ही प्रत्येक जीवित भाषा की जीवरक्षा और बलवृद्धि नवीन प्राचीन बाहरी विज्ञानों का संग्रह कर अपने शरीर में पचा लेने ही से हो सकती है। इसी बाह्य विज्ञान के संचय को संग्रहाङ्ग कहते हैं। बाहर से लाये हुए विज्ञानों का जब तक ठीक पचाया न जाय तब तक उनके संग्रह का कुछ फल नहीं। भात, दाल, पूरी, मिठाई आदि मुख के द्वारा पेट में जाकर पचें तभी बल को बढ़ा सकते हैं। इन्हें केवल माथे पर रख लेने से सिवा कौओं के झुकने के अतिरिक्त और कोई फल नहीं हो सकता। संगृहीत विज्ञानों को मुख के द्वारा पेट में पहुंचा कर उससे हाथ पैर आदि की पुष्टि करने को संघटनाङ्ग कहते हैं। हाथ पैर आदि की पुष्टि होने पर फिर नये विज्ञान आदि का आविर्भाव करना और प्राचीन विज्ञानों से पूर्ण काम लेना इसीको कार्याङ्ग कहते हैं। अभी विद्या का संग्रहाङ्ग तो कुछ कुछ कितने ही समय से भारत में परिदोषित हो रहा है, पर और दोनों अङ्ग ऐसी हीनावस्था में हैं कि भारतीय शिक्षा को यदि इन दोनों अङ्गों से सर्वथा विकल कहें तो कुछ अत्युक्ति न होगी। अङ्गरेज़ी शिक्षा भारत में खूब हो रही है इसमें इसमें कुछ सन्देह नहीं। पर यह शिक्षा भी

वैज्ञानिक और दार्शनिक अंशों में ऐसी पूर्ण नहीं है जैसी काव्य साहित्य आदि के अंशों में है। अङ्गरेजी विज्ञान के जो भोज्य पदार्थ भारत-वासियों के यहां आते भी हैं वे कहीं बाहर ही पड़े पड़े बासी हो जाते हैं। **भारत-सरस्वती का मुख संस्कृत है।** इस मुख तक तो यह विज्ञान अभी पहुंचा ही नहीं है। जब तक मुख में नहीं पड़ेगा और मुख के द्वारा उपयुक्त होकर अङ्गों के सदृश, हिन्दी, बंगला, तामील, मराठी आदि भाषाओं में बल नहीं पहुंचावेगा तब तक भारतीय शिक्षा का संघटनाङ्ग कैसे ठीक हो सकता है? ज्योतिगणित, दर्शन, वैद्यक आदि जो कुछ भारत-सरस्वती के मुख रूप संस्कृत में थे उन्हींके कारण तो कुछ बल और प्रतिष्ठा समस्तदेश की जहां तहां आज भी हो रही है। हिन्दी बंगला आदि जो भारत-सरस्वती के हाथ पैर हैं इनके रगों और पुट्ठों में संस्कृत के रुधिर की ऐसी आवश्यकता है कि बिना उसके वैज्ञानिक और दार्शनिक शब्द ही नहीं बन सकते। एक अङ्ग यदि कुछ शब्द गढ़ ले तो भी वह दूसरे अङ्गों के अनुकूल नहीं होता। इसलिये जैसे संग्रहाङ्ग के लिये अङ्गरेजी शिक्षा की आवश्यकता है वैसे ही संघटनाङ्ग के लिये संस्कृत की उन्नति की आवश्यकता है। ऐसी अवस्था में संस्कृत हिन्दी आदि भारतीय भाषाओं में शिक्षा प्रचार का ऐसा आरम्भ होना चाहिये कि जिससे हमारे देश में भी विज्ञान का वैसा ही पूर्ण प्रचार हो जैसा जर्मनी, इङ्गलैण्ड आदि अन्यदेशों में हो रहा है, इस महायज्ञ के लिये बड़े बड़े विश्वविद्यालयों की अपेक्षा है। पर सुनने में आता है कि विश्वविद्यालय तो ऐसे बनेंगे जहां बाहरी भाषाओं के पढ़ने से और माला भटकाने से प्रायः कुछ समय ही नहीं बाकी रहेगा जिसमें विज्ञान की चर्चा हो।

ऐसे बड़े कार्य में देश के जितने नेता हैं उन सबों को मन, वचन, कर्म से लग जाना चाहिये था। पर पार्लमेंट में आसन खोजने से और मज़हबी गालोगलौज से कुछ भी समय बचे तब तो विचारे देश के नेता इधर दृष्टि दें। जो हो, कार्य यही उपस्थित है कि किसी सम्मेलन में विद्वानों को एकत्र कर एकबार अत्यन्त आवश्यक निर्मेय ग्रन्थों की सूची बनाकर आपस में कार्यभार बांटकर जैसे हो सके—प्राण देकर भी—इन ग्रन्थों के निर्माण, प्रकाश और प्रचार के लिये जिनसे हो सके वे यत्न करें। एक ऐसी सूची बहुत दिन हुए मैंने काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा को, बाबू श्यामसुन्दरदास के द्वारा दिया था। उससे कुछ भिन्न, परन्तु उसी प्रकार की सूची यहां आपके सामने भी उपस्थित करता हूं। जहां तक हो सकता है इन ग्रन्थों के निर्माण और प्रकाश के लिये और भी यत्न हो रहे हैं। पर बड़े बड़े सज्जन जो सम्मेलन में उपस्थित हैं यदि वे इधर दृष्टि करेंगे तो सम्भव है कि कार्य में शीघ्र अच्छी सफलता हो।

प्रायः सौ विषयों की सूची आगे दी हुई है। इन विषयों पर छोटे बड़े ग्रन्थ बनें और उनके प्रकाश और प्रचार के लिये पूर्ण प्रबन्ध किया जाय तो देश का बड़ा उपकार हो।

ज्योतिर्विद्या
भूगर्भशास्त्र
भूस्थिति
सागरस्थिति
प्राचीन उद्भिद
प्राचीन प्राणी
उद्भिद शास्त्र
प्राणिशास्त्र
प्राचीन तत्त्वसंग्रह
मनुष्य शास्त्र
मनुष्य-जाति शास्त्र
ध्वनि शास्त्र
प्रभा शास्त्र
ताप शास्त्र
अयस्कान्त शास्त्र
विद्युत्शास्त्र
यन्त्र शास्त्र
औषध वैद्यक
शल्य वैद्यक
स्वास्थ्य शास्त्र
पशु वैद्यक
अस्थि विभाग
शरीर विभाग
अङ्क गणित
बीज गणित
क्षेत्र गणित
कोण गणित
कलन गणित
त्रिकोण मिति
हार्मनिक गणित
भेकूर गणित
गति गणित
स्थिति गणित
भाव शास्त्र

३५ आचार शास्त्र
३६ न्यायशास्त्र
३७ रेखागणित
३८ नीति शास्त्र
३९ अर्थ शास्त्र
४० व्यवहार शास्त्र
४१ समाज शास्त्र
४२ ईश्वरवाद
४३ धर्मपरीक्षा
४४ मनस्तत्त्व
४५ मतपरीक्षा
४६ ज्ञान परीक्षा
४७ पाक विद्या
४८ कृषि विद्या
४९ वयन विद्या
५० वास्तु विद्या
५१ नाद विद्या
५२ रञ्जन विद्या
५३ आलोक चित्रन
५४ उत्करण विद्या
५५ मूर्त्ति निर्माण
५६ आयुध विद्या
५७ मल्ल विद्या
५८ नाट्य विद्या
५९ जलयान विद्या
६० स्थलयान विद्या
६१ वायव्ययान विद्या
६२ खनि विद्या
६३ जीविका भेद
६४ क्रीड़ा भेद
६५ समय निर्णय
६६ भारत का इतिहास
६७ इङ्गलैंड का ,,

६८ अमेरिका का इतिहास
६९ आफ्रिका का ,,
७० फ्रांस का ,,
७१ जर्मनी का ,,
७२ ग्रीस का ,,
७३ इटली का ,,
७४ नेदरलैंड का ,,
७५ पुर्त्तगाल का ,,
७६ रोम का ,,
७७ रशिया का ,,
७८ जापान का ,,
७९ स्पेन का ,,
८० टर्की का ,,
८१ चीन का ,,
८२ भाषा तत्त्व
८३ लिपि का इतिहास
८४ व्याकरण तारतम्य
८५ संस्कृत साहित्य
८६ भारत ,,
८७ अरब ,,
८८ फ़ारस ,,
८९ ग्रीस ,,
९० रोम ,,
९१ अङ्गरेज़ी ,,
९२ जर्मन ,,
९३ फ्रांस ,,
९४ इटली ,,
९५ रशिया ,,
९६ स्पेन ,,
९७ चीन ,,
९८ जापान साहित्य
९९ वाणिज्य
१०० अलङ्कार

हिन्दी की वर्त्तमान अवस्था।

[लेखक—पण्डित जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी]

व र्त्तमान हिन्दी बृजभाषा का रूपान्तर है। ब्रजभाषा रूप में इसके पद्यभाग की उन्नति हुई थी और अब गद्य भाग हो रही है। उस समय गद्य लिखने परिपाटी प्रायः नहीं के बराबर थी। से जो कुछ लिखना होता था वह पद्य हीं लिखता था। यहां बात संस्कृत भी थी। पद्य की चाल यहां तक बढ़ी कोश, ज्योतिष और वैद्यक जैसे शुष्क र नीरस विषयों की रचना भी पद्य में हो । पर अब हवा बदल गयी है। अब गों का ध्यान गद्य की ओर गया है। अब लिखने की ही चाल अधिक है। आशा गेड़े दिनों में इसकी अच्छी उन्नति हो गी।

गजकल की हिन्दी के आदि लेखक कवि- लल्लूलाल जी हैं। उन्होंने 'प्रेमसागर' की पुस्तक लिख कर हिन्दी गद्य की नींव ी है। इसके बाद राजा लक्ष्मणसिंह ने न्तला" का गद्य-पद्य-मय हिन्दी अनु- किया। उस समय तक इस नयी हिन्दी चार अच्छी तरह नहीं हुआ था। पीछे य भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का जन्म । आपके समय में इसका अधिक प्रचार । आपने मानों इसमें जान डाल दी। कल जिस हिन्दी में हम लिखते पढ़ते हैं, तथा समाचार पत्र निकलते और पुस्तकें बनती हैं, वह भारतेन्दु जी की ही चलायी है। यदि भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का जन्म न होना तो हिन्दी जहाँ की तहाँ विलीन हो जाती और आज मुझे इसकी वर्त्तमान अवस्था पर निबन्ध लिखने का अवसर न मिलता।

लल्लूलाल जी ने हिन्दी का जो नया मार्ग निकाला था, उसे राजा लक्ष्मणसिंह ने साफ़ सुथरा किया और भारतेन्दु उस पर चले तथा औरों को उन्होंने अपना साथी बनाया। अथवा यों कहिये कि लल्लूलाल ने हिन्दी की मूर्त्ति गढ़ी, राजा लक्ष्मणसिंह ने उसे खराद पर चढ़ाया, भारतेन्दु ने उसमें केवल प्राण-दान ही नहीं किया वरञ्च उसे वस्त्रालङ्कार से भूषित भी किया। इसीसे भारतेन्दु जी वर्त्त-मान हिन्दी-साहित्य के जन्मदाता कहे जाते हैं।

हिन्दी की दो अवस्थाएँ हैं—बाहरी और भीतरी।

बाहरी अवस्था।

बाहरी अवस्था तो सन्तोषजनक है। इसका प्रचार इस समय देशव्यापी हो रहा है। हलक़ से बोलनेवाले अरब और चीं चीं करने वाले चीनी तथा विचित्र बोली बोलने वाले मद्रासी और अजीब लहजावाले पञ्जाबी वग़ैरः हिन्दी में ही अपने अपने मन का भाव प्रकट करते हैं। बङ्गाल में भी हिन्दी का प्रचार बढ़ता जाता है। वहाँ के नाटक तथा

उपन्यास-लेखक अपनी अपनी पुस्तकों में चाहे जिस कारण से हीं हो हिन्दी का बहुधा स्थान देते हैं। इस काम में वह हिन्दी भाषा-भाषियों से सहायता नहीं लेते। वह स्वयं हिन्दी लिख कर प्रसन्न होते हैं कि "आमी बेश हिन्दी लिखी" अर्थात् मैं अच्छी हिन्दी लिखता हूं। वह गद्य ही नहीं पद्य भी लिखते हैं। नमूने के लिए एक गीत नीचे उद्धृत किये देता हूं। यह ऐसे वैसे आदमी का नहीं, स्वयं बङ्गाल के "नटकुल-चूड़ामणि" बाबू गिरीशचन्द्र घोष का बनाया है। अच्छा अब वह गीत सुनिए—

"राम रहीम ना जूदा करो।
दिल को साँचा राखो जी॥
हाँ जि हाँ जि करते रहो।
दुनियादारी देखो जी॥
जब येसा तब तेसा होये।
सदा मगन में रहेना जी॥
मट्टि में ईया वदन वनि हाय।
ईयाद हर दम राखना जी॥
जब तक सेको फरक रहो भाई।
इस इस काम में माना जी॥
धे या जाने कब दम छुटेगा।
उसका नेहि ठिकाना जी॥
दुशमन तेरा साथ फिरता।
देखो भाई सब सको जी॥
दुशमन से बांचाने उयाले।
उन बिन एाय नेई कोइजी॥"
(आबू हुसेन)

यह तो हुआ पद्य। अब ज़रा गद्य की भी बानगी देख लीजिये। सरकस के विज्ञापनों में यह लिखते हैं—"नामजादा पालवान घोड़ा का पीठ में नई नई तमाशा और खेल दिखा-येंगे इत्यादि।" यह शुद्ध हिन्दी लिखते हैं या अशुद्ध यह दिखाने का मेरा उद्देश्य यहाँ नहीं है। मेरा कहना केवल यही है कि वह हिन्दी लिखते हैं और हिन्दी का ज्यों प्रचार है।

अशुद्ध ही सही, लेकिन लिखते तो हैं। भग-वान चाहेगा तो पीछे वह शुद्ध भी लिखने लगेंगे। यहाँ एक प्रश्न यह उठता है कि बङ्गाली लोग अपनी पुस्तकों में पञ्जाबी, गुज-राती, तेलगू आदि भाषाओं को स्थान न देकर हिन्दी को ही क्यों देते हैं? इसका कारण यह है कि हिन्दी सरल भाषा है। इसे अनायास सीख कर लोग अपना काम निकाल लेते हैं। और भाषाओं में यह बात नहीं है। इसके सिवा इसका कारण यह भी हो सकता है कि शायद वह हिन्दी को ही राष्ट्रभाषा होने के योग्य समझते हैं। क्योंकि अधिकांश भार-वासी ऐसा ही समझते हैं और उसके लि- चेष्टा भी कर रहे हैं।

प्रत्येक प्रान्त के विद्वान् इसकी उपयोगिता स्वी-कार कर चुके हैं और कर रहे हैं। सन् १९०९ ईस्वी में बड़ोदे में हिन्दीपरिषद् (Hindi conference) हुई थी। उसमें भी सब ने एक स्वर से हिन्दी को ही राष्ट्रभाषा माना था। स्वर्गीय रमेश-चन्द्र दत्त ने अपने भाषण में यहाँ कहा था

"If there is a language which will b accepted in a larger part of India, it i Hindi."

यदि कोई भाषा है जो भारत के अधिकांश भाग में स्वीकृत हो सकेगी तो वह हिन्दी है (Hindi confernce) हिन्दीपरिषद् के सभापति बम्बई के सुप्रसिद्ध विद्वान् डाक्टर भण्डारकर अपने जोड़ के एक ही मनुष्य हैं। उन्होंने कहा था—

"The honour of being made the com-mon language for inter-communication between various provinces must be given to Hindi. There does not seem to be much difficulty to make Hindi accep-ted by all throughout India."

अर्थात् "भारत के भिन्न भिन्न प्रान्तों के आपस में बात चीत करने के लिये साधारण भाषा होने का गौरव हिन्दी को अवश्य है

[सी]खना चाहिए। भारतवर्ष में सर्व्वत्र हिन्दी [का] प्रचार करने में मुझे अधिक कठिनता [द]खलायी नहीं पड़ती है।"

ग्वालियर के भूतपूर्व न्यायाधीश (चीफ़ [ज]स्टिस) राव बहादुर चिन्तामणि विनायक [वैद्य], एम.ए., एल एल.बी., ने कहा—[Hi]ndi is from every point of view by far [th]e most suitable language to be selec[te]d as the *Lingua-Franca* of India. [अर्था]त् हिन्दी ही सब प्रकार से भारत की [राष्ट्र]भाषा होने के योग्य है।

[ब]ङ्ग भाषा के प्रसिद्ध लेखक स्वर्गीय राय [बंकि]मचन्द्र चटर्जी बहादुर अपने "बङ्गदर्शन" [ना]मक मासिक पत्र के पाँचवे खण्ड में बङ्गा[लि]यों को सम्बोधन कर लिखते हैं—

"[इ]ंगरेजी भाषा द्वारा याहा हउक किन्तु [हि]न्दि शिक्षा ना करिले कोनो क्रमेई चलि वेना। [हि]न्दि भाषाय पुस्तक ओ वक्तृता द्वारा भार[तेर] अधिकांश स्थानेर मङ्गल साधन करिवेन। [केव]ल बांगला ओ इंराजी चर्चाय हइवे ना। [भारते]र अधिवासीर संख्यार सहित तुलना [करि]ले बांगला ओ इंरेजी कय जन लोक बोलिते [ओ] बुझिते पारेन? बांगलार न्याय ये हिन्दिर [उन्न]ति हइतेछे ना इहा देशेर दुर्भाग्येर विषय। [हिन्]दी भाषार सहाय्ये भारतवर्षेर विभिन्न [प्रदे]शेर मध्ये यांहारा ऐक्य बन्धन संस्थापन [कर]ते पारिवेन तांहाराई प्रकृत भारतबन्धु [नाम]े अभिहित हइबार योग्य। सकले चेष्टा [करु]न, यत्न करुन, यत दिन परेई हउक मनोरथ [पूर्ण] हइवे।"

[प्र]सिद्ध विद्वान् और देशभक्त श्रीयुत अर[विन्]द घोष अपने 'धर्म्म' नामक साप्ताहिक पत्र [में लि]खते हैं—"भाषार भेदे आर बाधा हइवे ना, [आप]न आपन मातृ भाषा रक्षा करियाओ साधा[रण भा]षा रूपे हिन्दी भाषा के ग्रहण करिया [ए]इ अभाव विनष्ट करिव।"

इसका अर्थ स्पष्ट ही है, इससे उलथा नहीं किया। सज्जनो! हिन्दू ही नहीं, परलोकवासी सय्यद अली बिलग्रामी जैसे मुसलमान विद्वानों ने भी हिन्दी को ही राष्ट्रभाषा होने के योग्य बताया है। धर्म्मान्धता तथा प्रादेशिक प्रेम के कारण कुछ लोग भलेही हिन्दी का विरोध करें पर सत्य की सदा जय है। आज हो या कल अथवा परसों, जय होगा तब हिन्दी ही भारत वर्ष की राष्ट्रभाषा होगी, इसमें सन्देह नहीं।

हिन्दी समाचार-पत्रों तथा पुस्तकों का प्रचार भी क्रमशः बढ़ रहा है। और विश्व-विद्यालयों की बात तो मैं जानता नहीं, पर कलकत्ता विश्वविद्यालय में तो बी० ए० तक हिन्दी की पहुंच हो गयी है आशा है आगे एम० ए० में भी पहुंच जाय।

इन बातों के देखने से हिन्दी की बाहरी अवस्था तो अच्छी मालूम पड़ती है। पर भीतरी अवस्था कैसी है यह भी जरा देख लेना चाहिए।

भीतरी अवस्था।

यह सन्तोषजनक नहीं है। भारतेन्दु के समय में इसकी जो दशा थी, आज कल भी प्रायः वैसी ही है। इसका कारण हिन्दीवालों की उदासीनता तथा हठ और दुराग्रह है। जिसने जो कुछ एक बार सीख लिया या जान लिया है वह उससे अधिक सीखने की [illegible] है। हिन्दीवाले भूल मानना तो जानते ही नहीं। न्याय अन्याय—उचित अनुचित—जो कुछ जिसके मुंह से निकल जाता है वह उसी को ठीक साबित करने में अपनी सारी चतुराई खर्च कर देता है। हिन्दीवाले मिलकर काम करना नहीं जानते। [illegible] अपनी डफली और अपना अपना राग [illegible] है। कोई आत्मा, राम, कृष्ण [illegible] मानता है, कोई [illegible]। कोई [illegible]

"भारतमित्र-सम्पादक" और कोई "सम्पादक-भारतमित्र"। कोई संज्ञा के साथ विभक्ति को मिला कर लिखता है, कोई अलग। अरबी फ़ारसी के शब्दों में कोई बिन्दी लगाता है कोई नहीं। मतलब यह कि सब कोई अपनी अपनी खिचड़ी अलग ही पका रहे हैं। दस वर्ष पहले जो मतभेद था आज भी वही है। समय समय पर खण्डन मण्डन भी हो जाता है, पर निश्चय कुछ नहीं होता। वही ढांक के तीनों पात रह जाते हैं। इस मतभेद को दूर करना बहुत आवश्यक है। साहित्य में हठ और दुराग्रह को स्थान देना ठीक नहीं। हठ दुराग्रह और ईर्षा द्वेष छोड़ कर हमें मातृभाषा हिन्दी के अभाव और त्रुटियों को दूर करना चाहिए और उसकी उन्नति के लिये सदा प्रस्तुत रहना चाहिए।

गद्य।

गद्य की दशा साधारणतः अच्छी है पर जैसी होनी चाहिए वैसी नहीं। जितने लिखने वाले हैं सब अपना अपना सिक्का अलग जमा रहे हैं। कोई किसीकी सुनता नहीं। हिन्दी की खूब खैंचातानी हो रही है। सच्चे सुलेखकों की संख्या अभी उंगलियों पर गिनने लायक़ है। इसका कारण हिन्दी-शिक्षा का अभाव है। जब तक यह अभाव दूर नहीं किया जायगा तब तक हिन्दी की यही हीन दशा रहेगी।

व्याकरण।

हिन्दी में आज कल व्याकरण की बड़ी मिट्टी पलीद हो रही है। हिन्दी लिखने के समय लोग व्याकरण को ताक पर रख देते हैं। जिन लोगों का यह कथन है कि हिन्दी में व्याकरण का भारी अभाव है, वह भूलते हैं। हिन्दी में व्याकरण का अभाव न था और न है। अभाव उसके सीखने और समझनेवालों का है। हां, प बात ज़रूर है कि व्याकरण की कोई सुन पुस्तक नहीं है। जो दो चार छोटी मो आँसू पोछने के लिये हैं भी, उनकी कोई पर नहीं करता है। अगर करता तो लावण्य सौन्दर्य्यता, बाहुल्यता, ऐक्यता, एकत्रि ग्रसित, क्रोधित, आदि शब्दों की सृष्टि न की जाती।

हिन्दी के लेखकों में एकता नहीं है। व विन्यास (spelling) और पद-योजना इस प्रमाण हैं। कोई लिखता है "सकता" औ कोई "सक्ता", यानी क और त मिला लिखता है। "सकना" धातु से "सकता" बन है। धातु-रूप में तो क और त संयुक्त नहीं फिर "सकता" में क और त का संयोग हो जाता है? इसी तरह रखा, रक्खा, करें, लिखें, लिखे, आदि का झगड़ा चलता है। नहीं जानता इस व्यर्थ के बखेड़े से क्या ल सोचा गया है? अगर यह कहा जाय उच्चारण के अनुसार ही लिखना चाहिये तो आज तक किसीको करें, लिखैं, इस तरह बिगाड़ कर बोलते नहीं सुना है। जो हो, छोटे मोटे झगड़ों का तय हो जाना उचित है। इससे हिन्दी की उन्नति में बाधा पड़ रही है।

कोष।

उल्लेख करने योग्य अभी हिन्दी में एक कोष नहीं है। इसके बिना बड़ा हर्ज हो रहा है। काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा के कोष की चर्चा बहुत दिनों से सुनी जा रही है। देखें यह कब तक प्रकाशित होता है।

नाटक।

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के बाद फिर कोई उत्तम नाटक देखने में नहीं आया। न साहित्य का एक अङ्ग है। इसकी तरफ़ इतनी उदासीनता न होनी चाहिए।

उपन्यास।

इसका बाज़ार तो ख़ूब ही गर्म है। इसकी संख्या नित्य बढ़ती चली जाती है, पर अफ़सोस की है कि दो चार इने गिने को छोड़ बाक़ी सब कम्मे हैं। अपने मग़ज़ से लिखनेवाले कम, र अन्य भाषाओं से उल्था करनेवाले अधिक । उपन्यासों से हिन्दी पढ़नेवालों की ख्या बहुत बढ़ी है और अभी बढ़ रही है। ने तथा अश्लील उपन्यासों के रोकने का बन्ध होना चाहिए।

शिल्पकलादि।

शिल्पकला, विज्ञान, राजनीति, कृषि, इति-हासादि सम्बन्धी पुस्तकों का पूरा अभाव है। स ओर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। बाबू महेशचरणसिंह ने 'हिन्दी रसायन' नाम की पुस्तक लिखी है। यह अपने ढंग की अकेली पोथी है। धन्यवाद है पण्डित गौरी-शंकर ओझा और मुंशी देवीप्रसाद जी को जिन्होंने हिन्दी में ऐतिहासिक ग्रन्थ लिखने का सिलसिला लगा दिया है। क्या और कोई ई के लाल अन्य विषयों की तरफ़ ध्यान देंगे?

समाचार-पत्र।

समाचार-पत्रों की संख्या अवश्य बढ़ी है और प्रति दिन बढ़ रही है, परन्तु उनकी भीतरी अवस्था अच्छी नहीं है। चार के सिवा सब ही लस्टम पस्टम चल रहे हैं। दैनिक पत्र अब एक भी नहीं। मासिक पत्रिकाओं में "सरस्वती" और "मर्यादा" ही विशेष उल्लेख के योग्य हैं। पत्रों के अच्छे या बुरे होने के कारण उनके सम्पादक हैं। जैसा सम्पादक होगा उसका पत्र भी वैसा ही होगा। परन्तु दुःख है कि हिन्दी पत्रों के अध्यक्ष और सञ्चालक प्रायः आँखें मूंद कर सम्पादक नियुक्त करते हैं। सम्पादक की योग्यता तथा सम्पादक का पद कैसा दायित्वपूर्ण है इसका तनिक भी विचार नहीं किया जाता है। इसी हेतु सम्पादक प्रायः ऐसे लोग हो जाते हैं जो अङ्गरेज़ी तो क्या हिन्दी भी अच्छी तरह नहीं जानते। ऐसे सम्पादकों को भला कब अपने कर्त्तव्य का ज्ञान रह सकता है? वह आपस में लड़ने और गालियाँ देने में ही अपने कर्त्तव्य की इति श्री कर डालते हैं। व्यर्थ के झगड़े और कलह करने में ही वह अपनी प्रशंसा समझते हैं। भाषा का वह कैसा सपिण्डन श्राद्ध करते हैं यह सब साहित्यसेवी जानते हैं। ऐसी दशा में पत्रों की उन्नति कब सम्भव है? तारीख़ २६ जून, सन् १९११, के "अभ्युदय" में "विचारणीय विषय" शीर्षक लेख के उत्तर में "हिन्दी-हितैषी" के नाम से मेरा एक निबन्ध निकला था। उसमें मैंने लिखा था "मेरी राय है कि अभी एक ऐसी समिति बना ली जाय जिसके सभासद हिन्दी के दो चार मर्मज्ञ विद्वान हों। इसका काम वर्ष में एक या दो दो बार हिन्दी परीक्षार्थियों की परीक्षा लेकर प्रशंसापत्र देना हो। जिसके पास इस समिति का प्रशंसापत्र हो, वही हिन्दी का वास्तविक विद्वान् और लेखक समझा जाय। इन्हीं परीक्षोत्तीर्ण लोगों में से पत्र सम्पादक भी नियत हुआ करें।" ऐसा हो जाने से हिन्दी की लिखावट में जो गड़बड़झाला आज कल दिखाई पड़ता है वह दूर हो जायगा और हिन्दी भाषानभिज्ञ सम्पादकों की संख्या भी क्रमशः न्यून होती जायगी। आशा है सम्मेलन इसका प्रबन्ध करेगा।

पद्य।

पद्य की दशा पहले जैसी अच्छी थी आज-

कल वैसी ही शोचनीय है। यह 'दो मुल्लों में मुर्गी हराम' की कहावत को चरितार्थ कर रहा है। कोई तो इसे वर्त्तमान हिन्दी यानी खड़ी बोली की तरफ़ खींचता है और कोई पड़ी बोली अर्थात् ब्रजभाषा की तरफ़। इस खींचातानी में पद्यभाग जहाँ का तहाँ खड़ा रह गया। कुछ उन्नति न कर सका।

ब्रजभाषा के कवि वही पुरानी लकीर पीट रहे हैं। इससे उनकी कविताओं में कुछ नया आनन्द नहीं मिलता। यदि वह लोग समस्या-पूर्त्ति, नायिकाभेदादि छोड़ कर प्रचलित विषयों पर नवीन रुचि के अनुसार कविता करें तो हिन्दी साहित्य का विशेष उपकार हो और उनका भी आदर मान हो।

खड़ी बोलीवाले भी बेतहाशा सरपट दौड़ रहे हैं। यह तुकबन्दी को ही कविता समझते हैं। खड़ी बोली के कवि तो आज कल बहुत बन गये हैं, पर यथार्थ में कवि कहलाने वाले बहुत थोड़े हैं। केवल तुकबन्दी का नाम कविता नहीं है और न अच्छे शब्दों का एक जगह संग्रह कर देना ही कविता है। कविता एक स्वर्गीय पदार्थ है। जिस कविता से हृदय की कली विकसित न हो उठे और चित्त तन्मय न हो जाय, वह कविता कविता नहीं है। भूषण के कवित्तों को श्रवण कर छत्रपति शिवाजी महाराज की नस नस में उत्साह और वीरता की बिजली दौड़ गयी थी। बिहारी के एक ही दोहे को पढ़ कर जयपुर नरेश महाराज जयसिंह अन्तःपुर से राजदरबार में दौड़े चले आये थे। क्या आज कल भी मन को मोहनेवाली ऐसी कवितायें होती हैं? आजकल कविता [illegible] नहीं। [illegible] ही कविता का काम है। परन्तु हिन्दी में अब [illegible] अवस्था को पहुंची है।

कुछ लोग बेतुकी यानी blank verse के प्रेमी हो गये हैं। उनका कहना है कि तुक मिलाने में बड़ा झंझट है। इसके फेर में पड़ कर कविगण भाव को भूल जाते हैं। पर मैं यह स्वीकार करने के लिए अभी प्रस्तुत नहीं हूँ। जो स्वाभाविक या यथार्थ कवि हैं वह सदा भावमय रहते हैं। तुक मिलाने की चिन्ता उनकी भावराशि में बाधा नहीं डाल सकती। यदि यह बात होती तो भूषण, बिहारी, सूर, तुलसी आदि प्राचीन कवियों से लेकर भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र, पं० प्रतापनारायण मिश्र, उपाध्याय पं० बदरीनारायण चौधरी और पं० श्रीधर पाठक तक की कवितायें आदर की दृष्टि से नहीं देखी जातीं, क्योंकि इन सबों ने मित्राक्षर छन्दों में रचना की है। और, मैं अमित्राक्षर छन्द के अनुरागियों को रोकता नहीं। वह मज़े में बेतुकी कविता करें पर कृपा कर पुराने छन्दों की व्यर्थ निन्दा न करें।

खड़ी बोली का भी मैं विरोधी नहीं हूँ। पर साथ ही प्यारी ब्रजभाषा को बहिष्कृत करने के पक्ष में भी नहीं हूँ। पण्डित केदारनाथ भट्ट के कथनानुसार, जिस बोली में भगवान श्री कृष्णचन्द्र ने तुतला कर यशोदा से "मैया मोहिं दाऊ बहुत खिझायो" कहा था, उसे एकदम तिरस्कृत करना कदापि उचित नहीं है। ब्रजभाषा में जो रस—जो लालित्य—जो सौन्दर्य—जो माधुर्य है, वह खड़ी बोली को अभी तक प्राप्त करने का सौभाग्य नहीं हुआ है।

कविता के लिए अभी बहुत सी बातें हैं, पर [illegible] के कारण यहाँ सब कहा नहीं जाता है, हिन्दी की वर्त्तमान [illegible] का [illegible] हो जायगा। हिन्दी में जो [illegible]

या त्रुटियाँ हैं उन्हें दूर करना हमारा कर्तव्य है। जब और प्रान्त वाले हिन्दी को ग्रहण करने के निमित्त प्रस्तुत हो रहे हैं, तब हमें कुविचार नहीं करना चाहिए। भारतेन्दु के सुर में सुर मिला कर मैं भी यही कहता हूँ—

"विविध कला शिक्षा अमित, ज्ञान अनेक प्रकार।
सब देशन सों लै करहु, भाषा माहिं प्रचार॥
प्रचलित करहु जहान में, निज भाषा करि यत्न।
राज काज दरबार में, फैलावहु यह रत्न॥

बङ्गाल और विहार में हिन्दी।

[लेखक—परिडत सकल नारायण पाण्डेय]

हमारी घर में जो हिन्दी बोलते हैं उसके तीन भेद हैं, भोजपुरी मगहिया और मैथिली। ये तीनों उस राष्ट्र-हिन्दी को रूपान्तर हैं जिसमें पुस्तक और समाचार-पत्र लिखे जाते हैं, और जिसको व्यापक तथा उन्नत बनाने के लिए साहित्य-सम्मेलन उद्योग कर रहा है।

भोजपुरी—इसका व्याकरण मि० ग्रियरसन साहब ने लिखा है। वे इसको उन्नत करना चाहते हैं। उनकी उत्तेजना से कुछ भोजपुरी गीत पुस्तकाकार छपी हैं। कोई कोई कवि कजली भी इसमें दो चार पद्य बना लेते हैं। उदाहरण रूप से यह पद्य आप के सामने है—

बिरहा छन्द।

हमनि के अगवा में कोई नाहीं हित चाहे,
हम सब रहली गंवार।
बड़े भगवनवा से सब के जनम भइले,
काहे होगय चोर चमार॥
हमा महरजवा के आसरा कईलेबानी,
उहो लेस सुधि ना हमार।
अंबइ के अगवा में पड़ल लिगल बाटे,
हमनि के नाव मझधार॥

भोजपुरी विद्वान अपनी बोली की भाषा की रक्षा करके राष्ट्र-हिन्दी में मिला देना चाहते हैं। वे राष्ट्र-हिन्दी से इसे दूर रखना नहीं चाहते। इससे इसके स्वतन्त्र भाषा बन जाने की तनिक सम्भावना नहीं है। कुछ वर्षों के बाद भोजपुरी-हिन्दी ठीक राष्ट्र हिन्दी का रूप धारण कर लेगी। प्रायः देखा जाता है कि देहाती मुक़दमे में और औरतें लड़ने झगड़ने में राष्ट्र-हिन्दी बोलने का यत्न करती हैं। यह हिन्दी आरा तथा दूसरे ज़िले में बोली जाती है।

मगहिया—मगध की भाषा का नाम मगहिया है। इसका कोई व्याकरण नहीं है। किसी कवि ने इसमें कविता करने का भी यत्न नहीं किया है, अन्यथा इसमें भी कविता हो सकती है। गया और पटना ज़िलों में यह बोली जाती है। इसकी झलक चम्पारन की बोली में भी पायी जाती है। मगहिया का यह मधुर नमूना है—"ऊ अयलन, अपनी अयलन, मोहन गड़-इल हल"। यह सुनने में बहुत मीठी मालूम पड़ती है। क्रोधावस्था में भी इसका उच्चारण कर्कश नहीं मालूम पड़ता।

मैथिली—यह भाषा प्राचीन बड़े बड़े कवियों की मातृभाषा है। पहले भी यह उन्नत अवस्था पर थी। इसी में कवि-कुल मार्तण्ड विद्यापति ठाकुर की पदावली है जिसे काशी नागरी-प्रचारिणी सभा ने प्रकाशित किया है। इसका एक छोटा सा व्याकरण मैंने कोन इस के अङ्गरेज़ी में देखा था। आज कल यह जिस रूप में लिखी जाती है उसका नमूना

यह है—

"समयहु क परिवर्त्तन की अनिर्वचनीय होइत अछि। जाहि स्थान क एक दिन ओहन शोभा छल ताहि स्थान क आइकालिह अत्यन्त दुर्दशा देखि कोन आर्य सन्तान क हृदय विदीर्ण नहिं होइतथी।" (मिथला-तत्व-विमर्श)

मैथिलों की भीतरी चेष्टा यह ज्ञात होती है कि वे मैथिली को हिन्दी से पृथक कर लेंगे। यह सन्देह इस लिए होता है कि उन्होंने अपना एक जातीय पत्र मैथिली भाषा में निकाला है। मिथिला-मिहिर नामक साप्ताहिक पत्र का कुछ अंश उक्त भाषा से सुशोभित रहता है। इसकी लिपि नागरी से भिन्न है। यदि मैथिलों ने तनिक भी इधर ध्यान दिया तो यह बात की बात में हिन्दी से पृथक होकर राष्ट्र-हिन्दी की उन्नति में रोक टोक उपस्थित करेगी। उचित यह था कि वे भोजपुरी और मगहियों की भांति मैथिली को राष्ट्र-हिन्दी की ओर बढ़ाते, न कि उससे विच्छेद कराने का यत्न करते। हमने सुना है कि देश भर की एक भाषा बनाने के लिए जर्मनी ने अपने यहाँ की उप-भाषाओं का अस्तित्व मिटा दिया है; जो उपभाषाएँ जीवित हैं उन्हें इस प्रकार उन्नत कर रहे हैं कि वे राष्ट्रभाषा में मिल जाँय। क्या मैथिल ऐसा नहीं कर सकते?

यह मुज़फ्फ़र पुर तथा दर्भङ्गा ज़िले में बोली जाती है। भागलपुर, मुंगेर, तथा बङ्गाल के अन्यान्य ज़िलों में बोली जानेवाली हिन्दी पर बङ्गला का प्रभाव पड़ा है, किन्तु विद्वान हिन्दी-रसिक यथासम्भव अपनी बोली को उक्त दोष से बचाने की चेष्टा करते हैं। कहीं कहीं तो "कहाँ आइछो, कि कहैछो" तक बोलते हैं। यह उनकी बोली है जो पच्छिम से जाकर वहाँ बसे हैं। जो वहाँ के, प्राचीन रहनेवाले हैं उनकी तो गति न्यारी है।

उपर्युक्त तीनों उपभाषाओं में 'ने' विभक्ति नहीं होती। चेतन कर्त्ता को छोड़ कर और कारकों में विशेष्य विशेषण में पुल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग का झमेला नहीं होता। इसीसे कितने विहारियों की राष्ट्रहिन्दी में 'ने' विभक्ति तथा लिङ्ग की भूल हो जाती है। वे अपनी उपभाषाओं के कारण इनके विषय में उच्छृङ्खल से होते हैं।

विहार में उर्दू का आधिपत्य साधारण लोगों पर कभी नहीं था, अब भी नहीं है। उसने केवल यहां के कायस्थों को अपने मोहजाल में फाँसा था। अभी तक उनका अधिक भाग उसके फन्दे में फँसा है। सभी कायस्थ प्रायः अपने लड़कों को स्कूल में उर्दू फ़ारसी ही द्वितीय भाषा रूप से पढ़ाते हैं। उनकी देखा देखी कुछ और भी लोग अपने लड़कों को उर्दू पढ़ाने लगे हैं, किन्तु उनकी संख्या बहुत थोड़ी है।

विहार की कचहरियों से फ़ारसी लिपि को उठे बहुत दिन हो गये, पर उसकी भाषा फ़ारसी अरबी के शब्दों से अभी तक भरी हुई है। इसमें दोष उन्हीं का है जो स्कूलों में अपने लड़कों को हिन्दी, संस्कृत नहीं पढ़ने देते। कचहरियों के अमलों ने लड़कपन में उर्दू, फ़ारसी पढ़ी है, वे अपनी भाषा में किन शब्दों का प्रयोग करें? भाषा की यही दशा है। लिपि कीबात सुनिए। कचहरी में नागरी के व्यवहार की आज्ञा हुई थी। कायस्थों ने उसमें बड़ी कठनाइयां दिखा कर अपनी कल्पित कैथी लिपि का प्रचार कर दिया। तात्पर्य यह है कि कचहरी की भाषा और लिपि हिन्दी को तनिक सहायता नहीं पहुंचाती।

आरा की नागरीप्रचारिणी सभा ने कैथी के हटवाने का कई बार यत्न किया। वह वकील मुख़ार तथा अमलों की कैथी प्रीति से विफलमनोरथ हो गयी। हर्ष की बात है कि विहार के बहुत से कायस्थों में हिन्दी का अनुराग उत्पन्न हुआ

सुलभ-मूल्य रामायण ही मुख्य हैं। इन्हींकी ओर ध्यान देना उचित है। आन्दोलन में कैथी का हटाना, हिन्दी पुस्तकालयों का स्थापित कराना तथा बङ्गाल-प्रवासी बिहारी मज़दूर और मारवाड़ियों के लिए बङ्गाल में हिन्दी पाठ-शालाएं स्थापित कराना प्रधान बात है। हमारा निबन्ध अन्तःसार शून्य है। आशा कि श्रीमानों के श्रवण-सम्पर्क से श्रेष्ठ हो जाय नहीं तो यह स्वभावतः अमूल्य निस्प्रयो ही है। हमने केवल आज्ञापालन की अच्छी बात होती यदि किसी वयोवृद्ध वि वृद्ध को यह विषय दिया जाता।

मध्यप्रदेश में उसकी उन्नति साधन के निमित्त करने की भी दया करेंगे। हमें आप सब सज्जनों से सुदृढ़ आशा है कि जब तक इस विषय पर एक कुशाग्र बुद्धि विचक्षण एवँ प्रकाण्ड पाण्डित्य सम्पन्न विद्वान द्वारा प्रौढ़ तथा भाव व्यञ्जक भाषा में लिखा हुआ सकलाङ्ग पूर्ण लेख आप लोगों के समीप नहीं पहुंचाया जा सकता है तब तक आप लोग इस अल्पज्ञ लेखक द्वारा टूटी फूटी भाषा में लिखी हुई हिन्दी की अवस्था को मनोनिवेश पूर्व्वक जान लेने का कष्ट 'हिन्दी भक्ति गौरवान' सहर्ष एवँ सानन्द स्वीकृत करेंगे।

जिस समय कोई राष्ट्र उन्नति की बाल्यावस्था में रहा करता है उस समय राष्ट्र के विद्वानों का अधिक समूह प्रायः तत्कालीन राजसेवा की उच्च श्रेणी में ही पाया जाता है। मध्यप्रदेश के वर्त्तमान हिन्दी भाषाभाषी विद्वान् लोगों की संख्या का अनुमान करने के लिए हमने आगे जो प्रयत्न किया है उसमें हमने इसी बात को प्रधानता दी है। इससे कोई सज्जन यह न समझ लेवें कि हमने यह प्रदर्शित करने का उद्योग किया है कि जो हिन्दी भाषाभाषी विद्वान् लोग राजसेवा की उच्च श्रेणी के पदों पर पाये जाते हैं वे ही विद्वान् हैं, अन्य सज्जन विद्वान् नहीं हैं। नहीं हमारा अभिप्राय ऐसा कदापि नहीं है। राजसेवा की निम्न श्रेणी के पदों पर स्थित लोगों में और स्वतन्त्र व्यवसाय करनेवाले लोगों में भी अच्छे अच्छे विद्वान् पाये जाते हैं। किन्तु उनकी संख्या का अनुमान करने के लिए तादृश विश्वस्त मार्ग हमें अनुकूल न होने के कारण, उस दिशा में हम प्रयत्न नहीं कर सके।

मध्यप्रदेश का जिस प्रकार का और जितना इतिहास हमारे वर्त्तमान ज्ञानार्जनस्पृहालु लेखकों की कृपा से इस समय प्राप्य है, उससे यह जाना जा सकता है कि जिसे प्रदेश का नाम कल मध्यप्रदेश है उसका पुराना गोंडियाना था। गोंडियाना नाम का कारण स्पष्ट ही है। वह यही है प्रदेश के तत्कालीन राजा तथा राजक गोंड थे। गोंडों से इस प्रान्त को म लिया और मराठों से इसके कुछ अंश १८१८ में और शेषांश को नागपुर के तीसरे राघो जी के निःसन्तान स्वर्गवास पर सन १८५३ में राज काज-विशारद अ ने प्राप्त किया। कहना नहीं होगा कि वर्त्तमान अङ्गरेज़ी गवर्न्मेंण्ट में शान्ति सुव्यवस्था स्थापित करने की अद्भुत और सामर्थ्य है। इस आदरणीय तथा करणीय शक्ति के प्रसाद से हमारी वर गवर्न्मेंण्ट ने नूतन प्राप्त प्रदेश में और बहुत शीघ्र शान्ति और सुव्यवस्था स्थ कर सन १८६१ में इस प्रान्त को "मध्यप्र के नाम से संयुक्त कर दिया। तब से तक इस प्रदेश की समयानुसार अङ्गरेज़ी न्मेंण्ट की कृपा से अन्यान्य प्रान्तों के सदृश क्रम से उन्नति होति जाती है। इस प्रान्त क्रमोन्नति का एक प्रत्यक्ष उदाहरण यही प्राचीन गोंडवाने का रहनेवाला मुझ एक अल्पज्ञ एवं साधारण जन आज विद्वद्‌धुरीण सज्जनों की सभा में अपनी चपलता प्रकाशित करने का साहस कर है। निःसन्देह यह सब हमारे वर्त्तमान शा कर्त्ताओं की असीम कृपा तथा शा प्रणाली की अगाध विदग्धता का एक सुस्व एवँ सुमधुर फल है।

अब आगे उन बातों का यथाक्रम बहुत संक्षिप्त रीति से निरूपण किया जाता जिनका इस प्रान्त में हिन्दी की अवस्था प्र शित करने में सहायक होना किसी न कि प्रकार सम्भव है। वर्त्तमान सन के गत म

में भारत की जो मनुष्य-गणना की गयी सका लेखा अभी प्रस्तुत नहीं हुआ है। सन १९०१ की मनुष्य-गणना के विवरणा-र इस प्रदेश के क्षेत्रफल तथा जनसंख्या का विवरण नीचे दिया जाता है—

१) मध्यप्रदेश का क्षेत्रफल ११५८९४ मील है।

२) मध्यप्रदेश की जन संख्या ११८७३०२९

३) जिनकी जन्मभाषा है उनकी समूचे मध्य-में जनसंख्या ६७८२२०० है

४) जिनकी जन्मभाषा भाषा हिन्दी है उनमें से लिखे पढ़ों की मध्य प्रदेश संख्या १९८२४२ है।

जिनकी जन्मभाषा हिन्दी में अङ्गरेज़ी जाननेवालों प्रदेश में जनसंख्या २४०९३ है।

र मध्य-प्रदेश के क्षेत्रफल तथा जनसंख्या लेखा दिया गया है उसमें यहाँ की रियासतों का क्षेत्रफल तथा जनसंख्या सम्मिलित है। उक्त लेखे पर विचार से यह बात तुरन्त ही ध्यान-स्थित हो है कि समूचे मध्य-प्रदेश में जितने जन करते हैं उनमें में जिनकी जन्मभाषा है उनकी जनसंख्या मध्य-प्रदेश की समूची के आधे से अधिक है, अर्थात् मध्य-में हिन्दी भाषाभाषी लोगों की जनसंख्या सैकड़े ५७ है। हिन्दी भाषा-भाषी लोगों संख्या में से हिन्दी लिखे पढ़े लोगों की संख्या सैकड़े २.९२ और अङ्गरेज़ी जानने-की संख्या प्रति सैकड़े ०.३५ है। हिन्दी भाषाभाषी लोग विद्या के में जिस प्रकार पीछे पड़े हुए हैं उसका उक्त अङ्कों से भली भाँति पता लग सकता है। भारत के जिन प्राचीन महर्षियों का सिद्धान्त-वाक्य "विद्याभ्यसनं व्यसनं अथवा हरिपाद सेवनं व्यसनम्" था, उन्हीं महर्षियों के वर्त्तमान वंशजों का विद्याक्षेत्र में इस प्रकार पीछे पड़े रहना निस्सन्देह अत्यन्त दुःख और लज्जा की बात है।

कालचक्र की कुटिल गति को पार कर आज दिन संस्कृत के जो ग्रन्थ हमें उपलब्ध हैं, उनसे हमें यह बात 'सुचारुरूपेण' विदित हो सकती है कि हमारे पूर्वज विद्यादेवी के महत्व को तथा तज्जन्य ज्ञान की पवित्र महिमा को करामलकवत् जानते थे। महात्मा शुक्रजी ने अपने उपदेश ग्रन्थ में निम्न लिखित शिक्षा का उपदेश किया है—

विद्यागमार्थं पुत्रस्य भृत्यर्थं यतते न यः।
पुत्रं सदा साधु शास्ति प्रीतिं कृत्वपिता गुणी॥

इसका भावार्थ यह है कि जो पिता अपने पुत्र को विद्या सम्पन्न कर उसे आजीविका में लगा देता है और निरन्तर उसे मङ्गलकारिणी शिक्षा देता रहता है वही अपने पुत्र के ऋण से उऋण हो सकता है, दूसरा नहीं हो सकता। महाभारत में महात्मा व्यास जी ने एक स्थान पर लिखा है—"नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते" अर्थात् ज्ञान के समान मनुष्य का विमल हितैषी अन्य कोई नहीं है। इससे और इसके समकक्ष जो अनेक उपदेश-वाक्य खण्ड हमारे आर्ष ग्रन्थों में पाये जाते हैं उनसे हमारे पूर्वजों का विद्यानुराग तथा ज्ञानतत्वपारंगत होना पूर्ण रूप से प्रमाणित किया जा सकता है। उन्नत देशों के सच्चे इतिहास ने इस बात को सर्व सिद्धान्त कोटि में पहुंचा दिया है कि जिस देश और जिस राष्ट्र में जब तक विद्या की उपासना तथा ज्ञानार्जन की स्पृहा उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है तब तक उस देश तथा राष्ट्र की उन्नति

मध्यप्रदेश में उसकी उन्नति साधन के निमित्त करने की भी दया करेंगे। हमें आप सब सज्जनों से सुदृढ़ आशा है कि जब तक इस विषय पर एक कुशाग्र बुद्धि विचक्षण एवँ प्रकाण्ड पाण्डित्य सम्पन्न विद्वान द्वारा प्रौढ़ तथा भाव व्यञ्जक भाषा में लिखा हुआ सकलाङ्ग पूर्ण लेख आप लोगों के समीप नहीं पहुंचाया जा सकता है तब तक आप लोग इस अल्पज्ञ लेखक द्वारा टूटी फूटी भाषा में लिखी हुई हिन्दी की अवस्था को मनोनिवेश पूर्व्वक जान लेने का कष्ट 'हिन्दी भक्ति गौरवात' सहर्ष एवँ सानन्द स्वीकृत करेंगे।

जिस समय कोई राष्ट्र उन्नति की बाल्यावस्था में रहा करता है उस समय राष्ट्र के विद्वानों का अधिक समूह प्रायः तत्कालीन राजसेवा की उच्च श्रेणी में ही पाया जाता है। मध्य-प्रदेश के वर्त्तमान हिन्दी भाषाभाषी विद्वान् लोगों की संख्या का अनुमान करने के लिए हमने आगे जो प्रयत्न किया है उसमें हमने इसी बात को प्रधानता दी है। इससे कोई सज्जन यह न समझ लेवें कि हमने यह प्रदर्शित करने का उद्योग किया है कि जो हिन्दी भाषाभाषी विद्वान् लोग राजसेवा की उच्च श्रेणी के पदों पर पाये जाते हैं वे ही विद्वान् हैं, अन्य सज्जन विद्वान् नहीं हैं। नहीं हमारा अभिप्राय ऐसा कदापि नहीं है। राजसेवा की निम्न श्रेणी के पदों पर स्थित लोगों में और स्वतन्त्र व्यवसाय करनेवाले लोगों में भी अच्छे अच्छे विद्वान् पाये जाते हैं। किन्तु उनकी संख्या का अनुमान करने के लिए तादृश विश्वस्त मार्ग हमें अनुकूल न होने के कारण, उस दिशा में हम प्रयत्न नहीं कर सके।

मध्यप्रदेश का जिस प्रकार का और जितना इतिहास हमारे वर्त्तमान ज्ञानार्जनस्पृहालु अङ्गरेज़ लेखकों की कृपा से इस समय हमें प्राप्य है, उससे यह जाना जा सकता है कि जिस प्रदेश का फल मध्यप्रदेश है उसका पु गोंडियाना था। गोंडियाना का कारण स्पष्ट ही है। यह यहीं प्रदेश के तत्कालीन राजा तथा रा गोंड थे। गोंडों से इस प्रान्त को लिया और मराठों से इसके कुछ अं १८१८ में और शेषांश को नागपुर तीसरे राघो जी के निःसन्तान स्वर्ग पर सन १८५३ में राज काज-विशारद ने प्राप्त किया। कहना नहीं होगा वर्त्तमान अङ्गरेज़ी गवर्न्मेण्ट में शा सुव्यवस्था स्थापित करने की अद्भु और सामर्थ्य है। इस आदरणीय त करणीय शक्ति के प्रसाद से हमारी गवर्न्मेण्ट ने नूतन प्राप्त प्रदेश में ओर बहुत शीघ्र शान्ति और सुव्यवस्था कर सन १८६१ में इस प्रान्त को "मध्य के नाम से संयुक्त कर दिया। तब तक इस प्रदेश की समयानुसार अङ्गरेज़ न्मेण्ट की कृपा से अन्यान्य प्रान्तों के सदृ क्रम से उन्नति होति जाती है। इस प्रा क्रमोन्नति का एक प्रत्यक्ष उदाहरण यही प्राचीन गोंडवाने का रहनेवाला मुझ एक अल्पज्ञ एवं साधारण जन आज विद्वद्धुरीण सज्जनों की सभा में अपनी चपलता प्रकाशित करने का साहस कर है। निःसन्देह यह सब हमारे वर्त्तमान शा कर्त्ताओं की असीम कृपा तथा शा प्रणाली की अगाध विदग्धता का एक सुस्व एवँ सुमधुर फल है।

अब आगे उन बातों का यथाक्रम बहुत संक्षिप्त रीति से निरूपण किया जाता जिनका इस प्रान्त में हिन्दी की अवस्था प्र शित करने में सहायक होना किसी न कि प्रकार सम्भव है। वर्त्तमान सन के गत मा

में भारत की जो मनुष्य-गणना की गयी
का लेखा अभी प्रस्तुत नहीं हुआ है।
न १६०१ की मनुष्य-गणना के विवरणा-
इस प्रदेश के क्षेत्रफल तथा जनसंख्या
का विवरण नीचे दिया जाता है—

) मध्यप्रदेश का क्षेत्रफल ११५८६४
ल है।

) मध्यप्रदेश की जन संख्या ११८७३०२६

) जिनकी जन्मभाषा
हैं उनकी समूचे मध्य-
में जनसंख्या ६७८२२०० है

) जिनकी जन्मभाषा
भाषा हिन्दी है उनमें से
लिखे पढ़ों की मध्य प्रदेश
संख्या १६८३४२ है।

नकी जन्मभाषा हिन्दी
में अङ्गरेज़ी जाननेवालों
य प्रदेश में जनसंख्या २४०६३ है।

र मध्य-प्रदेश के क्षेत्रफल तथा जनसंख्या
लेखा दिया गया है उसमें यहाँ की
रियासतों का क्षेत्रफल तथा जनसंख्या
सम्मिलित है। उक्त लेखे पर विचार
से यह बात तुरन्त ही ध्यान-स्थित हो
ती है कि समूचे मध्य-प्रदेश में जितने जन
वास करते हैं उनने में जिनकी जन्मभाषा
है उनकी जनसंख्या मध्य-प्रदेश की समूची
संख्या के आधे से अधिक है, अर्थात् मध्य-
में हिन्दी भाषाभाषी लोगों की जनसंख्या
फ़ी सैकड़े ५७ है। हिन्दी भाषा-भाषी लोगों
संख्या में से हिन्दी लिखे पढ़े लोगों की संख्या
फ़ी सैकड़े २·६२ और अङ्गरेज़ी जानने-
की संख्या प्रति शत पीछे ०·३५ है।
कि हिन्दी भाषाभाषी लोग विद्या के
में किस प्रकार पीछे पड़े हुए हैं उसका
उक्त अङ्कों से भली भाँति पता लग सकता है।
भारत के जिन प्राचीन महर्षियों का सिद्धान्त-
वाक्य "विद्याभ्यसनं व्यसनं अथवा हरिपाद
सेवनं व्यसनम्" था, उन्हीं महर्षियों के
वर्त्तमान वंशजों का विद्याक्षेत्र में इस प्रकार
पीछे पड़े रहना निस्सन्देह अत्यन्त दुःख और
लज्जा की बात है।

कालचक्र की कुटिल गति को पार कर
आज दिन संस्कृत के जो ग्रन्थ हमें उपलब्ध
हैं, उनसे हमें यह बात 'सुचारुरूपेण' विदित
हो सकती है कि हमारे पूर्वज विद्यादेवी के
महत्व को तथा तज्जन्य ज्ञान की पवित्र महिमा
को करामलकवत् जानते थे। महात्मा शुक्रजी
ने अपने उपदेश ग्रन्थ में निम्न लिखित शिक्षा
का उपदेश किया है—

विद्यागमार्थं पुत्रस्य भृत्यर्थं यतते न यः।
पुत्रं सदा साधु शास्ति प्रीति हन्यपिता नृणी॥

इसका भावार्थ यह है कि जो पिता अपने
पुत्र को विद्या सम्पन्न कर उसे आजीविका में
लगा देता है और निरन्तर उसे मङ्गलकारिणी
शिक्षा देता रहता है वही अपने पुत्र के ऋण
से उऋण हो सकता है, दूसरा नहीं हो सकता।
महाभारत में महात्मा व्यास जी ने एक स्थान
पर लिखा है—"नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्र
मिह विद्यते" अर्थात् ज्ञान के समान मनुष्य
का विमल हितैषी अन्य कोई नहीं है।
इससे और इसके समकक्ष जो अनेक उपदेश-
वाक्य खण्ड हमारे आर्ष ग्रन्थों में पाये जाते
हैं उनसे हमारे पूर्वजों का विद्याव्यसन तथा
ज्ञानतत्वपारंग होना पूर्ण रूप से प्रमाणित
किया जा सकता है। उन्नत देशों के सर्व
इतिहास ने इस बात को इस सिद्धान्त और
में पहुंचा दिया है कि जिस देश और जिस
राष्ट्र में जब तक विद्या की उन्नत अवस्था तथा
ज्ञानार्जन की स्पृहा उत्तरोत्तर बढ़ती जाती
है तब तक उस देश तथा राष्ट्र की उन्नति

उत्तरोत्तर होती जाती है और ज्योंही किसी देश और राष्ट्र के लोग अपनी वर्त्तमान अवस्था से सन्तुष्ट हो विद्या की आराधना तथा ज्ञान प्राप्ति की उतकण्ठा से विरक्त एवं उदासीन हो जाते हैं, त्योंही उस देश वा जाति के अधः-पात का सूत्रपात हो जाता है। यही बात भारत की प्राचीन उन्नति तथा अर्वाचीन अवनति के विषय में भी चरितार्थ हो सकती है। अर्थात् जब तक इस देश के लोग विद्या की उपासना तथा ज्ञान के अनुसन्धान में लगे रहे तब तक यह देश सब प्रकार से उन्नत रहा। किन्तु जब से विद्या और ज्ञान की चर्चा का ह्रास होकर यहां के लोग विषयप्रवण तथा अकर्मण्य होने लगे तब से धीरे धीरे यह देश और इस देश के लोग उसी दुर्दशा को पहुंच गये जिसे विवेकभ्रष्ट लोग प्रायः प्राप्त हुआ करते हैं। अस्तु।

जब से इस देश का अधःपात प्रारम्भ हुआ है तब से इस देश में कई जाति के लोग शासकरूप से आये, पर वह विद्या तथा ज्ञान के तादृश उपासक न होने के कारण थोड़े ही दिनों में यहाँ से चलते फिरते देख पड़े। सारांश, हमारे पूर्वजों के पश्चात् विद्या तथा ज्ञान की महिमा को भली भाँति जाननेवाली यदि किसी जाति के लोगों ने इस पुराने भारत में शासक-रूप से पदार्पण किया है तो वह एक मात्र अङ्गरेज़-जाति के हमारे वर्त्तमान शासकों ने ही। ऐहिक सुख शान्ति को उत्पन्न कर उसकी निरन्तर वृद्धि करनेवाली विद्या तथा ज्ञान का मध्यप्रदेश में प्रचार करने के लिये हमारी गवर्नमेंट ने कोई बात उठा नहीं रक्खी है।

सन् १८६१ में जब से इस मध्यप्रदेश का सङ्गठन किया गया है तब से उनका इस दिशा में एक सा उद्योग चला आता है। उनके इस सराहनेयोग्य उद्योग का ही यह मीठा फल है कि आज दिन मध्यप्रदेश में स्थूल अनुमान से

निम्नलिखित स्थानों में निम्नलिखित और हाईस्कूल पाये जाते हैं—

१–नागपुर—(१) हिसलाप कालेज, मारिस कालेज, (३) विक्टोरिया टेक इन्स्टीट्यूट, (४) फ्रीचर्च हाईस्कूल नील सिटी हाईस्कूल (६) हा (७) नार्मल स्कूल, (८) यूनाईटेड फ्र इंस्टिट्यूशन।

२–भण्डारा—(१) मनरो हाईस्कूल, वर्धा क्राडक हाई स्कूल, (३) हिंग हाईस्कूल।

३–वर्धा—(१) मिशन हाई स्कूल।

४–चांदा—(१) जुबिली हाई स्कूल, मिशन हाई स्कूल।

५–बालाघाट—(१) हाई स्कूल।

६–जबलपुर—(१) गवर्नमेंट कालेज, हितकारिणी हाई स्कूल, (३) चर्च हाई स्कूल, (४) अंजुमन हाई (५) माडेल हाई स्कूल, (६) सी. एस. हाई स्कूल।

७–सागर—(१) हाई स्कूल।

८–सिवनी—(१) मिशन हाई स्कूल।

९–मण्डला—(१) मिशन हाईस्कूल, जगन्नाथ हाई स्कूल।

१०–होशङ्गाबाद—(१) हाई स्कूल, (२) चर्च मिशन हाई स्कूल।

११–नीमार—(१) खण्डवा हाई स्कूल, मिशन हाई स्कूल बुरहानपुर।

१२–नरसिंहपुर—(१) हार्डविक् कि हाई स्कूल।

१३–रायपुर—(१) राजकुमार कालेज, (२) स्कूल, (३) नार्मल स्कूल।

१४–बिलासपुर—(१) हाईस्कूल।

देशी रजवाड़ों के स्कूल

रायगढ़—विक्टोरिया हाईस्कूल
राजनांदगांव—हाईस्कूल
रायगढ़—हाईस्कूल

। कालेज, हाईस्कूल, और नार्मल स्कूलों के अंग्रेज़ी के १७४ और हिंदी के १२४ मिडल स्कूल हर ज़िले के हर तहसील के प्रधान २ स्थानों जाते हैं। इस प्रदेश में हिंदी के प्राथमिक मरी) स्कूलों की संख्या अनुमान १७६१ के ग है।

मध्यप्रदेश के नागपुर, वर्धा, चांदा, भंडारा, और ज़िले की सौंसर तहसील में मराठी भाषा तया बोली जाती है; शेष सब ज़िलों में हिंदी तया बोली जाती है।

मध्य प्रदेश के सरकारी कार्य्यालयों में सन् के पूर्व कहीं कहीं उर्दू और मोड़ी लिपि का र था। किंतु हर्ष का विषय है कि अब समूचे प्रदेश के सरकारी कार्य्यालयों में उनके स्थान पर देवनागरी अक्षरों का प्रचार कर दिया गया है। प्रदेश के महाराष्ट्र लोग देवनागरी अक्षरों को "बालबोध" कहा करते हैं। मध्यप्रदेश की सरकार की सहायता तथा प्रेरणा से मध्यप्रदेश में जो जो कालेज, हाईस्कूल आदि विद्याभवन स्थापित किये गये उनमें शिक्षा प्राप्त किये हुए लोगों में हिन्दी भाषा भाषी लोगों की संख्या जिस प्रकार पाई जाती है उसका आगे बहुत ही संक्षिप्त रीति से उल्लेख किया जाता है। मध्यप्रदेश के सरकारी दफ़तरों में इस समय डिपुटी कमिश्नर, डिस्ट्रिक्ट जज, स्माल काज़ जज, मुंसिफ़, एक्स्ट्रा असिस्टंट कमिश्नर, आनरेरी मजिस्ट्रेट, भागीदार, नायब तहसीलदार, सुपरिण्टेण्डेण्ट, सेटलमेंट, डिप्टी इंस्पेक्टर, बन्दोबस्त विभाग, पुलिस विभाग, इंजिनियरिंग विभाग, विद्याविभाग, प्रांतीय [illegible], जुडीशल कोर्ट आफ़िस, पोस्ट आफ़िस, [illegible], जंगल विभाग, इत्यादि के पदों पर, जो हिंदुस्तानी लोग नियुक्त हैं उनकी संख्या स्थूल प्रमाण पर अनुमान ६२३ के लगभग है। इन ६२३ हिन्दुस्तानी सज्जनों में हिन्दी भाषा भाषी लोगों की संख्या केवल १८८ के लगभग है। इन १८८ हिन्दी भाषा भाषी लोगों में ग्राज्युएटों की संख्या केवल ४३ या प्रति शत पीछे ७ है। इसी प्रकार मध्यप्रदेश में इस समय वकीलों की संख्या २५० के लगभग है, इनमें हिन्दी भाषा भाषी केवल ७० के लगभग हैं। मध्यप्रदेश में इस समय लगभग ४५ बेरिष्टर हैं, इनमें जिनकी जन्म भाषा हिन्दी है उनकी संख्या केवल ५ है।

उक्त संख्याओं पर टुक विचार करने से यह बात बहुत ही शीघ्र और थोड़े ही प्रयास से विदित हो सकती है कि जब से इस प्रदेश में हमारे वर्तमान विद्याप्रिय प्रभु अंग्रेज़ों ने इस प्रदेश के लोगों में शिक्षा का प्रचार करने के अभिप्राय से पाठशालाएँ और शिक्षाभवन आदि खोले हैं तब से उनके बहुत परिश्रम करने और प्रशंसनीय उत्साह देने पर भी जिन लोगों की संख्या इस प्रदेश में आधे से अधिक अर्थात् प्रति शत पीछे ५७ है उन हिन्दी भाषा भाषी लोगों में विद्या का प्रचार बहुत ही कम हुआ है। इसका कारण यही है कि इस समुदाय के लोगों का अधिकांश भाग विद्या और ज्ञान के पवित्र तथा [illegible] कामों से विमुख एवं अनभिज्ञ है। जिन की मातृभाषा हिन्दी है उन लोगों में जो [illegible] लोग मध्यप्रदेश की सरकार के साथ सदा [illegible] सहानुभूति प्रदर्शित कर 'लोकमत' का [illegible] कार्य करने तो आज दिन हिन्दी भाषा भाषी लोगों की, मातृ या जन्म हिन्दी भाषा की मध्यप्रदेश में [illegible] तीत उन्नति हो गई होती। जिस समय [illegible] उपाय विदित होंगे जिन्हें मध्यप्रदेश की [illegible] यहां के हिन्दी भाषा भाषी लोगों ने [illegible] प्रयुक्त किये हैं, उस समय [illegible] आपके शरीर [illegible] कार की एतद्देशीय [illegible] निक शिक्षा प्रचार के लिए [illegible]

भाषा-भाषी लोगों की संख्या, हिन्दी-भाषा-भाषी वकीलों ग्रैार वैरिस्टरों की संख्या, उक्त ग्रंकों तक पहुँच चुकी है, ग्रैार तब भी हिन्दी की उन्नति करनेवाली इस प्रदेश की गुणग्राहिणी एवं गुणज्ञ सरकार के हिन्दी में पाठ्य पुस्तकें लिखने के लिये उक्त सज्जनों में से कोई सहायक नहीं मिल सकता, उस समय लज्जा के भार से हमारा मुख अवनत हो जाता है, ग्रैार दुःखातिरेक से हमारा चित्त विकल ग्रैार व्यथित हो जाता है। इस प्रदेश की सरकार के हिन्दी के प्रचारार्थ हिन्दी भाषा में ग्रंथ लिखने वाले हिन्दी-भाषा-भाषी विद्वान् आज दिन भी नहीं मिल सकते, इसका कारण यह नहीं है कि यहाँ हिन्दी-भाषा-भाषी वर्त्तमान विद्वज्जनों में ग्रंथ-प्रणयन-पटु लोगों का ग्रभाव है। नहीं ऐसी बात कदापि नहीं है। इस प्रदेश के हिन्दी-भाषा-भाषी वैरिस्टर गैार वंधुग्रों ने ग्रंगरेज़ी भाषा में क़ानून की कई बड़ी बड़ी पुस्तकें इतनी योग्यता के साथ लिखी हैं कि उन्हें देख योरोप तथा भारत के बड़े बड़े नामी-ग्रामी पंडिताग्रगण्य लोगों के उक्त गैार-बंधुग्रों की तदर्थ मुक्त कंठ से भूरि भूरि प्रशंसा करनी पड़ती है। इसमें ग्रणुमात्र भी संदेह नहीं है कि उक्त गैार-बंधुग्रों ने ग्रंगरेज़ी में जिन बृहत्काय ग्रंथों को लिख मनोभिलषित धन कमाया है, उतना ते क्या उसका न्यूनातिन्यूनांश धन भी, यदि वह हिन्दी की भलाई की प्रेरणा से प्रेरित होकर हिन्दी में ऐसे उपयोगी ग्रंथ लिखते तो, उन्हें नहीं मिल सकता। हाँ, ग्रपनी मातृभाषा हिन्दी की सेवा करने का ग्रक्षय पुण्य उन्हें ग्रवश्य मिलता। ग्रपनी जन्म-भाषा के उन्नत करने के लिये जो विद्वज्जन प्रसन्नतापूर्वक उसकी सेवा करते हैं, उन्हें राष्ट्र के इतिहास में जो पद प्राप्त होता है उसकी, इन सज्जनों के हम जैसे ग्रल्पज्ञ द्वारा सूचना देना, छोटे मुँह बड़ी बात कहने के साहस के प्रदर्शित कर, सहस्ररश्मि-भगवान् भास्कर को खद्योत द्वारा दीपप्रदर्शन वाली कहावत को चरितार्थ करता है। तथापि प्रसंग-वशात् जिन थोड़ी सी बातों के हम ग्रागे लिखते हैं, उन्हें मध्य प्रदेशनिवासी हिन्दी-भाषा-भाषी उपदेशदायक नहीं, किन्तु स्मृतिदायक हमारे इस साहस के, हमारी इस ढिठाई के करेंगे।

इस बीसवीं शताब्दी में मनुष्य मात्र समृद्धि के लिये संसार के जिन जिन तथा ग्रनुकरणीय विद्वज्जनों ने उद्योग ग्रैा किये हैं उन सब की सम्मतियों को एक देखा जाय तो उन सब से यही बात सिद्ध को पहुँची हुई पाई जायगी कि संसार के सुधार एक मात्र जन्म-भाषा की उन्नति लंबित रहा करते हैं। ग्रनेक राष्ट्रों की जन्म के इतिहासों के देखने से जाना जाता है थोड़े दिनों के पूर्व्व उनकी जन्मभाषाग्रों उन्नत करनेवाली सामग्री नाममात्र को भी थी। पर इस समय उन भाषाग्रों के सपूतों के ग्रविरत तथा निःस्वार्थ परिश्रम के कारण वे भ ग्राशातीत उन्नत ग्रवस्था में पाई जाती हैं। इस समय उनका साहित्य परिपूर्ण ग्रवस्था को रहा है। यहाँ पर यह प्रश्न किसी प्रकार की ग्र के विना पूछा जा सकता है कि जिन विद्वज्ज ग्रपनी मातृभाषा की उन्नति की है वे यदि ग्र जन्मभाषा के समाचारपत्रों में लेख न लि ग्रपनी मातृ भाषा की सरस्वती ग्रैार मर्यादा मासिक पुस्तकों के ग्रपने छोटे छोटे बच्चों के दिखलाने के ग्रभिप्राय से ही ख़रीदा करते, ग्र जन्मभाषा के साप्ताहिक पत्रों को इनमें कुछ रहा करता ऐसा कह कर उनके ग्राहक न ग्रथवा ग्राहक बन जाते तो उन पत्रों के ग्राने उन्हें बंधनमुक्त करने तक की दया न करते, म भाषा में लिखी हुई पुस्तकों के मोल लेकर तो पढ़ते नहीं, किन्तु कोई मित्र मातृभाषा की पुस्तक को उनके ग्रवलोकनार्थ उन्हें समर्पित क तो उसकी भाषाप्रणाली को क्लिष्ट कहकर वा ग्रापततः सारहीन मानकर या समय का ग्रभाव बता कर उसे नहीं पढ़ते, उदरपूर्ति के

…ों व्यवसाय करने पड़ते हैं वे हाथ धोकर …के पीछे पड़े रहते, अन्यान्य भाषाओं से उत्त-…म ग्रंथों को अपनी जन्मभाषा में अनुवादित कर …पनी जन्मभाषा में सर्व्वसाधारण में विद्या विज्ञान को अधिकता के साथ प्रचार करने …भिप्राय से उत्तमोत्तम ग्रंथ न लिखते, तो भला …ं तो सही उनकी जन्मभाषा को आज दिन …र में जो उन्नति उच्च गौरवान्वित पद प्राप्त हो है वह क्यों और कब मिलनेवाला था ? इसके …र में प्रत्येक विवेकी पुरुष निःसंकोच होकर यही …ा कि ऊपर जिन साधनों का उल्लेख किया है उनका आश्रय लेकर कार्य्य न किया जाता किन्तु केवल दस पांच मनुष्य अपने काम काज से अवकाश पाने पर थोड़ी देर के लिये मन बहलाने के अभिप्राय से बैठकर योंही बातें चीतें किया करते तो उनकी मातृभाषा की वर्त्तमान अल्पउन्नति किसी प्रकार और कदापि नहीं हो सकती।

किसी भाषा की उन्नति का पता उसमें प्रकाशित की हुई पुस्तकों की संख्या तथा उनके विषय के महत्त्व से जाना जा सकता है। पिछले पांच वर्षों में मध्यप्रदेश में हिन्दी की पुस्तकें जिस प्रकार प्रकाशित की गई हैं उसका लेखा नीचे दो कोष्ठकों में प्रदर्शित किया जाता हैः—

—मध्यप्रदेश की प्रधान प्रधान भाषाओं में प्रकाशित की हुई पुस्तकों का लेखा।

सन	हिन्दी	हिन्दी मराठी	हिन्दी अंगरेज़ी	मराठी	उर्दू	अंगरेज़ी	संस्कृत	संस्कृत हिन्दी	तामिल	मारवाड़ी	गुजराती	अन्य भाषाओं की पुस्तकें	योग
१९०५-०६	२६	...	...	२५	...	...	...	...		..	...	..	५१
१९०६-०७	२७	...	...	१७	...	५	३	...	...	..	...	.	५२
१९०७-०८	१७	...	...	२९	...	१	७	...	...	१	...	..	[illegible]
१९०८-०९	५३	...	२	४२	...	१५	२	६	१	...	१	.	[illegible]
१९०९-१०	४१	१	२	४२	७	१३	६	१	...	१	१	..	[illegible]
	१६४												

२—उक्त पुस्तकों के विषयों का ज्ञापक कोष्ठक।

सन्	काव्य	धार्मिक	नाटक	पोलीटिकल	दार्शनिक	साहित्य	इतिहास	भूगोल	मानसशास्त्र	विधानशास्त्र	कानून	वैद्यक	[illegible]
१९०५–०६	१२	२	३	...	...	५	१	५	१	१	...	...	...
१९०६–०७	...	१२	३	...	...	...	१	२	...	...	२	१	१
१९०७–०८	२०	९	...	२	...	...	१	३	...	...	३	१	२
१९०८–०९	१०	४१	१	१	४	...	१	३	...	...	२	...	...	५
१९०९–१०	१२	३५	४	...	...	...	...	११	...	...	३	...	...	५०

पहले कोष्ठक से यह ज्ञात होता है कि गत पांच वर्षों में मध्यप्रदेश में हिन्दी की केवल १६४ पुस्तकें प्रकाशित की गई हैं। कहना नहीं होगा कि मध्य प्रदेश की हिन्दी-भाषा-भाषी ६७८२२०० जन संख्या में विद्या का प्रचार करने के लिये पांच वर्षों में छापी हुई ये १६४ पुस्तकें सिंधु का सुधार करने के लिये बिंदुवत् ही हैं। हम चाहते थे कि यह बात भी आप को विदित करादें कि इन १६४ पुस्तकों में से कितनी इस प्रदेश के हिन्दी-भाषा भाषी सज्जनों की लिखी हुई हैं और कितनी अन्य-भाषा-भाषी सज्जनों की लिखी हुई हैं। साथ ही हम आप लोगों पर यह भी प्रकट कर देना चाहते थे कि इन १६४ पुस्तकों में से किस विषय पर कितनी पुस्तकें हिन्दी में लिखी गई हैं। पर खेद का विषय है कि ऐसा करने के लिये हमें आवश्यक सामग्री यहां नहीं मिल सकी। वह सामग्री नहीं मिल सकी तौभी दूसरे कोष्ठक से यह बात भलीभांति ज्ञात हो सकती है कि, सर्व्व साधारण को आत्मचरित्र-संगठन में सहा-

यता पहुँचाने वाले आदर्श-पुरुषों के जीवन
सर्व्वसाधारण को वस्तुस्थिति का बोध कराने
इतिहास-ग्रंथ सर्व्व साधारण के ज्ञान को प्रौढ़ क
वाले साहित्य विषयक ग्रंथ, तथा सर्व्व साधारण
ललित कला, कृषि, वाणिज्य आदि का प्रचुर प्रचा
करने वाले पदार्थ-विज्ञान तथा रासायनिक
पर ग्रंथ लिखने के लिये इस प्रदेशवासी
भाषा-भाषी विद्वानों ने कोई प्रयत्न अभी तक
किया है। इस प्रदेश के हिन्दी-भाषा-भाषी वि
ज्ञनों को यह बात पूर्णतया स्मरण रखनी चाहि
कि जब तक वे लोग उक्त जैसे उपयोगी तथा आव
श्यक विषयों पर हिन्दी में ग्रंथ लिख क
अधिकता के साथ प्रचार नहीं करेंगे तब त
६७८२२०० देशवासियों की उन्नति होने में "व
ही बनी रहेगी। अतः मध्यप्रदेश के सब
भाषा-भाषी विद्वज्जनों का यह परम पवित्र
एवं धर्म है कि वे लोग अपने वर्त्तमान ६७८
देशवासियों की तथा अपने भविष्यत् में होन
देशवासियों की भलाई के लिये हिन्दी-भाषा

तथा आवश्यक ग्रंथों को लिखने का प्रयत्न

समय हिन्दी में जो पुस्तकें छापी जाती हैं भाषा प्रणाली के विषय में यहाँ थोड़ा सा कर देना हम समझते हैं अनावश्यक नहीं जायगा। जिस प्रकार युक्त प्रांत के लोग ी किसी नूतन पुस्तक में संस्कृत के अधिक ा प्रयोग देखकर डर जाते हैं और घबड़ा ने लगते हैं कि इसकी भाषा बड़ी कठिन । इसमें प्रचलित सरल शब्दों के स्थान पर के लिए, जटिल और अप्रचलित शब्दों का किया गया है, ठीक उसी प्रकार इस प्रदेश ी भाषा भाषी विद्वज्जन भी कहा करते हैं। ा इतनाही कह कर नहीं रह जाते किन्तु उस पुस्तक पर दृष्टिपात करना बन्द कर । ऐसा कहने वाले सज्जनों की सेवा में हम ज़ी हुई दो एक बातों की प्रार्थना करते हैं। है कि हमारे विनम्र निवेदन पर आप लोग के साथ गंभीरभावपूर्वक मनन करने की लेंगे।

ई भाषा उन्नत तभी मानी जाती है जब उसके मुदाय में भिन्न भिन्न विषयों पर अनेकानेक उम ग्रंथ पाये जाते हैं। ये ग्रंथ उस भाषा में ये जाते हैं जब उसके कृतविद्य लोग भिन्न भाषाओं से उत्तमोत्तम सामग्री एकत्रित कर डार की पूर्ति करते हैं। अन्य भाषा के भावों को भाषा में व्यक्त करने के लिये कई तद्भा- शब्द ग्रन्थकारों को अन्य भाषाओं से अपनी भाषा में प्रचलित करने पड़ते हैं। तथा दार्शनिक ग्रन्थों को लिखने में इस ही विशेष आवश्यकता उपस्थित हुआ करती सी अवस्था में हिन्दी-भाषा-भाषी लोगों का थम कर्त्तव्य है कि जब उन्हें हिन्दी-भाषा में भाव को व्यक्त करने वाला शब्द न मिले तब वे लोग भारत की विश्वसमादृत तथा अनेक भाषाओं की जन्मदात्री संस्कृत भाषा से सहायता लिया करें। जब संस्कृत भाषा उनके मनो-भिलषित कार्य्य को पूर्ण न कर सके तब वे भारत के बाहर की भाषा से भी अपने अभिप्रेतार्थ को सिद्ध करने के लिये सहायता ले सकते हैं। इस समय हिन्दी भाषा के क्षेत्र में प्रवेश करनेवाले विद्वान् दो दलों में विभक्त हुए पाये जाते हैं। एक दल के विद्वानों की सम्मति है कि आधुनिक हिन्दी भाषा में अन्य भाषाओं के जो शब्द प्रचलित हो गये हैं उनके स्थान में संस्कृत से शब्द लेकर प्रचलित नहीं करना चाहिये क्योंकि उन्हें समझने में बहुतेरे पाठकों को बड़ी असुविधा से सामना करना पड़ता है। इतना ही नहीं किन्तु कई पाठक गण संस्कृत के अधिक शब्दों को न जानने के कारण पुस्तक पढ़ना ही छोड़ देते हैं। जब लोग पुस्तक ही नहीं पढ़ते तब उस पुस्तक के लिखने से किस प्रकार के लाभ की सम्भावना की जा सकती है। दूसरे दल के विद्वानों का कथन है—और वह है भी बहुत ठीक—कि हिन्दी भाषा के उन्नायकों का यह प्रथम कर्त्तव्य एवं धर्म्म है कि वे लोग हिन्दी भाषा में अन्य भाषाओं के जो शब्द प्रचलित हो गये हैं उनके स्थानों में भी संस्कृत से शब्द लेकर प्रचलित करें। ऐसा करने से कुछ काल में हिन्दी भाषा का निज का शब्दभंडार भी बढ़ जायगा और अन्य-भाषा-भाषी लोगों को प्रसंग पड़ने पर यह कहने का अवकाश नहीं मिलेगा कि हिन्दी भाषा में अमुकभाव व्यक्त करने के लिये उसका निज का कोई शब्द ही नहीं है। दूसरे दल का कथन हिन्दी के हितार्थ बहुत समर्थक और सार-गर्भित जान पड़ता है। दूसरे दल के कथनानुसार आदि से ही कार्य्य आरम्भ कर दिया गया होता तो जिन विदेशी शब्दों को बहुत दिनों से प्रचलित होने के कारण प्रथम दल के थोड़े से लोग हटाना नहीं चाहते, उनके स्थान में उसी प्रकार प्रचलित संस्कृत से लिये हुए हिन्दी के निज के शब्द पाये जाते। और जो लोग आज दिन इन शब्दों को संस्कृत के कठिन शब्द कह कर इनसे डरते हैं,

और इनके कारण हिन्दी के ग्रंथों का पठन पाठन छोड़ देते हैं उन्हें आज इन शब्दों से भयभीत होने की तादृश संभावना ही नहीं रहती। दूसरे दल के लोगों का कथन निःसंदेह बहुत उपयुक्त और सयौक्तिक है। अन्य-भाषा-विशारद जन भी दूसरे दल के इस कथन का समर्थन करते हैं, इसके उदाहरण स्वरूप में हम निम्नलिखित प्रसंग को श्रीयुत बाबू कौड़ीमल जी माल्लू लिखित "हिन्दी की वर्त्तमान दशा और उसकी समुन्नति का उपाय" शीर्षक लेख से उद्धृत करते हैं:—

"मख़ज़न" उर्दू भाषा का एक विशाल मासिक पत्र है जो लाहौर से प्रकाशित होता है। इसके मई सन् १९१० के अंक में "तालीम संस्कृत की ज़रूरत" शीर्षक लेख, जो एक मुसलमान सज्जन की सुयोग्य लेखनी और उदारहृदय का परिचय देता है, पढ़ने योग्य है। उस बड़े लेख में मौलवी महमूद अली साहब प्रोफ़ेसर रणधीर कालेज लिखते हैं:—

संस्कृत भी ऐसी ही वसीअ ज़बान है। इस लिये अगर इसको जानने वाले बहुत हो जाँय तो रोज़ मर्राह के कारोबार में इन लोगों की ज़बान से ज़रूर संस्कृत अल्फ़ाज़ निकला करेंगे और होते होते मुर्रवज ज़बान का जुज़ बन जांयगे और इसलिये संस्कृत की इशाअत का एक बड़ा फ़ायदा यह होगा कि हमारी मुल्की ज़बान वसीअ हो जायगी और इख्त सार के साथ बहुत से उम्दा मतालिब अदा हो सकेंगे।"

उक्त अवतरण पर टीका टिप्पणी करते हुए बाबू कौड़ीमल जी माल्लू ने निम्न लिखित बातें बहुत ही उचित लिखी हैं "एक मुसलमान बंधु के क़लम से ऐसी सुमति देख कर उन हिंदुओं को लज्जित होना चाहिए जो हिन्दी में संस्कृत का शब्दबाहुल्य देख कर खिन्न होते हैं। जिस संस्कृत का विदेशी अथवा विधर्मीय विद्वान जिनका संस्कृत के साथ कोई धार्मिक सम्बन्ध नहीं, इतना आदर करें उस

देववाणी पर जो हमारी धार्मिक वि
का अश्रद्ध रहना हमारा मौर्ख्य ए
तो और क्या है? चाहे जितनी सामा
अथवा साहित्य-संबंधिनी सभाएं रचं
हिन्दू-समाज की वास्तविक उन्नति, वि
प्रचार के नितांत दुःसाध्य है।" मौल
अली साहब की उक्त सम्मति माल्लू जी
वर्ष आप लोगों की सेवा में उपस्थित करदी
उस पर आप लोगों ने पूर्णतया अब तक वि
लिया होगा। संभव है आप में से बहुतेरे
उक्त प्रोफ़ेसर मौलवी साहब की उक्त सम्म
समर्थक, पोषक और पक्षपाती होंगे। हिन्दी के
यक सज्जनों की सेवा में हमारी सादर यही प्रा
है कि वे लोग दूसरे दल की सम्मति के अ
संस्कृत से आवश्यक शब्दों को लेकर उनका
में निर्भयतापूर्वक प्रचार करें। इस का परि
ठीक वही होगा जो उक्त मौलवी साहब ने अपने
में व्यक्त किया है। इसके उदाहरणस्वरूप में
नीचे दो बातों का और उल्लेख करते हैं। प्रथ
यह है कि सन् १८७७ में गोलोकवासी श्रीयुत
तेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी श्रीमती महारानी वि
रिया के लिये "राजराजेश्वरी" शब्द का प्रयोग
लित नहीं कर देते तो आज दिन उसे विद्वानों
सिवा अन्य लोग क्वचित् ही जानते। तब से प्रचलि
किए हुए इस शब्द का प्रचार उक्त मौलवी साह
कथनानुसार इतना अधिक हो गया है कि अब
ग्राम्य पाठशालाओं के छोटे छोटे बच्चे तक इस श
को जानते हैं, और समयानुसार इसका उ
बड़े प्रेम से करते हैं। दूसरी बात यह है कि थो
ग्राहकों के सरस्वती से संबंध छोड़ देने के भय
संस्कृत के अविरल भक्त स्वगुण विख्यात पं
महावीर प्रसाद जी द्विवेदी अपनी लेख प्रणाली
आवश्यक के स्थान पर "दरकार" और बस या प
के स्थान पर "काफ़ी" का प्रयोग प्रारंभ न कर
तो आज तक द्विवेदी जी के पाठकों को उक्त दो
शब्द उक्त मौलवी साहब के कथनानुसार अनभि

हो जाते और अब कोई उनके विषय में आपत्ति करता। इस समय सम्भव है कोई अन्य-भाषा-[illegible] हिंदी जी के पाठकों से यह बात साभिमान [illegible] तुम्हारी हिन्दी में क्या भरा है, उसमें "दर- [illegible] द ही [illegible] को [illegible] के अतिरिक्त उपायांतरही नहीं दीख [illegible] यहां लों जो कुछ निवेदन किया गया है [illegible] ह बात स्पष्टतया जानी जा सकती है कि [illegible] हिंदी भाषा को सुसम्पन्न तथा सुसमृद्ध चाहते हैं उन्हें उचित है कि वे लोग थोड़े से पाठकों के अनुचित दबाव के नीचे अपने को न दब जाने दें। किंतु दृढ़ता के साथ अपने व्रत के व्रती बने रहें। ऐसा करने से अर्थात् संस्कृत से शब्द लेकर हिन्दी की कोषवृद्धि करते रहने से धीरे धीरे उनका अभिप्रेतार्थ अवश्यमेव सिद्ध और सफल हो जायगा।

भाषा की उन्नति का पता उन मुद्रणालयों से भी लग सकता है जो किसी भाषा की सेवा कर उसकी उन्नति में तत्पर रहा करते हैं। इस समय मध्यप्रदेश में जहां जहां जो जो मुद्रणालय हिन्दी की सेवा किया करते हैं उनका किंचित् परिचय अधोलिखित कोष्ठक में दिया जाता है।

मध्य प्रदेश के मुख्य मुख्य मुद्रणालयों की सूची—

मुद्रणालय का नाम	मुद्रणालय का स्थान	मुद्रणालय के स्वामी का नाम	मुद्रणालय में जो काम प्रायः किये जाते हैं	विशेष विवरण
[illegible]यूम प्रेस	रायपुर	मुल्ला शमसुद्दीन साहब	इसमें बहुधा सरकारी कार्य्यालयों के फ़ारम और निमंत्रणपत्र आदि छापे जाते हैं	
[illegible]रीमी प्रेस	रायपुर	मुंशी अब्दुल करीम साहब	"	
[illegible]रामदास प्रेस	राजनांद गांव	एक कंपनी	"	इससे एक साप्ताहिकपत्र हिन्दी में निकाला गया था। यह थोड़े ही दिन चल कर बंद हो गया
[illegible] प्रेस	छिंदवाड़ा	[illegible]	[illegible] में हिन्दी अनुवाद छापा जाता है	

मध्यप्रदेश में हिन्दी की अवस्था।

क्रम-संख्या	मुद्रणालय का नाम	मुद्रणालय का स्थान	मुद्रणालय के स्वामी का नाम	मुद्रणालय में जो काम प्रायः किये जाते हैं	विश
५	सरस्वती विलास प्रेस	नरसिंहपुर	श्रीयुत ननेलाल मुरलीधर जी	इसमें बहुधा सरकारी कार्यालयों के फ़ारम और निमंत्रण पत्र आदि छापे जाते हैं।	इसमें हि छोटी मोटी भी छापी
६	सुबोधसिंधु प्रेस	खंडवा		"	इस छापेखाने सुबोध सिंधु ना साप्ताहिक मरा पत्र बहुत दिनों निकला करता इधर थोड़े दिनों उसका कुछ अंश हिन्दी में भी निक जाने लगा है।
७	अनंत वैभव प्रेस	वर्धा	श्रीयुत गुलाबराव वकारामजी राड़े	"	
८	जैन सुधाकर प्रेस	वर्धा	श्रीयुत जिनदास नारायण चौरे।	"	
९	नटवरप्रेस	रायगढ़	रायगढ़स्टेट।	"	
१०	यूनियन प्रेस	जबलपुर	एक कंपनी	"	इसमें हिन्दी की छोटी मोटी पुस्तकें भी छ जाती हैं। मध्यप्रदेश की सु सिद्ध मासिक प का "हितकारिणी" इसी मुद्रणाल छापी जाती है।
११	जयचन्द्र प्रेस	वर्धा	जयचन्द श्रवणे	"	

इनके सिवा नागपुर और जबलपुर में और भी कई बड़े बड़े छापेखाने हैं।

इस कोष्टक की ओर थोड़ी दृक्पात करने से जाना जा सकता है कि इस समय मध्यप्रदेश में जितने मुद्रणालय हैं उनमें प्रायः सरकारी कार्यालयों के फ़ार्म, रिपोर्ट और हिन्दी की छोटी मोटी पुस्तकें छापी जाती हैं। बंबई के श्रीवेंकटेश्वर मुद्रणालय । लखनऊ के नवलकिशोर छापेखाने के सदृश यहां एक भी मुद्रणालय में हिन्दी की बड़ी बड़ी उपयो पुस्तकें नहीं छापी जातीं। छापी कहां से जांय? इ प्रदेश के हिन्दी-भाषा-भाषी विद्वद्गण हिन्दी वैसी पुस्तकें लिखते ही नहीं तो बापुरे मुद्रणाल

है। उनमें से दो मासिक पत्रों का कुछ अधिक परिचय देना आवश्यक बोध होता है। इनमें से प्रथम कृषि-समाचार है। इस मासिक पत्र को इस प्रदेश की सरकार ने अपने ख़र्चे से प्रचलित किया है। इस मासिक पत्र का एक मात्र उद्देश्य यही है कि मध्यप्रदेश के ६७,८२,२०० हिन्दी-भाषा-भाषी लोगों में उत्तम कृषि के शास्त्रीय ज्ञान का प्रचार किया जाय। सरकार की इस अमोघ कृपा के लिये इस प्रदेश के हिन्दी के कृतविद्य लोगों का समाज निरन्तर कृतज्ञ बना रहेगा। मध्यप्रदेश की सरकार इस प्रदेश के हिन्दी-भाषा-भाषी जनों में विद्या और ज्ञान का प्रचार करने के लिये हिन्दी के एक ऐसे सामयिक पत्र को पुरस्कृत कर प्रचलित करना चाहती है जिसका इस प्रदेश से घना संबंध हो और जो शिक्षा संबंधी पत्र का तथा समाचारपत्र का काम दे सके। हिन्दी के ऐसे पत्र को प्रचलित कर उसका अभिप्रेतार्थ यदि सिद्ध हो जायगा तो वह इस प्रकार का मराठी का पत्र भी प्रचलित करेगी। ईश्वर हमारी दयालु सरकार को इस कार्य में कृत कृत्य करे जिससे बापुरी हिन्दी की भलाई हो।

दूसरा पत्र बालाघाट-समाचार है। बालाघाट के वर्त्तमान डिपटी कमिश्नर श्रीमान् डेवर साहब बहादुर की असीम कृपा और वहाँ के कतिपय अन्यान्य उच्चपदस्थित सरकारी कर्मचारियों के उद्योग से ... संगठित की गई है। उसी मंडली द्वारा ... प्रकाशित किया जाता है। इस प्रदेश के ... ज़िलों में भी ऐसी मंडलियाँ संगठित कर हि... उन्नति का उपाय किया जाय तो बहुत अच्छा...

प्राचीन समय से यह प्रदेश गोंडवा... जाता है। उस समय हिन्दी भाषा के साहि... उन्नत करने की यद्यपि आज दिन की सी सुवि... कूल नहीं थी तथापि उस समय के हिन्दी-भा... विद्वज्जन हिन्दी भाषा की सेवा से एकदम... और उदासीन नहीं थे। उस समय के विद्वा... जिस प्रकार के ग्रंथों से सर्व्व साधारण की... समझते थे उस प्रकार के ग्रंथ लिखने में उन... ने परिश्रम किया था। उस समय के लोगों ने... भाषा में जो जो ग्रंथ लिखे थे उनका उल्ले... जहाँ तक हमें ज्ञात हो सका है, आगे करते... ग्रंथकर्त्ताओं के वर्त्तमान उत्तराधिकारियों... परम पुनीत कर्त्तव्य कर्म है कि ये लोग उनके... को, जो अब तक छापे नहीं गये हैं, छपवा... वर्त्तमान समय में जैसे ग्रंथों की आवश्य... वैसे ग्रन्थ स्वयं लिख कर अपने पूर्वजों का... सरण करें।

मध्यप्रदेश के प्राचीन ग्रंथकारों तथा उनके ग्रंथों के नाम।

क्रमिक संख्या	ग्रंथकारों के नाम	उनके लिखे हुए ग्रंथों के नाम	ग्रंथों में वर्णित विषयों का परिचय।	विशेष परिचय
१	श्रीमान् महंत राजा लछमन दासजी ग्रयुडंटरी चौक, छुई खदान	१—दोहापर्ली	इसमें कई प्रकार के शिक्षाप्रद उपदेशों का वर्णन है	प्रकाशित

ग्रंथकारों के नाम	उनके लिखे हुए ग्रंथों के नाम	ग्रंथों में वर्णित विषयों का परिचय।	विशेष परिचय
	२–श्रीकृष्ण और श्री राधाजी की लीला के छोटे मोटे १०० ग्रंथ	इन सब ग्रंथों में दोहा, चौपाई, सवैया, मनहर आदि छंदों में भिन्न २ लीलाओं का बहुत ही मनोहर भाषा में वर्णन है	ये सब ग्रंथ अभी तक बिना छापे ही रखे हुए हैं।
श्रीमान् पंडित-वर महाराज बेनीरामजी पाठक, खड़वा	१–छप्पय रामगीता	इसमें छप्पय छंद में अध्यात्म रामायणांतर्गत रामगीता का सुबोध वर्णन है।	प्रकाशित
	२–आर्य्यारामायण	इसमें आर्य्या छंद में अध्यात्मरामायण को मराठी भाषा में वर्णन है।	यह ग्रंथ एक कान्यकुब्ज ब्राह्मण द्वारा मराठी भाषा के पद्य में लिखा गया है और ग्रंथकारके शिष्य स्वनामधन्य राय बहादुर राजाराम जी दीक्षित द्वारा छपवाया गया है। अन्य भाषा के पद्य में ग्रंथ लिखना सचमुच ही बड़ा कठिन काम है।
श्रीयुत पंडित गोपाळ कविजी मिश्र रतनपुर	१–रामप्रताप	इसमें रामचरित्र है	ये सब ग्रंथ बहुत बड़े बड़े हैं और इनकी कविता बहुत रोचक है। प्रथम दो प्रकाशित हो चुके हैं।
	२–भक्ति चिंतामणि	इसमें कृष्णचरित्र है	
	३–जैमिनी अश्वमेध	पांडवों का अश्वमेध यज्ञ	
	४–खूब तमाशा	इसमें चाणक्यनीति और वर्त्तमान काल की स्थिति का वर्णन है	

अनुक्रम संख्या	ग्रंथकारों के नाम	उनके लिखे हुए ग्रंथों के नाम	ग्रंथों में वर्णित विषयों का परिचय।	विशेष परिचय
४	श्रीयुत कवि माखन मिश्र	... ...	... ...	यह उक्त गोपाल मिश्र के इन्होंने अपने पिता के ग्रंथप्र सहायता दी थी। आपने भी ग्रंथ थे पर वे ग्रंथ ज्ञात नहीं हो सकते
५	श्रीयुत बाबू रेवारामजी कायस्थ-रतनपुर	१–रामाश्वमेध	इसमें श्रीरामचन्द्रजी के अश्वमेध की कथा है	
		२–विक्रमविलास	इसमें सिंहासनबत्तीसी का पद्यानुवाद है।	
		३–लोकलावण्य	इसमें जगत का वृतान्त है	
		३–माधवगीत	इसमें श्रीकृष्णचरित्र है	यह संस्कृत में है।
		४–गंगा लहरी	इसमें गंगा जी की स्तुति है	
		५–नर्मदा लहरी	इसमें नर्मदा जी की स्तुति है	
		६–ब्राह्मणस्तोत्र	इसमें ब्राह्मणों की स्तुति है	
		७–रत्नपरीक्षा	इसमें रत्नों के गुण-दोषों का वर्णन है	
		८–रत्नपुर इतिहास	इसमें रतनपुर का इतिहास है।	
		९–शीतलास्तोत्र	नाम से विषय प्रकट है	

ग्रंथकारों के नाम	उनके लिखे हुए ग्रंथों के नाम	ग्रंथों में वर्णित विषयों का परिचय।	विशेष परिचय
[श्री]युत बसीहंस-[रा]ज जी रतनपुर	१—प्रेमसागर २—सनेहसागर ३—बरसा तरंग	नाम से ही विषय प्रकट है	
[श्रीयु]त रघुवर-[दया]ल दुबे (दुर्ग)	छंदरत्न माला	छंद विषयक ग्रंथ है	
श्रीयुत पं० जिया लालजी तिवारी —राजिम	फुटकर काव्य	... ...	
श्रीयुत पं० मुरली प्रसादजी पुरोहित राजिम	फुटकर काव्य	... ...	
श्रीयुत पं० गोपाल प्रसादजी दुबे, [भू]तपूर्व डिपुटी-इंस्पेक्टर स्कूल —कांकेर	फुटकर काव्य	... ...	
[श्री]युत पं० नंद-[ला]ल प्रसादजी [दु]बे रायपुर	फुटकर काव्य	... ...	

इस संग्रह में मध्यप्रदेश के उन अर्वाचीन [प्रा]चीन ग्रंथकारों तथा उनके ग्रंथों का परि-[च]य दिया जाता है जिन्होंने हिन्दी की सेवा कर [यश]लाभ किया है। इन ग्रंथकारों के वर्त्त-[मान] उत्तराधिकारियों को उचित है कि वे भी इस दिशा में अपने पूज्य पूर्वजों का वर्तमान समय के अनुकूल पदानुसरण करें और अपनी मातृ-भाषा हिंदी से वर-प्रसाद प्राप्त करने का प्रशंसनीय उद्योग करें।

मध्यप्रदेश के अर्वाचीन स्वर्गवासी ग्रंथकारों तथा उनके ग्रंथों की सूची।

अनुक्रम संख्या	ग्रंथकारों के नाम	उनके लिखे हुए ग्रंथों के नाम	ग्रंथों में वर्णित विषयों का परिचय	प्रकाशित वा अप्रकाशित	विशेष विवर
१	श्रीमान् राजा साहब कमल नारायण सिंह जी फ़्यूडेटरी चीफ़ खैरागढ़	१–कमल प्रकाश	नामही से विषय प्रकट होते हैं	प्रकाशित	
		२–कमलनारायण विनोद		,,	
		३–कमलमहर्ष		,,	
		४–शीतलायश मालिका		,,	
		५–दिल्ली दरबार वर्णन	इसमें लाट कर्ज़न के समय के दिल्ली दरबार का वर्णन है	अप्रकाशित	
२	रायबहादुर मुंशी डोरी लाल साहब सेटलमेंट आफ़िसर मध्यप्रदेश	हिंदी की (पुरानी) प्रथम चार पुस्तकें।	प्रारम्भिक पाठ्य पुस्तकें।		इनकी ये पुस्त आरंभिक पाठ शालाओं में पढ़ जाती थीं।
३	श्रीयुत पंडित अनंतरामजी पांडेय रायगढ़	१–कपटीमुनि नाटक	तुलसीकृत रामायण के कालकेतु के उपाख्यान के आधार पर रचित	प्रकाशित	
		२–इशोपनिषद्	...	,,	
		३–कुंडलिया कदंब	नीति और उपदेश		
४	पं० मालिक राम त्रिवेदी।	रामराज्य वियोग नाटक	...	अप्रकाशित	
५	श्रीयुत बाबू दशरथ लालजी	राधास्नेह	श्रीमती राधाजी के स्नेह का वर्णन है	अप्रकाशित	
६	श्रीयुत पं० नंदलालजी बी० ए०	१–गोवर्धन वर्धिनी	नाम से ही विषय प्रगट है	अप्रकादित	
		२–शकुंतला नाटक			
		३–मालिनी माला		,,	ये पुस्तकें प्रदेश में प्रा युक्त स्वीकृत।

ग्रंथकारों का नाम	उनके लिखे हुए ग्रंथों के नाम	ग्रंथों में वर्णित विषयों का परिचय	प्रकाशित या अप्रकाशित	विशेष परिचय
श्रीकृष्ण किशोर दास जी दाऊ	१-कृष्ण चन्द्रिका	कृष्ण खंड	प्रकाशित	
	२-सुमन चेतिनी	पुष्पों के नाम का संग्रह	”	
श्रीयुत उमराव बख्शीजी, सैरागढ़	१-फ़तेह विलास	नामही से विषय प्रकट है	अप्रकाशित	
	२-फ़तेह विनोद			
	३-नवस्कंध भागवत			
	४-आदिपर्व्व महाभारत			
	५-रासलीला			
	६-कवित्त रामायण			
	७-रामायण नाटक			
	८-सतसई टीका			
	९-काव्यप्रबोध			
	१०-मृगासत्य			
	११-राजनीति			
	१२-गणित विनोद			
श्रीयुत पंडित जय गोविन्दजी-मिश्रोरीनिवासी (रियासत, सैरागढ़)	१-गीत गोविंद	नामही से विषय प्रकट है	अप्रकाशित	
	२-भजनावली			
	३-लीलावती			

मध्यप्रदेश में हिन्दी की अवस्था।

क्रमसंख्या	ग्रंथकारों के नाम	उन में लिखे हुए ग्रंथों के नाम	ग्रंथों में वर्णित विषयों का परिचय	प्रकाशित या अप्रकाशित	विशेष
१०	श्रीमान् राजा जगमोहन सिंह जी—विजयराघवगढ़ाधीश	१–श्यामास्वप्न २–मेघदूत ३–शकुन्तला	श्रृंगार विषयक	अप्रकाशित	इन राजा स[illegible] को एक [illegible] श्रृंगार रस की[illegible] कविता रचती थी[illegible]
११	श्रीयुत गोपाल कवि—विख्यात नाम बख़्तावर बाबू (खैरागढ़)	१–पिंगल छंदावली २–अनेकार्थ	पिंगल विषयक ग्रंथ अमरकोष का भाषानुवाद	...	
१२	श्रीयुत खंडेराव-जी मराठे (सिमगा)	१–भक्तविरदावली २–राधाविनोद ३–ज्ञानमाला	नामही से विषयक प्रकट है	...	
१३	श्रीयुत भूपाल-सिंहजी (खैरा-गढ़)	वैद्यविलास (संस्कृत)	नाम से ही विषय प्रकट है	अप्रकाशित	

अब आगे इस प्रदेश के उन वर्तमान हिंदी हैं, जो इस समय हिन्दी की सेवा यथाशक्ति
ग्रंथकारों तथा उनके ग्रंथों का उल्लेख किया जाता रहे हैं।

क्रमागत संख्या	ग्रंथकारों के नाम	उनके लिखे हुए ग्रंथों के नाम	ग्रंथों में वर्णित विषयों का परिचय	विशेष वि
४	श्रीयुत पंडित लोचनप्रसादजी पांडेय असिस्टंट मास्टर हाईस्कूल—रायगढ़	१—कविता कुसुम-माला।	इसमें हिन्दी के प्रसिद्ध प्रसिद्ध कवियों के ९१ पद्य प्रबन्धों का संग्रह है।	प्रकाशित
		२—प्रवासी।	इस पद्यप्रबंध में एक प्रवासी ने अपने घर, ग्राम तथा मनोविकारों को प्रदर्शित किया है।	प्रकाशित
		३—नीतिकविता।	इसमें बालकों को सुशील तथा सच्चरित्र बनाने वाले उत्तमोत्तम २२ पद्यप्रबंध हैं।	प्रकाशित
		४—बालिकाविनोद	इसमें लड़कियों को सुगृहिणी बनाने का उपदेश देने वाले ८ पद्यप्रबंध हैं।	"
		५—शोकोच्छ्वास	इसमें स्वर्गवासी भारतेश्वर सप्तमएडवर्ड की अकाल-मृत्यु पर पद्यों में शोक प्रदर्शित किया गया है।	"
		६—हिन्दू विवाह और उसके प्रचलित दूषण।	नाम से ही विषय प्रकट है।	"
		७—रोगी-रोदन	इसमें रोगी के मनोविकारों का प्रदर्शन किया गया है।	"
		८—दो मित्र	... ...	मध्यप्रदेश के शिक्ष विभाग ने इसे प्राइ और लायब्रेरी बु स्वीकृत किया है।
५	श्रीयुत पंडित विश्वनाथजी दुबे, राजिम	एडवर्डकाव्य	इसमें स्वर्गवासी राजराजेश्वर सप्तमएडवर्ड का पद्य मय जीवनचरित है	यह पुस्तक इस प्रदेश में प्राइजबु स्वीकृत की गई।

ग्रंथकारों के नाम	उनके लिखे हुए ग्रंथों के नाम	ग्रंथों में वर्णित विषयों का परिचय	विशेष परिचय
...युत बाबू झीवरासनलाल ...भूतपूर्व डिपुटी इंस्पेक्टर स्कूल्स-मुरवाड़ा	संततिरत्न	इसमें संतति के सुधारने के बहुत अच्छे उपाय लिखे गये हैं।	प्रकाशित
...पण्डित गंगाप्रसाद अग्निहोत्री –छुईखदान	१-निबंधमालादर्श	इसमें अच्छे अच्छे प्रबंध हैं	यह पुस्तक प्राइज़ और लायब्रेरीबुक स्वीकृत की गई है
	२–संस्कृत कविपंचक	इसमें संस्कृत के कालिदासादि पाँच कवियों के ग्रंथों की आलोचना और उनका इतिहास है।	
	३–राष्ट्रभाषा	इसमें हिन्दी की राष्ट्रभाषा होने की योग्यता प्रदर्शित की गई है।	
	४–प्रणयीमाधव	उपन्यास	प्रकाशित
	५–रसवाटिका	इसमें सब रसों का सरल गद्य में उदाहरण और स्पष्टीकरण सहित वर्णन है।	प्रकाशित
	६–नर्मदाविहार	इसमें नर्मदा तीरस्थ होशंगाबाद का पद्य में वर्णन है।	प्रकाशित
	७–कान्यकुब्ज ब्राह्मणों की अवस्थाओं का वर्णन	इसमें कान्यकुब्ज ब्राह्मणों की प्राचीन तथा अर्वाचीन अवस्थाओं का वर्णन है।	प्रकाशित
	८–मेघदूत	सरल हिन्दी में व्युत्पत्ति सहित मेघदूत का भाषानुवाद है।	यह ग्रंथ अभी लों अप्रकाशित पड़ा है
	९–तुलसीकुसुममाला	इसमें तुलसीकृत रामायण के शिक्षाप्रद पद्यों का संग्रह है।	अप्रकाशित

क्रमिक संख्या	ग्रंथकारों के नाम	उनके लिखे हुए ग्रंथों के नाम	ग्रंथों में वर्णित विषयों का परिचय	
		१०-डाक्टर जानसन का जीवन चरित	नाम से ही विषय प्रकट है	
		११ नीतिमुक्ताहार	इसमें गद्य में नीतिविषयक बड़े बड़े १२ प्रबंध हैं।	प्र
		१२-इतिहास	... ...	प्रक
८	श्रीयुत चंपालालजी जौहरी खंडवा	...	... ...	इनने कुछ पु हैं पर हमें सरल न
९	श्रीयुत रायसाहब नानकचन्दजी बी० ए० सुपरिंटेंडेंट ट्रेनिंग इंस्टिट्यूशन मेल नार्मल स्कूल—जबलपुर	पदार्थविज्ञान	नाम से ही विषय प्रकट है	यह पुस्त प्रदेश की शालाओं में जाती है।
१०	श्रीयुत पं० गणपतिलालजी चौबे एजंसी इंस्पेक्टर—रायपुर	देशी कसरत का अनुक्रम	इसमें देशी कसरत करने की रीति प्रदर्शित की गई है	इस पुस्तक के अनुसार मध्य पाठशालाओं र्थियों को सिखाई जाती
११	श्रीयुत बनारीप्रसादजी रायपुर	अमृतफल	इसमें श्रीमद्भागवत का छंदोबद्ध अनुवाद है।	
१२	श्रीयुत हीरालालजी मास्टर—धमतरी	दुर्गायण	इसमें दुर्गाजीका चरित्र है	
१३	श्रीयुत चुन्नीलालजी रायपुर	भक्तानंदपयोनिधि	इसमें श्रीमद्भागवत का पद्यानुवाद है	
१४	श्रीयुत विसाहूरामजी सुवर्णकार—धमतरी	कृष्णायण	कृष्णचरित्र	

ग्रंथ कारों के नाम	उनके लिखे हुए ग्रंथों के नाम	ग्रंथों में वर्णित विषयों का परिचय	विशेष परिचय
...पुत्र पंडित मेदिनीप्र-...दजी पांडेय—रायगढ़	१—गणपति उत्सव दर्पण	इसमें रायगढ़ के गणपति उत्सव का पद्यमय वर्णन है	
	२—श्रृंगार सुधा-निधि	...	
	३—पद्यमंजूषा	इसमें स्फुटपद्यों का संग्रह है	
...पुत्र बाबू श्यामलालजी सारंगढ़	१—खगेशशतक	नीति कविता	
	२—सुयशचंद्रिका	इसमें श्रीमान राजा साहब सारंगढ़ का पद्यमय जीवन चरित्र है	
...सी मुहम्मद याकूब-रायपुर	लावनी भजन		
...पुत्र ठाकुर प्यारेसिंहजी ...र्मा—राजिम	राजिम माहात्म्य	इसमें राजिम का वर्णन है।	
...निवासी राजा साहब वीर-...मर्दनजी परिहार	१—राजकुमार शिक्षा २—राजशास्त्र	नाम से विषय प्रकट है।	
...सो उमरदारबेग रायपुर	नीति (फुटकर)		
...पुर कुँवर बहादुरसिंहजी ...पुर मुंसिफ़ रायपुर	१—मधुला प्रव-लाकर		
	२—सोऽहम्विलास		
...पुत्र लाला सियामलालजी	१—मन की खेल-वाड़		
	२—विद्यानाटक		
	३—मित्रप्रमोद		
	४—धर्म्म निर्णय		
...पुत्र ...ठेड़ जीवपर ...दूबे रायपुर	सीतास्वयंवर		

अनुक्रम संख्या	ग्रंथकारों के नाम	उनके लिखे हुए ग्रंथों के नाम	ग्रंथों में वर्णित विषयों का परिचय	विरे
२४	श्रीयुत बाबू हरिदासजी खंडेलवाल मालगुज़ार सिंघवाड़ा (जबलपुर)	१-धर्मसमीक्षा २-ईश्वरध्यान ३ विवादद्ग्विजय ४-मर्य्यादा ५-धर्मनिर्णय	नाम से ही विषय प्रकट हैं	१
२५	रायबहादुर पण्डा बैजनाथ जी बी० ए०—भंडारा	१-थियासोफ़ी मार्गदर्शक २-मुमुक्षु का मार्ग	धर्म विषयक	प्र
२६	पं० मंगलप्रसादजी द्विवेदी सूबेदार वर्धा	१-कलिकाशतक २-मंगलविनोद	भक्ति विषयक	

इस समय मध्यप्रदेश के राजकीय कार्य्यालयों में उच्च श्रेणी के पदों पर जो हिन्दी-भाषा-भाषी सज्जन विद्वान प्रतिष्ठित हैं उनकी और हिन्दी-भाषा-भाषी वकील बैरिष्टरों की संख्या अनुमान २६३ के लगभग है। इनके सिवा और भी कई स्वतंत्र व्यवसायी सज्जन अच्छे विद्वान् हैं। इस प्रदेश में हिन्दी-भाषा-भाषी इतने विद्वान् होने पर भी हिन्दी की सेवा करनेवाले इनमें से इतने थोड़े हैं कि उनकी संख्या नहीं के सदृश कही जा सकती है। इस प्रदेश के हिन्दी भाषा भाषी विद्वान् लोग हिन्दी की सेवा में योग नहीं देते। इसके दो कारण हमें ज्ञात हुए हैं। प्रथम कारण तो ये लोग यह कहा करते हैं कि हम लोग जिस कार्य्य पर नियुक्त हैं उसके मारे हमें अवकाश ही नहीं मिला करता। और दूसरा कारण ये लोग यह कहा करते हैं कि ग्रंथ लिखने में इस प्रदेश की सरकारकी अप्र- सन्नता का भय बना रहता है। इन दोनों कारणों की निःसारता यहीं उदाहरण से प्रकट हो सकती

है। उदाहरण श्रीयुत बाबू जगन्नाथ [illegible] असिस्टंट सेटलमेंट आफ़िसर विल[illegible] इस बात को हम साधिकार कह सकते [illegible] अधिक काम बंदोबस्त के दफ़्तरों में क[illegible] उतना अन्यत्र कचित्‌ही करना पड़ता [illegible] इतनी संकीर्णता होने पर भी मातृभ[illegible] सेवा करना हमारा कर्त्तव्य है, इस बु[illegible] रहने के कारण छंदःप्रभाकर और [illegible] जैसे बृहत् ग्रंथ उक्त बाबू साहब ने [illegible] विषयों पर लिख कर प्रकाशित कर [illegible] की इच्छा उक्त बाबू साहब में बलवती [illegible] अंग्रेज़ी में ग्रंथ लिख कर अन्यान्य पु[illegible] बहुत सा धन कमा लेते। पर आप[illegible] किया। आपने प्रचंड परिश्रम के साथ [illegible] लिखने और छपवाने में अपनी गाढ़[illegible] सहस्रों रुपये खर्च कर डाले। आपने [illegible] सेवा के कारण कल्याणमयी मृदुल प्रकृति [illegible]

...आपके माथे पर बना रहेगा। और
हिन्दी भाषा का इतिहास इस संसार में
तब तक आपका नाम उसमें चमकता
बाबू साहब ने अपनी पुस्तकें इस प्रदेश
सभी बड़े बड़े अधिकारियों को भेंट में अर्पण
र उन पर कभी किसी ने आपत्ति नहीं की।
१८९४ में बैतूल ज़िले में जब तत्कालीन
चीफ़ कमिश्नर साहब बहादुर वहाँ दौरे
थे तब उक्त बाबू साहब ने अपने छंदःप्रभा-
र प्रति आपकी सेवा में अर्पण की थी।
श्रीमान् चीफ़ कमिश्नर साहब बहादुर ने
र और हर्षपूर्वक स्वीकार कर बहुत
समीप उक्त बाबू साहब को संबोधन करके
मुख से कहा था कि आप जैसे ग्रंथकारों
अधीनस्थ उच्च श्रेणी के कर्मचारियों में
अत्यंत आनंद होता है। भरोसा है कि इस
जान कर जो लोग बिना कारण भयभीत
हैं उनका भय दूर हो जायगा और वे लोग
ग्रंथों को छोड़कर अन्य सब विषयों पर
ग्रंथ लिखने के लिये उत्साहित होंगे।

जिन वर्तमान ग्रंथकारों का उल्लेख किया
उनके अतिरिक्त इस प्रदेश में निम्न लिखित
हिन्दी के सहायक विद्यमान हैं। उनके
इस प्रकार हैं।

श्रीयुत पंडित प्यारेलाल जी मिश्र बी ए०,
रायपुर

श्रीयुत पंडित रघुवरप्रसाद जी द्विवेदी बी ए०,
संपादक हितकारिणी,
जबलपुर

श्रीयुत पंडित नर्मदाप्रसाद जी मिश्र, रायपुर

श्रीयुत बाबू माणिकचन्द जी जैनी, बी० ए०
बी० वकील खंडवा

श्रीयुत पंडित चक्रपाणि जी त्रिपाठी,
सोहागपुर.

इन सज्जनों में से किसी ने हिन्दी में कोई उल्लेख-योग्य ग्रंथ अभी तक, जहाँ तक हमें विदित है, नहीं लिखा है; तथापि इनकी हिन्दी-विषयक सेवा विशेष रूप से प्रशंसनीय है।

इन सज्जनों के सिवा हिन्दी का स्मरण करने वाले और भी कई सज्जन इस प्रदेश में हैं। उनमें रायबहादुर बाबू हीरालाल जी बी० ए० असिस्टंट प्राविनशियल सुपरिंटेंडेंट मनुष्य-गणना-विभाग मध्य प्रदेश, श्रीयुत पंडित कृष्णचन्द्रजी शर्मा हेडमास्टर हाई स्कूल रायगढ़, श्रीयुत सेठ हरिशंकर जी माल-

से इस प्रदेश की सरकार आप से बहुत प्रसन्न है। आप ने अँगरेज़ी में इस प्रदेश के प्राचीन कई शिला-लेखों पर बहुत सार-गर्भित लेख लिखकर छपवाये हैं। सरस्वती के लिये हिन्दी में ऐसे लेख लिखने की हमने आप से एक बार प्रार्थना की थी। आशा है आप हमारी प्रार्थना पर उचित ध्यान देने की कृपा करेंगे।

मध्यप्रदेश में हिन्दी की अवस्था प्रदर्शित करने के अभिप्राय से यहाँ लों जो कुछ कहा गया है उससे अनायास ही आप लोग जान सकते हैं कि जिस हिन्दी को महाराष्ट्र देश तथा बंग देश के भाषातत्त्व-पारीण सज्जन भारत की राष्ट्रभाषा का उच्च पद प्रदान करने के लिये मुक्त कंठ से अपनी उत्कंठता प्रकाशित कर रहे हैं, जिस हिन्दी की उन्नति के लिये मध्यप्रदेश की सरकार तन, मन, धन से उद्योग कर रही है, उस हिन्दी के अत्यंत आवश्यक उत्कर्ष के लिये इस प्रदेश के हिन्दी-भाषा-भाषी विद्वज्जन कुछ भी नहीं कर रहे हैं। निःसन्देह यह बहुत दुःख, शोक और लज्जा की बात है। जिस समय इस प्रदेश में हिन्दी-भाषा-भाषी विद्वान् नहीं थे, उस समय यहाँ के हिन्दी-भाषा-भाषी जनों को शिक्षा देने के लिए यहाँ की विद्याप्रिय सरकार ने अन्यभाषा-भाषी सज्जनों से हिन्दी में पाठ्य पुस्तकें लिखवा कर हिन्दी को उन्नत करने का सराहनेयोग्य उद्योग किया। अब

ईश्वर की इच्छा ग्रैार हमारी सरकार की उदार कृपा से इस प्रदेश में सैकड़ों हिन्दी-भाषा-भाषी विद्वान् हो गये हैं। ऐसी अवस्था में इन हिन्दी-भाषा-भाषी विद्वज्जनों का सर्व्व प्रधान कर्तव्य है कि इस प्रदेश की सरकार हिन्दी की उन्नति के लिये जो उद्योग कर रही है उसके साथ पूरी पूरी सहानुभूति प्रकाशित कर आप भी हिन्दी के उन्नति-विषयक कार्य्य में सहायता दें। इस प्रदेश के हिन्दी-भाषा-भाषी विद्वज्जनों के ऐसा करने से ही हिन्दी का हिन्दित्व स्थिर रह कर उत्कर्ष को प्राप्त होगा। अन्यथा अर्थात् हिन्दी-भाषा-भाषी विद्वज्जनों के हिंदी के विषय में उपेक्षा करने से उसका अत्यंत कड़ुआ फल यही होगा, ईश्वर ऐसा न करे, कि इस प्रदेश की बोल चाल तथा ग्रंथप्रणयन की हिन्दी-भाषा धीरे धीरे राय साहब मुंशी मथुराप्रसाद साहब के क़ानूनी हिन्दी अनुवाद ग्रंथों की भाषा का रूप धारण कर लेगी। अतः जिन हिन्दी-भाषा-भाषी विद्वज्जनों की सर्वगुण आगरी, अपनी मातृ-भाषा हिन्दी पर भक्ति ग्रैार श्रद्धा है, जिसका होना अत्यन्त आवश्यक है, उन्हें उचित है कि वे अपनी जन्म-भाषा हिन्दी-विषयक उपेक्षा, आलस्य, अवकाश न मिलने का थोथा बहाना आदि को छोड़ कर जिससे जितना ग्रैार जिस प्रकार का हिन्दी की उन्नति के लिये उद्योग ग्रैार परिश्रम किया जा सकता है, उतना वह अवश्यही करे। हिन्दी की उन्नति के लिये उद्योग करने का अभिप्राय यही नहीं है कि सभी लोग उसमें ग्रंथ लिखने के लिये दौड़ पड़ें; ग्रैार न यही है कि जो लोग उसके उत्कर्ष के लिये परिश्रम करते हैं उनके साथ किसी प्रकार की सहानुभूति ही प्रकाशित न की जाय। हिन्दी की उन्नति के लिये प्रयत्न करने का अभिप्राय यही है कि जो लोग उसकी उन्नति के लिये ग्रंथ लिखते हैं या पत्र प्रकाशित करते हैं, उन्हें सब प्रकार का प्रोत्साहन दिया जाय अर्थात् उनके ग्रन्थ या पत्र मूल्य देकर लिये जांय, वे सावधानतापूर्वक पढ़े जांय, उनकी उचित आलोचना की जाय इत्यादि इत्यादि।

मध्यप्रदेश के वर्त्तमान हिन्दी-भाषा-भाषी तथा धनवानों को उचित है कि वे अपने ६[illegible] हिन्दी-भाषा-भाषी जनों में जबलपुर की हित[illegible] पत्रिका के सदृश उत्तमोत्तम अनेक मासिक, [illegible]हिक ग्रैार दैनिक पत्रों का प्रचार करने [illegible] उद्योग करें। जब तक पत्रों की संख्या नहीं [illegible] जा सकती है तब तक हितकारिणी को ही सा[illegible] का रूप देने के लिये सहायता प्रदान करें। अकेले [illegible]लपुर में ही हिंदी-भाषा-भाषी ऐसे धनाढ्य [illegible] हैं कि जो चाहें, ग्रैार अब उन्हें ऐसी चाह [illegible] ही चाहिये, तो अर्थ-सहायता दे, अभी हित-का[illegible] को साप्ताहिक कर दे सकते हैं। अब यह किसी से छिपी नहीं है कि सभ्य देशों में जिस[illegible] की जन-संख्या ५०००० हजार से भी न्यून हो[illegible] उसमें भी छः छः दैनिक ग्रैार कोड़ियों मासिक, साप्ताहिक पत्र प्रकाशित किये जाते हैं। ऐसी अ[illegible] में मध्यप्रदेश के जिन हिन्दी-प्रधान नगरों की संख्या एक लाख से ऊपर है, उनमें हिन्दी में [illegible] भी साप्ताहिक पत्र का प्रकाशित न किया जाना [illegible] दिन संसार के सभ्य समाज के समीप अकेले आ[illegible] की ही सामग्री नहीं किन्तु महालज्जा की भी [illegible] है। अन्त में उस सर्वशक्तिमान् ईश्वर से हमारी सादर तथा सानुरोध प्रार्थना है कि वह इस [illegible] के हिंदी-भाषा-भाषी विद्वज्जनों को तथा ध[illegible] जनों को वह शक्ति, वह सामर्थ्य, वह उत्साह, वह अनुराग प्रदान करे जिससे ये लोग, हिंदी [illegible] उन्नति के लिये इस प्रदेश की सरकार जो [illegible] कर रही है, उसके साथ सहानुभूति प्रकाशित [illegible] हिंदी की उचित सेवा कर सकें, ग्रैार इस [illegible] राजा प्रजा दोनों का कल्याण तथा मंगल-स[illegible] कर सकें।

इस लेख के आदि में ही हम इस बात सूचित कर चुके हैं कि हमें आज के इस लेख से महत्त्व पूरित लेख को लिखने के लिये यहां [illegible] प्रकार की अनुकूल सामग्री प्राप्य नहीं है।

में भी जिन हिन्दी-भाषा-भाषी सज्जनों ने हमें सामग्री प्रदान की है, उन सबके कृतज्ञ हैं। श्रीमान् पंडित गणपतिलाल एक्स्ट्रा असिस्टेंट इंस्पेक्टर शिक्षा-विभाग, रायपुर के हम अधिकतर कृतज्ञ हैं। आपने निःसंदेह बड़ी उदारता और उत्कंठा के साथ इस लेख के लिये उपयोगी बहुत सी सामग्री हमारे पास भेजने की कृपा की है।

साहित्य की उन्नति के इतने प्रतिबन्धक नहीं हैं जितने संयुक्तप्रदेश में हैं।

दोनों प्रान्तों की भाषा में भेद

संयुक्तप्रान्त में उर्दू भाषाभाषी महाशयों का संसर्ग होने के कारण वहाँ बहुत काल पर्यन्त राजा शिवप्रसाद वाली हिन्दी का ख़ूब ज़ोर रहा और अब भी कई लेखकों के लेखों में यवन-शब्दावली का आधिपत्य और उर्दू रचना की झलक रहती है। कई उत्तम लेखक इस अकबरी विवाह से इतनी घृणा करते हैं कि वे ख़ासे भाषा-सम्बन्धी प्यूरिटन (Puritan) बन बैठे हैं और जिस प्रकार प्यूरिटन लोग पोपलीला से सहस्र योजन दूर भागते थे वैसे ही इन हिन्दी प्यूरिटनों के मस्तिष्क को यावनी भाषाओं के शब्द तथा प्रयोग श्रवण मात्र से विक्षिप्त कर देते हैं। बहुत समय के प्रचलित शब्दों का भी बहिष्कार कर देना इन महाशयों का मूल मंत्र बन रहा है।

दूसरे संयुक्तप्रान्त की लिपि के कई नियम हमारे प्रान्त के नियमों के विरुद्ध हैं। हमारे यहाँ जो शब्द "सक्ता" है वह वहाँ "सकता" है। हम लिखते हैं "कहे" तो वे लिखते हैं "कहै"। ऐसे ही कई भिन्न २ लिपिनियम देखने में आते हैं।

मध्यप्रदेश के शब्द-समूह में न तो शुद्ध संस्कृत शब्दों की ही अधिकता है और न उर्दू शब्दों की। हाँ, कई प्रचलित उर्दू शब्द तो इस प्रान्त में व्यवहृत होते हैं, पर यहाँ के हिन्दी भाषाभाषियों का संसर्ग मुसलमानों की अपेक्षा मराठों के साथ अधिक हुआ है और मराठी में जो संस्कृत शब्द प्रचलित हैं वे हिन्दी में आगये हैं। यहाँ की हिन्दी में संस्कृत शब्दों के अपभ्रंश अधिक पाये जाते हैं। हमारे प्रान्त की पाठ्य पुस्तकों में एक विशेषता और है। उनमें जो अरबी व फ़ारसी के शब्द व्यवहृत हुए हैं उनका उच्चारण उन्हीं भाषाओं के उच्चारण के सदृश रखने का प्रयत्न किया गया है। यहाँ की लिपि में उर्दू के नुक़्तों की भरमार है [illegible] विद्यार्थी "ज़िला" न लिखकर "जिला", "अ[illegible] न लिखकर "अफगान", "मअ़लूम," न [illegible] सादा "मालूम" लिखें तो अवश्य ही प[illegible] फ़ेल कर दिये जाँय। अन्यान्य प्रान्तों में इस [illegible]

हमारी पाठ्य पुस्तकें

यहाँ यह कह देना उचित होगा कि हमारे [illegible] की वर्त्तमान पाठ्य पुस्तकों की भाषा इतनी [illegible] नहीं समझी जाती जितनी कि उनसे पहले [illegible] पुस्तकों की थी। फिर क्या कारण है कि अच्छी [illegible] में लिखी हुई पुस्तकों को निकालकर आजकल [illegible] पुस्तकें चलाई गई हैं, जिनकी भाषा ऐसी उत्त[illegible] समझी जाती? इसका यही उत्तर है कि कई [illegible] ऐसी भाषा के विरोधी हैं, जिसमें संस्कृत-श[illegible] व्यवहार अधिक किया जाता है। हम भी ज[illegible] कि आरम्भिक शिक्षा पाकर ही जिन लोगों के [illegible] यन का अन्त हो जाता है उनको सरल भा[illegible] जितना अधिक ज्ञान दिया जा सके उतना ही [illegible] है। अतएव प्राइमरी श्रेणी तक की पाठ्य पु[illegible] सरल भाषा ही में लिखी जानी चाहिये, पर व[illegible] इतनी सरल नहीं कि उनके सीखने वाले हि[illegible] साहित्य के लघुरत्नों का भी आदर करने में अस[illegible] हों और साधारण समाचार-पत्रों की भी भाषा [illegible] समझ सकें। रहे मिडिल और हाईस्कूल श्रे[illegible] की शिक्षा पाने वाले विद्यार्थी, सो इनकी पाठ्य पु[illegible] तो इस प्रकार की होनी चाहियें कि उन्हें पढ़[illegible] वे हिन्दी-साहित्य के सभी छोटे बड़े रत्नों का [illegible] समझ सकें। उनका शब्द-भण्डार इतना [illegible] जाना चाहिये कि हिन्दी की कठिन से कठि[illegible] पुस्तकों के समझने में वह उनके काम आवे [illegible] वे उत्तम साधुभाषा में, और नहीं तो साधा[illegible] निबन्धादि तो, लिख सकें। हमें बहुत सन्देह है [illegible]

की पाठ्य पुस्तकों के पढ़ने से बालकों
नहीं आती। इसका एक कारण और
न पुस्तकों में साहित्य भाग बहुत अल्प है।
[illegible] ने ये ग्रंथ शुष्क ऐतिहासिक पाठ,
प्राकृतिक भूगोल, कृषि, स्वच्छता,
[illegible] विषयों से ऐसे भरे हैं कि
उन्हें पढ़ना निरा भार समझते हैं।
शिक्षा, आदर्श-जीवन-चरित्र, नाटक,
निबन्ध, सामयिक व प्राचीन कविता-
[illegible] साहित्य से ये ग्रंथ शून्य ही हैं।
[illegible] वर्नाक्यूलर प्राइमरी और मिडिल
के ग्रामीण विद्यार्थियों के लिये उपयुक्त
हों, पर जिन बालकों को इन विषयों को
[illegible] भी अंगरेज़ी में सीखना पड़ता है,
[illegible] साहित्य के अमृतमय रसास्वादन से
[illegible] न जाने कौन सी नीति है। मेरे तथा
सहायक मास्टरों के प्रयत्न से शिक्षा-
[illegible] ने अब इतनी सुविधा
कि ऊँची २ मिडिल कक्षाओं में हेडमास्टर
[illegible] चाहें पढ़ावें। खेद की बात है कि
संग्रह के अतिरिक्त हिन्दी में कोई ऐसी
इन कक्षाओं के लिये नहीं हैं, जिनमें
[illegible] के सदृश भांति २ के पाठ हों, जो
प्रत्येक अंश से विद्यार्थियों को परिचित
उनके ज्ञान-भण्डार की उन्नति भी करते
आप जानते ही हैं कि शिक्षा-प्राप्ति और रुचि
का उत्तम समय पाठशालाओं में ही व्यतीत
अतएव उत्तम पाठ्यपुस्तकों के अभाव से
में हमारी मातृभाषा को बहुत बड़ी हानि
है।

हमारे मातृ-भाषा-शिक्षक

के साथ कहना पड़ता है कि इस प्रान्त की
[illegible] के अधिकांश शिक्षक हिन्दी-
के प्रेमी नहीं दीखते। यदि उन्हें अपने
से दो दिन की छुट्टी मांगनी पड़ती है

"दयालु स्वामी
बाद मुआइना के अभी कार तालीम ठीक २
तौर से शुरू नहीं हुआ। चुनांचे फ़िदवी की अर्ज़ है
कि इस कमतरीन को दो योम की रुख़सत इनायत
फ़र्माई जावे।"

मुझे तो अनुभव से मालूम हुआ है कि ये महाशय शुद्ध हिन्दी में निवेदनपत्र लिखने में अपनी मान हानि समझते हैं। जब अध्यापकों की यह दशा है तो उनके विद्यार्थियों से क्या आशा की जाय। अब अँगरेज़ी की उच्चशिक्षा पाये हुए मातृभाषा के सपूतों की सपूती देखिये। मैंने यह नियम कर रक्खा है कि दफ़्तर की कार्रवाई के सिवा और सब व्यावहारिकपत्र मातृभाषा ही में लिखे जायें। मैंने अपने सब अँगरेज़ी-शिक्षा-प्राप्त बड़े बड़े उपाधिधारी मित्र महाशयों से यह निवेदन कर रक्खा है कि हमारा पारस्परिक पत्र-व्यवहार मातृभाषा ही में हुआ करे। मैं तो अपने नियमानुसार हिन्दी ही में लिखा करता हूँ, पर कई महाशयों से पत्र मिलता है अँगरेज़ी में। बहुत अपने आपको [illegible] महाशय यही उत्तर दिया करते हैं कि "आई क्या करूँ, एक तो हिन्दी में लिखने के लिये अधिक समय लगता है, दूसरे अपने भाव प्रकट करना बड़ा कठिन हो जाता है, तीसरे भूल हो जाने की शङ्का लगी रहती है। अभ्यास न होने का यह [illegible] है"। वास्तव में उनका कथन सत्य है। स्कूलों की दूषित हिन्दी-शिक्षा-पद्धति का परिणाम यह नहीं तो और क्या हो सकता है? ऐसी ही दशा [illegible] मास्टरों की भी है। मैंने पहले ३ वर्ष तक [illegible] नामक हिन्दी-साप्ताहिक-पत्र चलाया, तदनन्तर १ [illegible] तक शिक्षाप्रकाश और अब [illegible] नामक मासिक पत्रिका चला रहा हूँ, पर देखता हूँ कि मध्यप्रदेशीय लेखक [illegible] नहीं होते। [illegible] महाशयों ने अँगरेज़ी में उच्चश्रेणी की शिक्षा प्राप्त की है वे हिन्दी में लिखना [illegible] नहीं समझते, पर यह करने में सङ्कोच नहीं करते कि अँगरेज़ी में कहिये तो लेख लिखें पर हिन्दी [illegible]

आपही कर लीजिये। ऐसे उपाधिधारी ग्रैज्युएट बहुत थोड़े हैं जिन्हें मातृभाषा के पठनपाठन में रुचि हो। खेद के साथ कहना पड़ता है कि मध्य-प्रदेश में जहां १४ ज़िले हिन्दी बोलते हैं और जहां उत्तरीय भारत के समान मातृभाषा की उन्नति के प्रतिबन्धकों का अभाव है उसकी ऐसी दशा है।

मध्यप्रदेश में हिन्दी-साहित्य-सेवा।

जहां तक हम जानते हैं इस प्रान्त में कोई धुरन्धर गद्यलेखक अभी तक नहीं हुआ। यदि हिन्दी-लेखकों की नामावली तैयार करने का अवसर आवे तो पण्डित गङ्गाप्रसाद अग्निहोत्री, रियासत छुईखदान, पं० विनायकराव, जबलपुर, और बाबू जीवराखनलाल, कटनीमुड़वारा, को छोड़ हमें ऐसे कोई महाशय नहीं दीखते जिन्होने गद्यात्मक स्वरचित ग्रंथ प्रकाशित किये हों। पं० गङ्गाप्रसाद अग्निहोत्री का 'निबन्ध मालादर्श' नामक ग्रंथ हिन्दी-साहित्य का एक रत्न समझा जा सकता है। आप के लेख भी सामयिक पत्रों में प्रकाशित हुआ करते हैं। हाल ही में आपने कान्यकुब्ज ब्राह्मणों की दशा पर एक छोटी सी पुस्तक लिखकर श्रीवेङ्कटेश्वर मुद्रालय में छपवाई है। पं० विनायक-राव महाशय चार पाठ्य पुस्तकों के रचयिता हैं। आपने संसार की बाल्यावस्था नामक एक छोटी सी पुस्तक बहुत वर्ष पहले लिखी थी और अभी हाल में अयोध्याकाण्डसार नाम की एक छोटी सी पुस्तक की रचना की है। आपका 'जटलक़ाफ़िया' हास्यरस से पूर्ण तो अवश्य है, पर उसकी गणना साहित्यग्रंथों के साथ करना उचित नहीं है। आपने नार्मलस्कूल में शिक्षा पाने वाले विद्यार्थियों के लिये एक शिक्षाप्रबन्ध नाम की पुस्तक भी लिखी है, पर रामायण के अयोध्या और अरण्यकाण्ड पर आपने जो टीका लिखी है वह अवश्य ही बहुत उपयोगी समझी गई है। आप अन्यान्य काण्डों पर भी इसी प्रकार की टीका लिख रहे हैं। आप कविता भी करते हैं और इन्हीं सब बातों से स्थानीय सरकार ने पं० विनायकराव जी को काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा में अपना प्रतिनिधि ब[illegible] था।

बाबू जीवराखनलाल, भूतपूर्व डि० [illegible] विभाग भी हिन्दी-साहित्य-प्रेमी हैं। आपकी [illegible] रत्न नाम' की पुस्तक हाल ही में प्रकाशित [illegible] और प्रायः सभी पत्रों ने उसकी प्रशंसायुक्त [illegible] लोचना की है। आशा है कि आपकी लेख[illegible] ऐसी कई पुस्तकें निकलेंगी।

मुल्ताई के वर्तमान तहसीलदार श्रीयुत ना[illegible] यण-महादाजी आगटे ने अभी हाल में ज्ञानसाग[illegible] नाम की एक विज्ञान-विषयक पुस्तक निकाली है।

मृत गद्य लेखकों में ठाकुर जगमोहनसिंह का [illegible] 'श्यामा स्वप्न' इस प्रदेश में प्रसिद्ध था, पर अब [illegible] नहीं मिल सकता। गढ़ा निवासी गोंटिया प्र[illegible] सिंह ने कई वर्ष पहले एक उत्तम नाटक की रच[illegible] की थी, पर उनकी मृत्यु के बाद वह फिर नहीं छपा।

मण्डला के पं० गणेशदत्त पाठक के रचे हुए सम्पति-शास्त्र-सम्बन्धी एक छोटे से ग्रन्थ ने कुछ प्रशंसा प्राप्त की है।

कवियों में छन्दः प्रभाकर के रचयिता श्रीयुत बाबू जगन्नाथप्रसाद, खड़ी बोली में कविता करने वाले पं० कामताप्रसादगुरु तथा पं० लोचनप्रसाद पाण्डेय का नाम सरस्वती, हितकारिणी आदि पत्रिकाओं के पाठकों को परिचित है। छत्तीसगढ़ के एक महाशय ने कई वर्ष पहले 'थोपड़वड़ हार' प्रकाशित किया था, पर उनका नाम इस समय विस्मृत हो गया है। 'कृष्णायनं' नामक काव्य के रचयिता महोदय भी इसी गोंडवाने के घोरान्धकार प्रकाश हैं। बस इनके सिवा और ग्रन्थ लेखकों के नाम हम नहीं बतला सकते।

मध्यप्रदेश में छापाखाने और सामयिक पत्र।

जबलपुर में ५ बड़े छापाखाने हैं जिनमें हिन्दी के ग्रन्थ, सामयिक पत्रादि छप सकते हैं। २० वर्ष

हनुमन प्रेस से 'विक्टोरिया सेवक' नाम का साप्ताहिक पत्र निकला और दो चार वर्ष चल कर बन्द हो गया। जबलपुरस्थ शुभचिन्तक प्रेस यूनियन प्रेस से 'शुभचिन्तक' नामक साप्ताहिक-पत्र १० वर्ष के लगभग चलकर ११ वर्ष पहले बन्द हो गया। नागपुर के देश-सेवक-प्रेस से निकल कर 'हिन्दी-केसरी' ने भी दो एक वर्ष घोर ... किया की, पर अन्त में अशान्ति-रूपिणी राक्षसी का भक्ष्य कर गई। विगत वर्ष 'शिक्षाप्रकाश' नामक मासिकपत्र जबलपुर के यूनियनप्रेस में मुद्रित होकर एक वर्ष तक निकला, पर उसने ... रूप से विरक्त हो स्त्री रूप धारण किया और अपना नाम "हितकारिणी-पत्रिका" रख लिया।

यह तो उन पुराने पत्रों का हाल है जो बन्द हो गये। अब हाल में जबलपुर से 'हितकारिणी' और बालाघाट से 'बालाघाट-समाचार'—ये दो मासिक-पत्र निकलते हैं। नागपुर से 'मारवाड़ी' नामक एक साप्ताहिक पत्र कुछ दिन से निकलने लगा है। जबलपुर और नागपुर के छापाखानों के सिवाय नरसिंहपुर का सरस्वती-विलास-प्रेस भी प्राचीन ग्रंथ छापने के अतिरिक्त 'मानीटर' नामक एक मासिकपत्र निकालता था, पर अब नहीं मालूम कि उसका क्या हुआ। अन्यान्य ज़िलों में भी छोटे मोटे छापाख़ाने हैं, पर उनमें कोई पत्र या ग्रंथ प्रकाशित नहीं होते।

उपसंहार।

उपर्युक्त लेख से स्पष्ट है कि मध्य-प्रदेश में हमारी मातृभाषा की दशा वैसी नहीं है जैसी कि होनी चाहिए थी। जहां १४ ज़िलों में प्रतिशत ९७ निवासी हिन्दी बोलते और अपने सारे कार्य्य हिन्दी ही में करते हैं वहां हिन्दी-साहित्य के एक भी स्वतंत्र पुस्तकालय का न होना कैसे शोक और लज्जा की बात है। जहां प्रायः सभी पाठशालाओं में हिन्दी ही की शिक्षा दी जाती है, वहां एक भी नागरी-साहित्य-वर्द्धिनी सभा का न होना कैसा खेदकर है। इतने बड़े प्रान्त से 'मारवाड़ी' के सिवाय एक भी दैनिक व साप्ताहिक समाचारपत्र का न निकलना हिन्दी भाषा की दीन दशा का सूचक है। सारांश यह कि इस प्रदेश में हिन्दी का ऐसा—निष्कण्टक आधिपत्य है कि विरोधाभाव से उसके प्रेमियों में उत्साह न आने का कोई कारण नहीं रहा। यहां विद्याप्रचार थोड़े ही समय से है अतएव यहां के निवासियों की रुचि अभी बहुत शिथिल एवं मन्द दशा में है। उसे जागृत करने के साधनों का भी अभी अभाव है। जिन थोड़े बहुत सज्जनों को कुछ कर्त्तव्य सूझता है उनकी दशा ऐसी है कि वे अन्यान्य कार्य्यों में फँसे हुए हैं। यदि कुछ उद्योगी सज्जन यहां एक नागरीसमिति खोल कर हिन्दी-साहित्य की उन्नति में दत्तचित्त हो जायँ तो लोगों के हृदयों में मातृ-भाषोन्नति का आविर्भाव हो। हमारी समझ में तो जब तक इस प्रदेश में एक समिति वा परिषद स्थापित न हो और उसके सभ्य पूर्ण प्रयत्न न करें तब तक यहां मातृभाषा का उद्धार अति कठिन दीखता है। ऐसा होने से लोगों में रुचि प्रबल होगी और मातृ-भाषा की उन्नति करना वे अपना कर्त्तव्य समझने लगेंगे।

हमारा शिक्षाविभाग तो अब भी कहीं कहीं भिन्न भिन्न ज़िलों में पुस्तकालय खोल रहा है और कई हिन्दी पुस्तकों के अतिरिक्त वहां 'हितकारिणी-पत्रिका' 'मर्य्यादा' और 'सरस्वती' लेने की आज्ञा दी गई है। कोई कोई डिप्टीइन्स्पेक्टर तथा हेडमास्टर, जिन्हें हिन्दी में रुचि है, हिन्दी की उन्नति करने में हर्ष के साथ समय देते हैं, पर साधारणतः स्कूलों में हिन्दी शिक्षा की उपेक्षा ही देखने में आती है।

अब अधिक लेख बढ़ाकर मैं समय नहीं लेना चाहता, पर अन्त में यही कहना उचित समझता हूँ कि इस प्रदेश में अनेक प्रतिबन्धकों के अभाव होने पर भी हिन्दी की दशा शोचनीय है।

मध्यप्रदेश में हिन्दी की अवस्था।

[लेखक—पण्डित ताराचंद दुबे]

सोरठा।

जिहि सुमरत सिधि होय, गणनायक करिवर बदन।
करहु अनुग्रह सोय, बुद्धि राशि शुभ गुण सदन॥

दोहा।

महि तनया मुख चंद के, जिहि चख चारु चकोर।
ताहि वन्दि कछु कहत हों, हिन्दि अवस्था घोर॥

उस सर्व-शक्तिमान् जगदीश्वर को कोटिशः धन्यवाद है जिस की अपार कृपा से अब हिन्दी की उन्नति के साधन तथा उसे राष्ट्र-भाषा बनाने के प्रयत्न हो रहे हैं। इसके संचालकों के कोटिशः धन्यवाद है। यह भारत की भावी भलाई का शुभ लक्षण है। देश की उन्नति तभी होती है जब देश में, एक भाषा, एक रहन, तथा एक ईश्वर-आराधना हो। हर्ष की बात है कि भारत के सब प्रान्तों ने हिन्दी को राष्ट्र-भाषा बनाना तथा उसे अपनाना स्वीकार कर लिया है और सब बाल, युवा, वृद्ध इस उद्योग में दत्त-चित्त हैं। ईश्वर करे वह दिन शीघ्र देखने में आवे जब हिन्दी भाषा का पत्र नागरी लिपि में लिखा हुआ बङ्गदेश तथा मद्रास आदि में मातृ-भाषा समझा जाकर आदर पावे।

संसार में देश के नाम से भाषा को नाम दिया जाता है और वही भाषा वहां की राष्ट्र-भाषा कहलाती है, जैसे फ़्रांस की फ़्रेंच, जरमनी की जरमन, चीन की चीनी, जापान की जापानी, इंग्लैंड की इंग्लिश, फ़ारस की फ़ारसी, काबुल की काबुली आदि। भारत का दूसरा नाम हिन्द है जिस(का) प्रमाण भविष्योत्तर पुराण में मिलता है। अस्तु, यह(ां) की राष्ट्र-भाषा हिन्दी होनी चाहिये थी परन्तु अभाग्य-वश यह अब तक नहीं हुआ। भिन्न भिन्न प्रान्तों ने अपनी २ ढपली पर अपना २ राग गाया, जिस(का) प्रतिफल यह हुआ कि भारत एक देश होकर ए(क) न हो सका, एक प्रान्त वाले दूसरे से मातृ-भाषा में प्रेम-पूर्वक वार्त्तालाप न कर सके, एकता क्या है और इसमें क्या प्रभाव है, इस तत्त्व को न समझ सके।

एक समय था जब भारत की राष्ट्र-भाषा एक संस्कृत मात्र थी, उसके अन्तरगत बंगाल(ी) मराठी, उड़िया, तैलंगी, पंजाबी, करनाटकी, आदि भाषायें थीं। ये सब संस्कृत की शाखायें हैं। जब लोग शक्तिहीन हो चले, तब संस्कृत का लोप होने लग(ा) क्योंकि यह कठिन भाषा थी, उसके बदले हिन्दी ने स्थान पाया, जो सरल और मीठी संस्कृत का म(ुख्य) अंग है। जब तक संस्कृत का अभाव रहेगा, हिन्दी उसके स्थान में अवश्य रहेगी और प्रतिदिन आदरणीय और उन्नतिशाली होती जावेगी; ऐसी ईश्वर की इच्छा प्रतीत होती है। आशा है, हिन्दू भाई इसकी उन्नति में तन, मन, धन से कटिबद्ध हो जावेंगे।

अब मैं मूल विषय की ओर चलता हूं। आ(ज)-कल भारत भर में हिन्दी की हीन दशा है, और मध्यप्रदेश जिस प्रकार सब बातों में हीन है उसी प्रकार यहां की हिन्दी की अवस्था भी बड़ी दुर्बल है। यहां न हिन्दी के कोई अच्छे विद्वान् हैं, न ग्रंथकार न लेखक, न कोई संस्कृत-शालाएँ, न हिन्दी के महाविद्यालय, न यथेष्ट समाचार पत्र, न श्रेष्ठ समा-

यों के पाठक, न यथेष्ट ग्राहक। यवनों के
जा टोडरमल की कृपा से भारत की हिन्दी
हो गई और उर्दू लिपि तथा फ़ारसी बोली
दिया गया परन्तु मध्यप्रदेश में यवनों का
न रहा। अस्तु, हिन्दी का बीज यहां पूर्व
ना हुआ है और उर्दू तथा फ़ारसी का
भाव नहीं जमने पाया और ब्रिटिश राज्य
देश पर बड़ी दया समझना चाहिए, कि
दरबारी भाषा विशेषरूप में हिन्दी तथा
गरी है। तात्पर्य अधिकांश हिन्दी की ही
ो सूबों (ज़िलों) में मराठी दरबारी भाषा
लिपि नागरी ही है। तात्पर्य मराठी की
ब्रिटिश-राज्य की मध्यप्रदेश पर इतनी कृपा
[illegible]

[illegible]
कार्यवाही हिन्दी में होती है। इतना ही
न राज्य की ओर से इस बात का अनुरोध
कि जहां तक हो प्रचलित हिन्दी शब्द राज्य-
प्रयोग किये जावें। राज्य की ओर से
न, आज्ञापत्र आदि छापे गये हैं उनमें वादी,
ा, साक्षी, समक्ष, उपस्थित, अथवा,
दि, द्वारा आदि, शुद्ध हिन्दी शब्दों का बर्ताव
या है, इतने पर भी कई वर्तमान टोडरमल
राज-काज में फ़ारसी, अरबी, शब्द लाकर
ो नष्ट भ्रष्ट कर रहे हैं; जैसे मनके, ग़रीब
जनाब आली, वल्द, अर्ज़परदाज़, अर्ज़ी,
फ़रीक़ैन, मवक्किल, आदि। और, आश्चर्य यह
ाई कोई इन अरबी, फ़ारसी शब्दों का अर्थ
जानते। एक दिन की बात है मैं एक बंगाली
महोदय के यहां बैठा था, उन्होंने एक प्रार्थना-
प्रकार लिखना प्रारंभ किया "मनके गनपत
ाभाराम जात विरहमन साकिन मुंगेली हस्ब
र्ज़ परदाज़ हूं" मैंने वकील
—"मनके" का क्या
ो के" का

जो वहां बैठे थे हंस पड़े, तब उनके लेखक ने—सम-
झाया "मनके" का अर्थ "मैं" है; तब मैंने कहा कि तीन
अक्षर के बदले में "मैं" एक अक्षर से काम क्यों
नहीं लेते। लेखक बोला ऐसा ही लिखना पड़ता है।
फिर मैंने पूछा—'भला वल्द का क्या अर्थ है'। तो
लेखक बोला—"बाप," तब मुझे हँसी आई, मैंने
कहा कि बाप नहीं "बेटा" है। देखिये, कैसी
भेड़िया धसान चली है कि अर्थ न जानकर भी लोग,
फ़ारसी, अरबी, शब्दों का प्रयोग कर रहे हैं, क्योंकि
वे इसी में मूर्खतावश अपना गौरव समझते हैं, बात
यह है कि हमलोग बात बात में विदेशप्रेमी हैं। अँग-
रेज़ लोगों में भी कई हिन्दी के अच्छे पंडित हैं पर वे
आपस या कुटुम्ब में कभी हिन्दी नहीं बोलते। पर
हम सब आपस में तथा घर में जहां तक सम्भव
होता है अँग्रेज़ी ही में भाषण करते हैं, फिर मातृ-
भाषा की उन्नति कैसे हो? अँगरेज़ लोग हँसी के
हेतु केवल नाटक में हिन्दुस्तानी वस्त्र पगड़ी आदि
धारण करते हैं, और हम लोग कोट, पैण्ट, हैट, नित्य
प्रति पहिनने में अपनी प्रतिष्ठा समझते हैं—होली,
मुहर्रम में मिहतर लोग कोट, पैण्ट, हैट धारण कर
अँगरेज़ों का स्वांग जब लाते हैं तब हम्हीं उन्हें देख
हँसते हैं, तो संभव है वे लोग भी हम पर हँसते होंगे।
न्यायालय की भाषा सुधारने में यदि हिन्दू वकील
भाई दत्तचित्त हो तो दरबारी भाषा अति शीघ्र सुधर
जा सकती है। सम्बलपुर पहिले मध्यप्रदेश में था,
अब बङ्गाल में सम्मिलित कर दिया गया है, वहां की
बोली उड़िया है पर वहां दरबारी भाषा हिन्दी है,
वहां सुन्दर हिन्दी शब्द उपयोग में लाये जाते हैं
जैसे, दीनबन्धु, श्रीमान्, प्रार्थना, आज्ञा, विवरण,
सेवक आदि। कारण यह है कि वहां यवनों का बल
नहीं था, दूसरे वह बंगाल का निकटवर्ती है जहां
का बँगला साहित्य बढ़ा चढ़ा है।

ो उत्तम न होने का मुख्य
क शिक्षा विभाग की पाठ्य
हैं। भाषा रोचक नहीं,

वाक्य अशुद्ध तथा अनमिल हैं। फ़ारसी, मराठी शब्द भरे हुए हैं। छंद भी दोषपूर्ण हैं।

जिस गृह की नींव कच्ची रह जाती या टेढ़ी हो जाती है वह घर दृढ़ नहीं हो सकता। बालकों को योग्य बनाना पाठ्य पुस्तकों पर निर्भर है। प्राचीन पुस्तकें, 'भोजप्रबंधसार' आदि वर्त्तमान पुस्तकों से कई अंशों में उत्तम थीं। अतएव पुस्तकों का सुधार अति आवश्यक है। इसमें राजा का अधिक दोष नहीं। इनके निर्माण हेतु शाला विभाग यहां के विद्वानों को चुनती है। यहां एक टेक्स्ट-बुक-कमेटी भी है। यह सभा पुस्तकों का शोधन करती है, पश्चात् पुस्तकें प्रचलित की जाती हैं। यहां के ग्रंथ-कर्त्ता प्रायः शिक्षा-विभाग के डिपुटी इन्स्पेक्टर तथा हाई स्कूलों के प्रधान पाठक होते हैं। ये सज्जन बहुधा इसी प्रान्त में शिक्षा पाये हुए होते हैं। इनको स्वयं हिन्दी भाषा का अच्छा ज्ञान नहीं होना-तब इनकी रचित पुस्तकें क्योंकर उत्तम होवें। यहां की पुस्तक-निर्माण-सभा में यदि संयुक्त प्रांत का एक उत्तम हिन्दी का विद्वान् रक्खा जावे तो इन पाठ्य पुस्तकों का दूषण मिट जा सकता है।

मध्यप्रदेश में पाठशालाओं की संख्या नीचे लिखे की भांति हैः—

	संख्या-शाला	संख्या-विद्यार्थी
कालेज	३	४५७
सेकण्डरीशालाएँ		
लड़का	३८७	४७८८५
लड़की	३८	२७६३
प्राइमरी शालाएँ		
लड़का	२६३६	१८४८१७
लड़की	२७५	१४२७४
देशी शालाएँ		
पहली		
दूसरी	७	
लड़का	१	१३९
लड़की	०	८८
		०
रजवाड़ी शालाएँ सेकण्डरी		
लड़का		१७
लड़की		०
रजवाड़ी शालाएँ प्राइमरी		
लड़का		२३६
लड़की		१२
एकत्र	३६५९	

ग्राम-संख्या के लेखे से प्रति १६ गांव शाला पड़ती है।

शिक्षा-सम्बन्धी व्यय इस प्रकार है

प्राविनशिअल इमपीरिअल रेविन्यू-

डिस्ट्रिक फंड.

म्यूनीसीपल फंड.

फ़ीस.

अन्य प्रकार से.

एकत्र

इसमें ब्रिटिश राज्य की ओर से हैं

शालाएँ

विद्यार्थी।

व्यय

अर्थात् राज्य की ओर से प्रति वि[illegible] प्रायः ५) वार्षिक का व्यय होता है। [illegible] १०) है। जन-संख्या जो. १२०, ५७, ९० [illegible] लेखे से प्रतिजन लगभग =) व्यय है, [illegible] प्रति मनुष्य के लिये व्यय ३॥) है। फ़ांस [illegible] जापान का ॥=) जर्मनी का ५=)। इससे [illegible] कि मध्यप्रदेश में शिक्षा बढ़ाने की कितन[illegible] आवश्यकता है।

मध्यप्रदेश में २२ ज़िले हैं जिनमें से [illegible] न्यायालयों की भाषा हिन्दी तथा लिपि नाग[illegible] और जिनमें शालाएँ थोड़ी उर्दू की छोड़कर सब[illegible]

की हैं। ७ ज़िले ऐसे हैं, जिनमें दरबारी
मराठी तथा शालाएँ मराठी की हैं और
की लिपि नागरी है। वहाँ के लोग
उत्तम प्रकार बोल तथा समझ सकते हैं और
के पूर्ण भक्त हैं। मध्यप्रदेश में प्रायः ९८
पीछे हिन्दी बोलने वाले हैं, उर्दू बोलने
हैं। ये दो भी हिन्दी उत्तम प्रकार से बोल
समझ सकते हैं। १८९१ की मनुष्य-गणना में
बोलने वालों की संख्या १५८३३२ थी। वही
में १३०४१५ रह गई अर्थात् १८ प्रतिशत क्षति
यहाँ बिलासपुर, रायपुर, दुर्ग इन ज़िलों की
भाषा छत्तीसगढ़ी है; यह एक प्रकार की
हिन्दी है, जैसे "कावर जाता है" (क्यों
) 'बने, बने,' (कुशल तो है) "तोनो तोर
हाँ है"। (बेटी तेरी माँ कहाँ है) "फेर का
(फिर क्या हुआ) इत्यादि। इसमें अधिक-
र हिन्दी शब्द हैं। अब यह छत्तीसगढ़ी, ज्यों
उशा बढ़ती जाती है दिन दिन सुधर रही
की गिनती हिन्दी में है, पर न जाने मनुष्य-
में यह क्यों भिन्न भाषा कर दी गई है।
दमोह, जबलपुर, नरसिंहपुर, हुशंगाबाद,
की भाषा हिन्दी बुन्देलखंडी मिली है।
तेभाव,' 'उते बैठो,' आदि। मंडला, छिंदवाड़ा,
ट, सिवनी की हिन्दी गोंड़ी मिश्रित है। नेमाड़
री, गुजराती-मिश्रित है, जिसे निमाड़ी कहते
गपुर, भंडारा, वर्धा, अकोला, यवतमहल,
और बुलढाना की बोली मराठी है। चांदा में
तथा मराठी बोली जाती है। मध्यप्रदेश में
रजवाड़े छत्तीसगढ़ में हैं जिनकी भाषा
छत्तीसगढ़ी है।

साहित्य-सेवी तथा कविजन।

मध्यप्रदेश में जो महाशय हिन्दी-साहित्य की
कर रहे हैं उनके नाम ये हैं:—

—श्रीमान् बा० जगन्नाथप्रसाद ब० से०
लासपुर, इन्होंने बड़े परिश्रम से

'छंदप्रभाकर,' ये दो उत्तम पिंगलग्रंथ तथा 'काल-
प्रबोध' और 'नवपंचामृतरामायण' निर्माण किये हैं।
काशी-कविसमाज ने आप को 'भानु" कवि की
उपाधि प्रदान की है। आप की कविता बड़ी मधुर
होती है।

२—पं० माधोराव सप्रे बी. ए. रायपुर आप
हिन्दी के बड़े भक्त हैं। आपने 'हिन्दीकेसरी' निकाल
हिन्दी-साहित्य की बड़ी सेवा की है। पत्र एक ही
वर्ष चल कर बंद हो गया। इन्हों ने "रामदास
बोध" मराठी पुस्तक का हिन्दी भाषा में अनुवाद
किया है।

३—पं० गंगाप्रसाद अग्निहोत्री, बुर्हानपुर। आप
हिन्दी के उत्तम लेखक हैं।

४—सेठ रामनारायण राठी, नागपुर। आप
"मारवाड़ी" पत्र हिन्दी में निकाल कर हिन्दी
की पूर्ण सेवा कर रहे हैं।

५—शंकरप्रसाद तमेर, मकलतरा, बिलासपुर।
हिन्दी के कवि हैं।

६—अमीर अली (मीर) देवरी-सागर। मुसल-
मान होकर भी हिन्दी के बड़े प्रेमी तथा कवि हैं।
कविता अच्छी करते हैं, यथा

> हिन्दू को कहेंगे हठि काफ़िर हो चाहे कुछ,
> यवन को कह के म्लेच्छ ही पुकारेंगे।
> तोड़ धर्म बंधन को बंधुन में वादाबाद,
> करने में हिताहित हम न विचारेंगे॥
> दो दिल को एक होके रहने न देंगे,
> मीर, कोशिश करेंगे कभी इसमें न हारेंगे।
> कोई व्यवसाय की न होड़ में पड़ेंगे,
> एक बात की विघटन में जन्म गुजारेंगे॥

समाचार पत्र—शोक के साथ लिखना पड़ता
है मध्यप्रदेश में हिन्दी साप्ताहिक पत्र एक "मार-
वाड़ी" मात्र नागपुर से निकलता है। दूसरी [illegible]
[illegible] पुर से। [illegible] है
[illegible] है, इसके [illegible]

हैं, पौधे हैं, लतायें वृक्ष सब हैं परन्तु जल के अभाव से सब मुर्झा रहे हैं। वृक्ष सूख रहे हैं, जलाशय जो हैं वे दूषित हैं। उनसे वाटिका को हानि प्रति दिन हो रही है। कूड़ा करकट के ढेर बढ़ रहे हैं। लताओं, पौधों को घास फांस ने चारों ओर से घेर लिया है। योग्य माली तथा उत्तम जल की बड़ी आवश्यकता है। यदि प्रबंध शीघ्र न होगा तो वाटिका के नष्ट हो जाने की आशंका है।

उन्नति के उपाय।

१—पाठ्य पुस्तकों के सुधार हेतु गवर्नमेंट से प्रार्थना की जावे कि एक योग्य पुरुष-श्रेष्ठ हिन्दी-वेत्ता पुस्तकों की भाषा सुधारने के हेतु नियत किया जावे और हिन्दी-शालाओं की संख्या बढ़ाई जावे।

२—सर्व साधारण की ओर से एक मध्यप्रदेश में हिन्दी महाविद्यालय स्थापन किया जावे जिसमें हिन्दी की १० कक्षायें रहें। वर्तमान में ६ कक्षाएं हैं ४ और बढ़ाई जावें। ७ वीं ८ वीं में वैज्ञानिक बातें तथा रामायण, सतसई, सूरसागर, लीलावती, व्याकरण, पिंगल, राजस्थान, इतिहास आदि पु
पढ़ाई जावें और ९ वीं में निबंध लिखना, पु
स्तक रचना, और काव्य करना सिखाया जावे। (१
में न्याय तथा दर्शन-शास्त्र प्रचलित किय
इन ४ नूतन परीक्षाओं के नाम प्रथम,
तृतीय तथा चतुर्थ श्रेणी या इस प्रकार के
कोई नाम रक्खे जावें। यह विद्यालय भावी हि
विश्व विद्यालय के अंतर्गत उसके अधीनस्थ र

३—हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की एक
मध्यप्रदेश में नियत हो जिसका अधिवेशन प्रति
भिन्न भिन्न स्थान में किया जावे।

४—सम्मेलन की ओर से एक उपदेशक
किया जावे जो मध्यप्रदेश में भ्रमण किया करे
सर्व साधारण को हिन्दी की उन्नति की ओर ला
रहे तथा द्रव्य एकत्रित करे।

अंत में इस आन्दोलन के संचालकों
अंतःकरण से तथा मुक्तकंठ से कोटिश:
वाद अर्पण करता हूं जिन्होंने मुझे भी कृपा
हिन्दी की सेवा करने योग्य समझा।

पञ्जाब में हिन्दी।

—:o:—

[लेखक—पण्डित सन्तराम शर्म्मा]

—:o:—

ह भाग भवेद्देव हिन्दी सर्वाङ्गसुन्दरी"

ञ्जाब में हिन्दी की दशा पर पंजाब के प्रमाणों से कुछ विचार मैंने प्रथम सम्मेलन में भेंट किये थे। अतः उनको ही आज फिर न दुहराकर मैं मैं हिन्दी के नये विरोधियों के पूर्व पुरुषों और सिख-गुरुओं) का हिन्दी प्रेम दिखला दों के लिए हितकर इस वर्ष के शुभ का वर्णन करता हूँ।

से एक ओर जहां सरल चित्त सिखों को अपने की भाषा वा इष्ट का पता लगेगा वहां जगत् हिन्दी-हितैषियों के हृदयों में पंजाबी सिख- की ओर श्रद्धा बढ़ेगी तथा नये वर्ष के नये से जहां आपको सर्वमान्य राष्ट्र-भाषा के में राज्य-सिंहासनारूढ़ होने का स्वरूप दे पड़ेगा वहां हिन्दी के विरोधी सिख को भी प्रतीत हो जायगा कि पञ्जाब में का हनन करना उनके लिए असम्भव है और लिए भी सिख-गुरुओं की भांति हिन्दी का रना ही उचित है।

पञ्जाब में हिन्दी की दशा।

न्दी को राष्ट्र-भाषा बनाने के लिए पञ्जाब की कठिनाइयां सामने आरही हैं वैसी और प्रान्त में नहीं हैं। इसका कारण यह है कि , महाराष्ट्र, गुजरात, सयुक्त प्रान्त आदि में तो ध राष्ट्र-भाषा बनाने के विषय में बंगाली, मराठी, गुजराती, उर्दू आदि एक ही एक भाषा स्पर्धा कर रही हैं. किन्तु यहां उर्दू तथा गुरुमुखी (पंजाबी) दो भाषाएँ इसका विरोध कर रही हैं। अधिक शोचनीय बात यह है कि जिन सिखों वा सिख-गुरुओं ने ईसा की सोलहवीं वा सत्रहवीं शताब्दी से लेकर आज तक हिन्दी का हित किया है उन्हीं की सन्तान आज गुरुमुखी का सहारा लेकर अपनी गुरु-भाषा वा मातृ-भाषा हिन्दी का हनन किया चाहते हैं। यही कारण है कि पञ्जाब में हिन्दी की दशा न केवल अन्य प्रान्तों की अपेक्षा शिथिल तथा शोचनीय है किन्तु यहां की अन्य भाषा उर्दू तथा गुरुमुखी की तुलना में भी हलकी है। मेरा विश्वास है कि यदि गुरुभक्त सिख गुरुमुख पुरुषों की तरह अपने गुरुओं के निर्दिष्ट मार्ग का अनुसरण करें तो शीघ्र ही पंजाब में हिन्दी की दशा भारत के सब प्रान्तों से उत्तम हो जाय।

सिख-गुरुओं का हिन्दी-प्रेम।

आज कल पंजाब में हिन्दी को राष्ट्र भाषा बनाने के कड़े विरोधी सिख लोग हैं। परन्तु जान पड़ता है यह विरोध वे किसी के दुष्ट मंत्र में आकर कर रहे हैं। अन्यथा यह बात बुद्धि में नहीं आती कि जिन सिखों के परम-पूज्य गुरुओं तथा उनके पीछे भक्तों, कवियों और सिख राजा महाराजाओं ने हिन्दी से अकथनीय प्रेम प्रकाशित किया था वे ही आज हिन्दी का विरोध करें। सिखों के गुरुओं का हिन्दी की ओर कैसा भाव था यह नीचे दिये हुए कुछ उदाहरणों से अच्छी तरह प्रकट होता है।

सिखों के आदि गुरु नानकदेव जी सिखों के मान्य "ग्रन्थसाहब" में क्षत्रियों की धार्मिक उदासीनता तथा फ़ारसी आदि पढ़ने की रुचि को देख कर शोक से कहते हैं:—

खत्तरियाँ ता धर्म छोड़िया म्लेच्छ भाषा गही
स्रेष्ट सब एक वर्ण होई धर्म की गति रही।

उपर्युक्त 'शब्द' में स्पष्ट रूप से गुरुजी ने आर्य भाषा हिन्दी को छोड़ म्लेच्छ भाषा के पढ़ने पर शोक प्रकट किया है; क्योंकि गुरुमुखी तो उस समय जन्मी ही न थी। गुरुजी अपने उपदेशों में सदा शुद्ध हिन्दी ही प्रयोग में लाया करते थे। इनके बाद के और २ गुरुओं ने भी इन्हीं की भांति अपने 'शब्दों' की रचना शुद्ध हिन्दी में की है।

पांचवें गुरु अर्जुनदेवजी, यद्यपि संस्कृत न जानते थे तोभी उन्हें श्रुत-ज्ञान इतना था कि वे हिन्दी-रचना को भी बहुधा संस्कृत की रीति पर किया करते थे। निम्न लिखित पंक्तियाँ देखियेः—

जेन कला धारियो आकाशं वैसन्तरं काष्ट वै ऽ।
जेन कला ससी सूर नखत्र जोतियं सासं सरीर धारनं॥
जेन कला मातगर्भ प्रतिपालं नहि छेदन्त जठर होगनह।
तेन कला अस्तंभं सरोवरं नानकनह छिजन्त तरंग तोयनह॥

यह श्लोक महाराज ने अमृतसर का तालाब (दर्बार साहब) बनवा कर उसकी स्थिति के लिए परमेश्वर से प्रार्थना के निमित्त रचा था। जो सिख संस्कृत भाषा को काक भाषा कहा करते हैं उन्हें इससे शिक्षा लेनी चाहिए।

एक और स्थान में ईश्वरोपासना करते हुए गुरुजी कहते हैं:—

पांच बरख को अनाथ ध्रु बालक
हर सिमरत अमर अटारे।
पुत्र हेतु नारायन के हो
जमकंकर मार विदारे॥
मेरे ठाकुर केते अगनित उधारे।
मोह दीन अल्प गति निर्गुण
परयो सरन तिहारे॥ इत्यादि।

एक और जगह परमात्मा की स्तुति में गुरुजी लिखते हैं:—

अच्युत पारब्रह्म परमेश्वर अन्तर[illegible]
मधुसूदन दामोदर स्वामी
ऋषी केश गोवर्धन धारी,
मुरली मनोहर हर रंगा॥
मोहन माधव किसन मुरारे,
जगदीस हरजी असुर संघारे
जगजीवन अविनाशी ठाकुर,
घट घट वासी हैं चंगा॥
एक जीह गुन कवन बखाने,
सहस फनी सेस अन्त न जाने।
नवतन नाम जपै दिन राती,
एक गुन नाही प्रभु के संगा॥
ओट गही जगत पितु सरन आइया,
भै भयानक जम दूत दूर रहे मा[illegible]
होइ किरपाल इच्छा कर राखो
साध सन्तन के संग संगा॥

नवें गुरु तेगबहादुर जी भी हिन्दी से पूरा[illegible] रखते थे और प्रायः अपनी काव्य-रचना [illegible] करते थे। उनका बनाया एक 'शब्द' [illegible] करता हूँ:—

हरि का नाम सदा सुखदायी।
जाको सिमर अजामल उधरियो गणिका हू गति [illegible]
पंचाली को राजसभा में राम नाम सुधि [illegible]
ताका दुःख हरयो करुणामय अपनी पैज बढ़ा[illegible]
जिह नर जस किरपानिधि गाइयो ताको भइयो सहा[illegible]
कहो नानक मैं इसी भरोसे गही आन सरनाई।

जिस समय धर्मान्ध और अन्यायी औरङ्गज़े[illegible] के कारागार में वे बन्द थे उस समय का रचा [illegible] निम्न लिखित छन्द हिन्दी की ओर उनके स्वा[illegible]विक प्रेम का अच्छा उदाहरण है:—

बलछुट को बन्धन पड़े, कछु ना होत उपाय।
कह नानक अब ओट हर, गज जिउँ होहु सहाय॥

[illegible] सब तज गए, कोउ ना निभयो साथ।
[illegible]नक इह विपति में, एक टेक रघुनाथ॥

[illegible] गुरु गोविन्दसिंहजी तो उस समय के [illegible] हिन्दी-भक्त और कवि थे और हिन्दी के [illegible] को साथ रखते थे। नीचे मैं उनके कुछ वाक्य [illegible]ता हूं:—

(भगवतीजी के छन्द बादशाही १०)

नमो उग्र दन्ती अनन्ती सवैया।
नमो जोग जोगेश्वरी जोग मैया॥

नमो केहरी वाहनी शत्रुहन्ती।
नमो शारदा ब्रह्म विद्या पढ़न्ती॥

तुही अम्बनी वेद गाइन सावित्री।
तुही धर्म की तरन तारन पवित्री॥

इक तख़्त मुग़लन करूँ मार दूरे।
पुरे तब जगत में फते धर्म तूरे॥

....

यही आस पूरन करो तुम हमारी।
मिटे कष्ट गौअन छुटे दोष भारी॥

तुही शारदा वेद गाइन सरसुती।
तुही देव दुरगे निरंजन प्रशासती॥

[illegible]सी प्रकार धर्मकांड की लड़ाई में अपने पुत्रों [illegible] में जाने का उपदेश करते हुए गुरु जी ने [illegible] कहा है जिसे नीचे उद्धृत करता हूँ।

[illegible] को पूत हो ब्राह्मन के नहिं
कै तप आयत है जो करो।
अर और जँजार जिते गृह के
तुह त्याग कहाँ चित तामें धरो॥
अब रीझि के देहो वहै हमको
जोऊ हों विनती कर जोर करों।
जब आयु की औध निदान बने
अतिही रन में तब जूझि मरों॥

'[illegible]' जो दसवें गुरुजी की विशेष रचना [illegible] भी भाषा संस्कृत शब्दों से भरी हिन्दी ही है। [illegible] गुरुगोविन्दसिंहजी ने दुर्गा माता की स्तुति [illegible] पर इस भांति की है:—

नमस्तं अकाले नमस्तं विशाले।
नमस्तं अरूपे नमस्तं अनूपे॥
नमो चन्द चन्दे नमो भानु भाने।
नमो काल काले नमस्तं दयाले॥
नमो नित्य नारायणे क्रूर करमे।
नमो प्रेत अप्रेत देवे सुधर्मे॥
सदा सच्चिदानन्द सर्वं प्रणाशी।
अनूपे अरूपे समस्तलनिवासी॥

नीचे दिये हुए पद की रचना कैसी मनोहर है:—

प्रभु जू तोकहं लाज हमारी।

नीलकंठ नरहर नारायण नील वसन बनवारी॥
परम पुरुष परमेश्वर स्वामी पावन पवन अहारी।
माधव महा जोत मधुमर्दन मान मुकुन्द मुरारी॥

उपर्युक्त उदाहरणों से यह भली भांति सिद्ध होता है कि सिखों के गुरु हिन्दी के प्रेमी थे और वे हिन्दी के हित-साधन में निरत रहते थे। इन सिख-गुरुओं के अनन्तर इनके शिष्यों और भक्तों ने भी हिन्दी के प्रति प्रेम प्रकट कर अपने पूर्वजों के मार्ग का ही अनुसरण किया था। इसके प्रमाण स्वरूप में सूर्यप्रकाश नामक ग्रन्थ के दो एक छन्द, जो गुरुघराने का एक सर्वमान्य तथा [illegible] इतिहास है, उद्धृत करता हूँ।

गुरु गोविन्दसिंहजी अपने गुरु पुरोहित [illegible] दयारामजी को प्रसन्न करने के लिए एक स्थान पर कहते हैं:—

तुम्हीं हो [illegible]।
[illegible]।
[illegible]।
[illegible]।

उसी पुस्तक में गुरु गोविन्दसिंहजी के [illegible] का एक छन्द इस प्रकार है:—

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

एक २ सिंह लड़े लाखही मलेच्छन से,
तीतरों पै बाज जैसे शेर हैं मृगान में॥
आज्ञा जो श्री अकाल महा काल प्रलय काल,
गाजत गोविन्दसिंह काली की कृपाण ले॥

इसी प्रकार गुरु-भक्त भाई गुलाबसिंह और उनके ऐसे अनेक पुराने सिखों ने प्रबोधचन्द्र नाटक ऐसे अनेक दिव्य ग्रन्थ हिन्दी में ही लिखे तथा प्रकाशित किये थे।

गुरुओं की चलाई हुई प्रथा के अनुसार सिख राज्यों में भी अँगरेज़ी राज्य के आरम्भ के पहले तक सब काम हिन्दी में ही होता था। कई राज्यों में तो अब तक हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि की पुस्तकें राजकीय रत्नों की भांति रक्षित हैं। ऐसी पुस्तकों में से एक "गीता" पटियाला राज्य की ओर से सन् १९०९ की लाहौर की प्रदर्शिनी में दिखाई गई थी।

नये सिखों का भाव।

उपर्युक्त बातों से स्पष्ट है कि पंजाब में प्राचीन काल में हिन्दी का बराबर मान था और सिखों के गुरुओं की लिखने पढ़ने की भाषा भी हिन्दी थी। इससे यह देख कर आश्चर्य्य होता है कि पञ्जाब में आज कल हिन्दी के प्रचार के सब से भयानक विरोधी नये सिख (तत्त खालसा) हैं। मेरे इस कथन की पुष्टि निम्न लिखित बातों से भली भांति होती हैः—

(१) ये सिख जितने स्कूल वा पाठशाला खोलते हैं उन सब में हिन्दुओं का तन, मन, धन सर्वस्व रहने पर भी हिन्दी की शिक्षा का प्रबन्ध नहीं करते।

(२) यदि कोई हिन्दी-प्रेमी मनुष्य वा समाज अपने निज के व्यय से हिन्दी की शिक्षा देने का प्रबन्ध करना चाहता है तो ये सिख उसका प्रतिबन्ध करते हैं। इसका एक उदाहरण यह है कि गत वर्ष जब पञ्जाब हिन्दू सभा ने खरियाँ ज़िला गुजरात के खालसा स्कूल में एक हिन्दी-शिक्षक अपने निज के व्यय से रखना चाहा, तब इन सिखों ने स्वीकार नहीं किया।

(३) पिछले दिनों जब किसी २ समाचा[र] में भूल से यह प्रकाशित हुआ था कि पोस्ट [मास्टर] जनरल कहते हैं कि हमारे यहाँ हिन्दी का कोई [...] नहीं, इसलिए हिन्दी पत्रादि उस विभाग [D. L. O.] में भेज दिये जाया करें जहां वे पत्र डाल दिये [जाते हैं] जिनके स्वामी का पता नहीं लगता, तब इन [सिखों] में बड़ा आनन्द फैला था।

नया हमला।

इनके अतिरिक्त लाला लाजपतराय के आरम्भि[त] शिक्षार्थ हिन्दी पाठशालाओं के खोलने के [...] को सुनकर नये सिख लोग आजकल और भ[ी] हमले कर रहे हैं। इनमें से एक एम० ए० [...] अगस्त १९११ को हिन्दी के विषय में कहा है। '[...] नागरी (हिन्दी) तो अब मुर्दा हो चुकी है, यह स्वयं मुर्दा है वहाँ यह अपने पढ़ने वालों [को] भी मुर्दा बना देती है। हिन्दी पढ़कर लोग स्व[...] और अभिमानी बन जाते हैं। दया धर्म इनमें नाम [को] नहीं रहता। त्याग का भाव तो पहिले ही उड़ जा[ता] है" आगे चल कर लिखा है किः—"हिन्दी जानने वा[ले] हिन्दी के प्रेमी सचमुच दयाहीन होते हैं......... इन हिन्दुओं से मुसलमान ही अच्छे हैं। मुसलमा[नों] के अंदर दया धर्म तो मौजूद है जो कदाचित् उन्हों[ने] कुरान की पवित्र शिक्षा से सीखा है"।

विज्ञ महोदय! क्या इससे भी अधिक कोई नी[च] आक्रमण हिन्दी-भक्त गुरुओं के शिष्यों (सिखों) की ओर से हो सकता है?

गुरुमुखी का गौरव।

वे लोग जो गुरुमुखी भाषा के इतिहास से अन[-] भिज्ञ हैं यह विचार करते होंगे कि यह भारत की कोई बढ़ी चढ़ी भाषा होगी जो हिन्दी का हनन कर, राष्ट्र भाषा के पद को प्राप्त करने की अभिलाषिणी हो रही है।

। यहां पर गुरुमुखी भाषा तथा इसके सम्बन्ध में कुछ कह देना आवश्यक हूँ। गुरुमुखी सिखों की नई लिपि का सका साहित्य सिख गुरुओं के इने गिने २१४ तेरिक पंजाब के नीची जाति के मनुष्यों के नेकले हुए विचारों या गन्दे गीतों से भरा जिस भाषा को इन गुरुमुखी अक्षरों में पंजाबी नाम देते हैं उसका पंजाब के बाहर ा तो दूर रहा उसके भिन्न भिन्न रूप पंजाब महीं जा सकते। मुल्तान ज़िला की भाषा -पुर वा अम्बाला में तथा हिसार, कर्णाल । का रावलपिंडी तथा जेहलम आदि में ना इतना ही कठिन है जितना गोरेशाही । पंजाब के गांवों में।

दुराग्रह का कारण।

प्रश्न यह है कि फिर पढ़े लिखे शिक्षित सिख दुन्दरी हिन्दी की अवहेलना कर इस गुरु- । राष्ट्रभाषा बनाने के लिए इतना आग्रह है हैं।

विषय में मेरा विचार यह है कि ये लोग राष्ट्र-हित अथवा जातीय भावों की प्रेरणा से हीं कर रहे हैं वरन् ये इतना आग्रह उसी क के वशीभूत होकर कर रहे हैं जिसके वे अपने को हिन्दुओं से पृथक् समझ रहे हैं। इसी समय इन्हें अपनी इस भयानक भूल के श्चात्ताप करना पड़ेगा, और अपने सच्चे हित के लिए इन्हें उतना ही पीछे लौटना पड़ेगा । ये अभी भ्रमवश विमार्ग में जारहे हैं।

र का उपदेश वा सिखों को शिक्षा।

दि मेरा यह विचार ठीक न हो और ये सिख वास्तव राष्ट्रीयता के विचारों द्वारा प्रेरित हो गुरुमुखी को राष्ट्र-भाषा बनाने का उद्योग कर । तो इन्हें उचित है कि ये कलकत्ता हाईकोर्ट के न्याय मित्र महोदय के उपदेश से, जो उन्होंने बंगालियों को बँगला भाषा तथा हिन्दी के सम्बन्ध में प्रथम सम्मेलन में दिया था, शिक्षा ग्रहण करें।

मित्र महाशय के महत्त्वपूर्ण लेख का कुछ अंश मैं नीचे उद्धृत करता हूँ:—

"बँगला भाषा को उचित है कि प्यारी बहिन की नाईं हिन्दी की उन्नति में साहाय्य दे और इसकी सर्वदा सहेली और पृष्ठ-पोषक बनी रहे तथा इसके कोमल गले पर छुरा चलाने का यत्न कदापि न करे, यद्यपि वैसा करना इसकी शक्ति से बाहर है।......

अस्तु, बँगला भाषा के सब लोगों में प्रचार करने की आशा करना मानो वामन रूपधारी हो चन्द्रस्पर्श की आशा रखना है"

सिख बन्धुओ! जब बँगला जैसी हृष्ट पुष्ट भाषा का राष्ट्र-भाषा बनने की आशा करना भी चांद को छूने के समान असम्भव है तब गुरुमुखी जैसी लिपि को जिसमें न केवल पूरे अक्षरों ही की कमी है वरन् जिसमें रेफ के ऊपर नीचे करने में भी भेद नहीं है, तथा पंजाबी जैसी भाषा को जिसमें दो चार विभक्तियों को छोड़ अपने शब्द ही गिनती के हैं, राष्ट्रलिपि तथा राष्ट्र-भाषा बनाने का उद्योग कहाँ तक उचित है यह विचारने की बात है।

अतः सिख बन्धुओं को उचित है कि ये हिन्दी के गले पर छुरा चलाने का विचार परित्याग कर उसको माता के समान पूजा करें और उसी (हिन्दी) को राष्ट्रभाषा बनाने के लिए एकमत हो उद्योग करें। आशा है मेरा यह कथन व्यर्थ न जायगा और हमारे सिख भाई इस पर ध्यान देंगे।

हितकारी वर्ष और शुभ आशाएँ।

इस लेख को समाप्त करने के पूर्व मैं पंजाब में हिन्दी के सम्बन्ध में एक बात और कहना चाहता हूँ। वह यह है कि पंजाब में हिन्दी के अनुराग के निमित्त यह वर्ष बड़ा ही हितकारी सिद्ध हुआ है

मेरे इस कथन की सत्यता निम्न लिखित बातों पर विचार करने से स्पष्ट हो जायगी।

१—पंजाब युनिवर्सिटी ने उस पंजाबी को जो इस वर्ष हिन्दी में कोई नया ग्रन्थ लिखेगा १५००) और उस पंजाबी को जो ऐतिहासिक वैज्ञानिक अथवा दार्शनिक विषयों की पुस्तक का किसी अन्य भाषा से हिन्दी में अनुवाद करेगा ५००) पुरस्कार देने की प्रतिज्ञा की है।

२—पंजाब में एक नागरीप्रचारिणी सभा स्थापित हुई है जिसकी शाखा सभाओं के नगर नगर में स्थापित होने की आशा है।

३—लोकमान्य लाला लाजपत राय ने जो 'लीग' स्थापित की है उसने हिन्दी के प्रचारार्थ पूर्ण उद्योग करने का निश्चय कर लिया है और लाहौर में अपना काम भी आरम्भ कर दिया है। इस लीग ने यह भी निश्चय किया है कि यह ३००००) प्रति वर्ष इस काम के लिए व्यय करेगी।

४—अमृतसर की हिन्दू कान्फ़रेंस में एक प्रस्ताव हिन्दी-भाषा के प्रचार के सम्बन्ध में किया गया है।

५—३१ मार्च सन् १९११ को समाप्त होने वाले त्रिमास की रिपोर्ट से, जो प्रकाशित पुस्तकों के सम्बन्ध में सरकार की ओर से निकली है, ज्ञात होता है कि इन तीन महीनों में हिन्दी की न केवल पूर्वापेक्षा ही अधिक छपी हैं वरन प्रान्त की अन्यान्य सभी भाषाओं से अधि[illegible] शित हुई हैं। इन तीन महीनों में कुल ३२० छपी हैं जिनमें २५ अंग्रेज़ी, १०८ उर्दू औ[illegible] हिन्दी की हैं। जहाँ तक मुझे मालूम है [illegible] हिन्दी को यह गौरव पहले कभी प्रा[illegible] हुआ था।

६—लाहौर के डी० ए० वी० हाई [illegible] अपने कई सुयोग्य विद्यार्थियों को केवल [illegible] अलग कर दिया कि वे फ़ारसी लेना चाहते थे पहले पंजाब के किसी भी स्कूल में यह बा[illegible] में नहीं आई थी।

७—आर्यसमाज ने अनेकानेक नये स्कू[illegible] हिन्दी में शिक्षा देने का प्रबन्ध किया है।

उपर्युक्त बातों पर विचार करने से यह प्रती[illegible] है कि पंजाब में हिन्दी के लिए अब शुभ दिन आ[illegible] और शीघ्र ही यह प्रान्त भी हिन्दी-प्रचार के [illegible] से अन्य प्रान्तों के बराबर हो जायगा। मैं भी [illegible] ईश्वर से यही प्रार्थना करता हूँ कि पंजाब [illegible] के प्रचारक गण सर्वव्यापक सच्चिदानन्द प[illegible] पर भरोसा रख इसी भांति मातृभाषा हि[illegible] प्रचार के लिए प्रयत्नवान रहें।

साहित्य ।

सवैया।

मेडर मेघन सों नभ भो ग्रो,
तमालन सों बन भू भई कारी।
भीरु विभावरी तात है तातें,
तुहीं घर जाइ ले राधिका प्यारी॥
यों नँदराइ निदेश के पाइ,
चले चित चाइ सों राधाविहारी।
सो कल केलि कलिन्दी के कूल,
इकन्त जयन्त निकुंज की ज्यारी*॥
(हरिश्चन्द्रचन्द्रिका से)

यद्यपि माधुर्य्य अपनी अपनी रुचि पर निर्भर है, तथापि हिन्दी के शब्दों में संस्कृत से अधिक कोमलता आई है इस बात के कोई भी अस्वीकार न करेगा। संस्कृत के कड़े कड़े शब्द हिन्दी में अपभ्रंश होकर कोमल बन गये हैं। जैसे "वर्ण" शब्द से "बरन" हो गया है। यथाः—

लागे विटप मनोहर नाना।
बरन बरन वर बेलि विताना॥
(तुलसीदास)

काक से काग, भक्ष्य से भख, दुःख से दुख, ग्राहक से गाँहक, इक्षु से ईख, भिक्षा से भीख आदि निःसन्देह पढ़ने में कामल ग्रोर सुवाच्य हैं। निम्न लिखित सोरठे की ग्रोर उदाहरण रूप से ध्यान दीजिए।

सोरठा।

मोहूँ दीजै मोप, ज्यों अनेक अधमनि दियो।
जैा बाँधे ही तोप, तो बाँधो अपने गुननि॥ १॥
(बिहारी)

उपर्युक्त सोरठे में विहारीजी ने 'मोक्ष' के स्थान में 'मोप' ग्रोर 'गुणों' के स्थान में 'गुननि' कर दिया है। एक ग्रोर सोरठा तुलसीदास जी का लीजिए।

सोरठा।

मूक होहिं बाचाल, पंगु चढ़ैं गिरिवर ग[...]
जासु कृपा सु दयाल, द्रवैा सदा कलिमल ह[...]
[तुलसीदा[...]

इसी तरह कोमलता के असंख्य उदाह[...] सकते हैं। अब अर्थ ग्रोर अलङ्कारों की म[...] उदाहरण गोस्वामीजी के ग्रन्थों से लीजिए।

कुजन पाल गुनवरजित अकुल अना[...]
कहहु कृपानिधि राउर कस गुन गा[...]
[बरवै रामाय[...]

अर्थ—हे दयानिधि! कहिए आप के [...]

मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान रामचन्द्रजी के [...] भक्त गोसाईं जी अपने स्वामी की निन्दा क्यों [...]

इस शङ्का के मिटाने के लिये दूसरा अर्थ [...] चाहिये। 'कुजन' से 'गुनवरजित' तक के प[...] मान के इस प्रकार अर्थ करना चाहिये:—

दुष्टों के पालने वालों अर्थात् दुष्ट नृपों के [...] से रहित, (अकुल) जिनसे बड़ा कोई दूसरा कुल [...] नहीं, (अनाथ) जिनका कोई नाथ ही नहीं [...] स्वयं वही सब के नाथ हैं इत्यादि अर्थ उपयुक्त [...]

---

* मेघैर्मेदुर मम्बरं वनभुवः श्यामास्तमालद्रुमैः,
नक्तं भीरुरयं त्वमेव तदिमं राधे गृहं प्रापय।
इत्थं नन्द निदेशतश्चलितयोः प्रत्यध्व कुंजद्रुमम्,
राधामाधवयो जंयन्ति यमुना कूले रहः केलयः॥ १॥
(गीतगोविन्द)

*मूकं करोति वाचालं पङ्गुं लङ्घयते गिरिम्
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्दमाधवम्॥ १॥

† मेरे विचार मे तो "कुजन पाल गुनवरजित" के[...] शब्द न बना "कुजनपाल" ग्रोर "गुन बरजित" के[...] अलग रखने में ही स्वाभाविक अर्थ निकलता है—"कुजनपा[...] से रामचन्द्र जी के सबन्ध में (कु) पृथ्वी के जनो के पालन क[...] वाले का अर्थ होगा अथवा यह भी अर्थ हो सकता है कि [...] (रामचन्द्रजी) हम ऐसे दुष्टो के भी पालन करने वाले हैं[...] "गुनवरजित" से अर्थ गुणो से परे [निर्गुण] स्पष्ट ही है[...] "अकुल" से रामचन्द्रजी के ईश्वर मान कर स्पष्ट अर्थ "[...] कुल का" निकलता है। "अनाथ" से अर्थ है जिनका कोई ना[...] नहीं अर्थात् "जो स्वय सब का नाथ है"।

सम्पादक।

अलङ्कार के कुछ उदाहरण नीचे देता

चिक्कन श्याम रुचि सुचि सुगन्ध सुकुमार ।
न पथ अपथ लखि बिथुरे सुधरे बार ॥
ँ उगत तेँ सटकारे सुकुमार ।
त बंनी बंधे नील छबीले बार ॥

[बिहारी]

। उर उर बाहु बिसाल,
बिलोचन ब्याल तिरछी सी भौंहैं ।
सरासन बान धरे,
तुलसी बन मारग मैं सुठि सोहैं ।
र बारहिं बार सुभाय,
चितै तुम तेँ हमरो मन मोहे ।
त ग्राम बधू सिय सों,
कहो साँवरो सो सखि रावरो को हैं ॥
य के बंस सपूत बड़े,
दसरत्थ के नन्दन औध बसैया ।
बल धीर महारनधीर,
लिये धनु तीर तुरङ्ग चढ़ैया ।
रि न जाइ लिखा विधि को,
रिपु आयसु से बन जात हैं मैया ।
र जो गात लला मम देवर,
श्यामल हैं उनके जेठ भैया ॥

(ईश्वर के दशावतार से)

र्युक्त पद्य प्रसादगुणयुक्त और इतने सरल
व्याख्या की आवश्यकता नहीं । और उदाहरण
ए:—

पुञ्ज गुञ्जित अली, पुञ्ज मंजु की सोय ।
कमल श्यामल न जहँ, श्याम काम छवि होय ॥
स पद्य में कोई गोपी अपनी सखी से पूछती है
या वह लताओं का कुंज जिसमें भौरों के झुण्ड
र रहे हों, चमकते हुए कमल की शोभाधारी,
अविहारी, वृन्दावन-विपिन-विहारी श्रीकृष्ण
के बिना सुन्दर हो सकता है ! अभिप्राय
के बिना भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के कैसा ही
र कुंज क्यों न हो सुन्दर नहीं हो सकता ।

संगति सखान की बखान की न भान की,
उठान की उमर केलि कौतुक निधान की ।
पट्टे फहरान की दुपट्टे जाफ़रान की,
गहनि धनु बान की कहनि बन्धु कान की ।
लाली मुख पान की नरेश के ललान की,
प्रभा में उपमान की अवध कुरबान की ।
कुण्डल जे कान की कमान भौंह तान की,
मिठान मुसकान की अजब एक सान की ॥

उपर्युक्त छन्द में दशरथ-दुलारे भक्तों के प्यारे चारों भाइयों का वर्णन है । यह कवित्त अक्षरों की समता और प्रसाद गुण का अच्छा उदाहरण है । और भी उदाहरण देखिए:—

नीर तीर तरुनी बदन , बीच कमल सुविकास ।
उभय मध्य मोहित मधुप , चाल धाय दुहुँ पास ॥१॥
इक कलिका के निकट में , गूंजत भँवर विशेष ।
चटकि हटायो पद्मिनी , जन कोउ मनो नरेश ॥२॥
उछलत जल में मत्स्य बहु , देखि लुभाने लोग ।
मृगनैनी के नयन को , कर मनु लीला भोग ॥३॥
ग्रामलता लटकति रहै , नहवत पवन लगाय ।
मोहन पथिक बिलोकि तहँ , जो तेहि मारग जाय ॥४॥

ये चारो दोहे "ईश्वर के दशावतार" [illegible] हैं ।
इनमें शरद ऋतु का वर्णन है ।

किसी मनोहर [illegible] के तीर एक सुन्दरी स्नानार्थ बैठी मुसका रही है । [illegible] खिले हुए हैं । [illegible] सुन्दरी के मुख की ओर बार [illegible] ओर दौड़ रहा है । [illegible] काव्य के सब गुणों को धारण [illegible] है । [illegible] ।*

किसी कमल की [illegible] विशेष कर के गूंज रहा है । [illegible]

* [illegible]

फूट गई, जिससे भंवर हट गया मानों किसी पद्मिनी नायिका ने किसी कारण से क्रुद्ध होकर अपने नायक का तिरस्कार किया है। इस दोहे में समासोक्ति अलङ्कार के आजाने से यह बहुत ही उत्तम हो गया है। यह दोहा भारवि की छाया पर है ॥ २ ॥

शरद ऋतु में जल की निर्मलता के कारण जल के भीतर मछलियों की क्रीड़ा साफ़ दृष्टिगोचर होती है। इस के दूसरे पद में किसी मृगनैनी नायिका के कटाक्ष की उत्प्रेक्षा है। यह दोहा भी भारवि की छाया पर है ॥ ३ ॥

वर्षा का अन्त है। शरद ऋतु का आरम्भ है। रास्ते साफ़ सुथरे हैं। ऐसे समय में वियोगी पथिक जब घर को लौटते समय वृक्षों पर लताओं को लपटी हुई देखते हैं तब उन्हें अपने अपने घर स्मरण हो आते हैं। इसलिए वे लोग इसको देख कर मोहित होरहे हैं। ॥ ४ ॥

एक और छन्द की ओर देखिए:—

सासु ननन्द के गेह गई तहं देखन को निज नाति बधाई।
बानिज लागि विदेश गए सनदेसहु पीको न देन सुनाई।
वारी अकेली रहौं घरहीं तुव रात सुवास न हो इहिं ठाई।
साँझ अबै कछु देर न पांथ ! तु वास करौ अनतै
कहुं जाई ॥ *

इस प्रकार की वचन-रचना से यह चतुर सुन्दरी पथिक को इस बात की सूचना देती है कि आप निर्भय रात भर यहां आनन्द लूट सकते हैं।

भाषा में विष्णुपद और भजनों की बड़ी भरमार है, ये निःसार संसार को भी अमृतसार कर देते हैं। उदाहरण की भाँति एक पद नीचे दिया जाता है:—

सुमिरौं नट नागर वर गोपाल लाल।
सब दुख मिट जैहैं चिन्तत लोचन [illegible] ॥

. . . .

* वाणिज्येन गतः सभे गृहपतिर्वार्तापि न श्रूयते।
प्रातः तज्जननी प्रसूत तनया जामातृगेहं गता—आदि
(कालिदास)

निन्दित रवि कुण्डल छवि गंड मुकुट झल
पिच्छ गुच्छ कृतवतंस इन्दु बिन्दु विमल
रतन रसन पीन बसन चारु हार वर सिं
तुलसी रचित कुसुम खचित पीन उर नवी
रसिक भूप रूप राशि गुन निधान जान रा
गदाधर प्रभु युवति जन मुनि मन मानस

"ईश्वर के दशावतार" नामक ग्रन्थ की सुन्दरता का एक उदाहरण नीचे देते हैं

"अब सब गुणधाम शोभाभिराम राम के लिए अहित जन रहित विकट दण्डक निकट आ पहुंचे। दूर से देखने में यह वन घटा की भी अपूर्व छटा को हटा देता था। व मानों नया घन था। अति विशाल वृक्ष जाल हरा हरा यह वन देखने हारों के मन हर लेता तमाल ताल हिन्ताल रसाल पियाल के जा घिरा लताओं से भरा दूर से सुन्दर और निक विकट था।"

अब आगे दूसरी भाषाओं से हिन्दी के स पर भी दो चार बातें लिखते हैं।

यह बात सभी लोग जानते हैं कि मराठी, राती, बंगाली, उड़िया आदि अपनी सब बहने हिन्दी जेठी है और इन सबों का इससे घ सम्बन्ध है। पुरानी बंगाली की कविता हिन्दी में है। प्रमाण के लिए विद्यापति की कविता देखि

हिन्दी गुजराती आदि सब भाषाओं के ब शब्द संस्कृत के अपभ्रंश हैं। इस कारण से सबों का मेल स्वाभाविक ही है। अँग्रेज़ी अरबी फ़ारसी के भी अनेक शब्द व्यवहार में प्रति आते हैं जैसे जज, मजिस्ट्रेट, रेल, टेलिग्राफ हास्पिटल आदि। इनको छोड़ हिन्दी में उ फ़्रेंच और जर्मन के भी दो चार शब्द आते हैं, जैसे आलमारी, फ़ीता आदि। इसी प्रकार अनेक उदाहरण इस बात के मिल सकते हैं कि अन्य भाषाओं के बहुत से शब्द इस समय हिन्दी के भाण्डार को शोभित कर रहे हैं। ऐसी अवस्था में यह कैसे क सकते हैं कि हिन्दी का अन्यान्य भाषाओं से सम्बन्ध

है। जो २ जातियां यहां राज कर चुकी हैं चुकी हैं उन सबों के शब्द हिन्दी में रह हैं।

सूरदास, तुलसीदास, कबीरदास, केशवदास, विहारी तथा गंग, पद्माकर, रघुनाथ, शम्भू, घन आनन्द, मतिराम, ठाकुर, बोधा, हनुमान, हरिश्चन्द्र आदि हिन्दी के बड़े कवियों के उदाहरण भी दिये जायँ तो वर्णन बहुत हो जायगा।

साहित्य की महिमा अगाध है और कविता एक मुख्य अंग है। किसी कवि ने कहा है:— विद्या न च राजलक्ष्मी तथा यथेयं कविता नाम्।" और भी कहा है:—

> संसारविषवृक्षस्य द्वे फले अमृतोपमे।
> काव्यामृतरसास्वादः सङ्गतिः सज्जनैः सह॥

अर्थात् संसाररूपी विष वृक्ष के दो फल अमृत मान हैं, काव्य रूपी अमृत का स्वाद और अच्छे का सङ्ग।

संस्कृत वालों ने तो काव्य से अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष ये चारों पदार्थ पाये हैं और इसे इनके पाने का द्वार बताया है।

साहित्य पढ़ने से मुख्य दो बातें तो अवश्य प्राप्त होती हैं अर्थात् (१) मन की शक्तियों का विकाश और (२) ज्ञान पाने की लालसा।

साहित्य कई भागों में बँटा है जिनमें उपन्यास, इतिहास, नीति, विज्ञान और कल्पित गद्य और पद्य मुख्य हैं।

इनको पढ़ने के समय कार्य कारण के विचार से यदि पाठक पाठजनित उपदेशों को निश्चित कर सकें तो बड़ा लाभ होता है।

साहित्य में ग्रंथ पाठ, अर्थ-व्याख्या, अभिप्राय, विषय का ज्ञान, व्याकरण और रचना-शक्ति का पढ़ना बहुत आवश्यक और लाभदायक है।

अब मैं एक दोहा लिख कर इस निबन्ध को समाप्त करता हूँ।

> सघन कुञ्ज छाया सुखद सीतल मन्द समीर।
> मन ह्वै जात अजौं वहै वा जमुना के तीर॥

खड़ी बोली की कविता।

—:o:—

[लेखक—पण्डित बदरीनाथ भट्ट आगरा]

—:o:—

कोई डेढ़ दो साल हुए होंगे कि श्रीवेङ्कटेश्वर समाचार में एक सज्जन ने एक लेख छपाया था जिसमें ब्रजभाषा के पक्षपातियों का प्रोत्साहन करते हुए खड़ी बोली वालों को ख़ासी फटकार बतलाई गई थी—जोश के मारे लेखक ने कहीं कहीं अशिष्ट शब्दों का भी व्यवहार कर दिया था। ब्रजभाषा के इस क़दर जोशीले पक्षपातियों की संख्या कुछ न्यून नहीं है और असल में ब्रजभाषा का आदर करने वाले और उसकी उच्चभाव भरी मन मुग्धकारिणी कविता का मान करने वाले सभी प्रान्तों और सब जातियों के हिन्दी-भाषाभाषी हैं इसमें संदेह नहीं। क्योंकि हिन्दीसाहित्य की नींव ही ब्रजभाषा है। यदि ब्रजभाषा के काव्य-ग्रंथ उसमें से निकाल लिए जायँ तो वस्तुतः हिन्दी भाषा हिन्दी भाषा न रहे। कम से कम काव्य का तो उसमें बहुत कुछ अभाव हो ही जाय।

अब प्रश्न यह है कि खड़ी बोली वालों से जो कुछ पुराने लोग नाराज़ हैं इसका कारण क्या है। एक कारण तो यह भी हो सकता है कि इन लोगों में ब्रजभाषा के प्रति श्रद्धा इतनी अधिक है कि ये सृष्टि के अन्त तक उसका ही साम्राज्य चाहते हैं। परन्तु खड़ी बोली वालों में भी उसके प्रति श्रद्धा तो उतनी ही है पर अन्तर यह है कि वे एक असंभव बात को संभव नहीं मानते—दुनिया की सब भाषाओं में समय समय पर रद्दोबदल होते आये हैं। इस लिये हिन्दी में भी यदि कुछ परिवर्त[illegible] स्वाभाविक ही समझना चाहिये क्योंकि भ[illegible] भाव का परिवर्तन समाज की अवस्था और [illegible] विचार से अधिक सम्बन्ध रखता है। अब [illegible] के दिन बीत गये। इस लिये संस्कृत की भांति [illegible] मान तो अवश्य करना चाहिये पर उसे [illegible] बनाने की ओर नायिका-भेद और अलंका[illegible] बढ़ाने की चिन्ता छोड़ देनी चाहिये।

दूसरा कारण हमारी समझ में यह [illegible] कि ब्रजभाषा के पक्षपाती समझते हैं कि खड़ी [illegible] के प्रचार से ब्रजभाषा का महत्त्व कम हो जा[illegible] इसके विषय में यह समझ लेना चाहिये कि [illegible] भाषा से पहिले जो भाषा यहाँ बोली जात[illegible] (पृथ्वीराजरायसा देखिये) वह आज कल [illegible] प्राय सी हो गई है। इसका कारण यही कह [illegible] सकता है कि ब्रजभाषा ने उसकी जगह छीन [illegible] पर उस भाषा में लिखे हुए काव्य समझ में आने पर भी महत्त्व में किसी से कम नहीं [illegible] जा सकते। अँगरेज़ी में चासर [Chaucer] [illegible] कविता का महत्त्व कुछ कम नहीं समझा जा[illegible] गद्य या पद्य उस बोली में लिखा जाना चाहिये [illegible] कि सब लोग समझते हों। जब ब्रजभाषा को [illegible] लोग समझते थे तब उसमें कविता होती थी—[illegible] अधिकतर लोग ब्रजभाषा अच्छी तरह से न [illegible] समझते (इसी कारण ब्रजभाषा के ग्रंथों पर टी[illegible] की जाती है)। इस लिये अपना उत्साह उस[illegible] ख़राब न कर खड़ी बोली में लगाना चाहिये। अ[illegible]

.ख़ुसरो के बाद 'ग्रंथदयात' में दक्षिण के किसी "सादी" नामक कविता का निम्नलिखित उदाहरण मिलता है:—

हम तुमहन को दिल दिया,
तुम दिल लिया और दुख दिया।
हम यह किया तुम वह किया,
ऐसी भली यह प्रीत है।'

इसके बाद और भी कितने ही कवियों के खड़ी बोली के उदाहरण मिलते हैं। 'मीर' की भी बहुत सी कविता खड़ी बोली में है। उपर्युक्त .ख़ुसरो के उदाहरणों में जो भाषा है वही असल खड़ी बोली है जिसकी नींव पहिले पहिल पड़ी थी। इसी के दो रूपान्तर 'हिन्दी' और उर्दू हुए। 'वली' का एक शेर यह है:—

'दिल वली का ले लिया दिल्ली ने छीन
जा कहो कोई मुहम्मद शाह सों'

शाह मुबारक का एक शेर यह है:—

'मत कहर सेती हाथ में ले दिल हमारे कों।
जलता है क्यों पकड़ता है ज़ालिम अंगारे कों॥'

ब्रजभाषा का साम्राज्य होने के कारण उपर्युक्त शेरों पर उसका प्रभाव प्रत्यक्ष है। पर फिर भी .ख़ुसरो की और इनकी कविता का मिलान करने पर यह सहज में मालूम हो जाता है कि उर्दू इस समय किस तरह अपना रंग बदल रही थी।

.ख़ुसरो के बाद खड़ी बोली के कौन कौन कहलाये जाने लायक़ कवि हुए यह ठीक ठीक नहीं मालूम, परन्तु कबीर से सभी लोग परिचित हैं। इन्होंने ने बहुत से स्फुट भजन, दोहे इत्यादि खड़ी बोली में कहे हैं जिन में से बहुत कुछ छप गये हैं और बाक़ी बहुत से गवइयों को याद हैं पर छपे कहीं नहीं।* उदाहरण बहुत मिल सकते हैं, एकाध हम भी देते हैं।

(१) मेरे साईं ने मँगाया॥
ईंधन के हित लकड़ी लइयो,
बन उपवन के पास न ज[illegible]
सूखी गीली मती लनइयों,
लइयो गट्ठा भर कें॥ साईं[illegible]
भोजन के हित आटा लइयो इत्या[illegible]

(२) कबिरा तेरी झोंपड़ी गलकट्टों के [illegible]
अपनी करनी आयँगे तू क्यों रहे उ[illegible]

इनके बाद नानक हुए। इनकी कवि[illegible] खड़ी बोली को जगह दी गई है—एक [illegible] देते हैं:—

सांस मास सब जीव तुम्हारा, तू है बहु[illegible]
नानक शायर यूं कहत है सचे परवर[illegible]

ज़फ़र की भी पहेली प्रसिद्ध है:—

'सुन री सखी तू मोरी पहेली।
बाबुल घर थी मैं ही अकेली॥
माई बाप ने लाड़ से पाला।
और समझाघर का उजियाला॥' इत्यादि[illegible]

इनके अलावा और भी प्राचीन कवियों के [illegible] हरणों में यह बात ध्यान देने योग्य है कि [illegible] कविता अधिकतर ब्रजभाषा के प्रभाव से [illegible] होती थी—पर विशुद्ध खड़ी बोली के भी [illegible] उदाहरण मिलते हैं—और इस मिश्रित कवि[illegible] तो आजकल बीसवीं सदी के कवियों का भी [illegible] नहीं छोड़ा है। यही सोच कर प्राचीन कवियों[illegible] और भी अधिक मान करने को तबियत चाहत[illegible] क्योंकि प्राचीन कवियों के समय में खड़ी बोली [illegible] ब्रज भाषा के लिये न तो इतना आंदोलन ही [illegible] था और न उस समय के हिन्दी भाषियों को अप[illegible] मातृ-भाषा को राष्ट्र-भाषा बनाने की ही चिन्ता थी[illegible] अतएव प्राचीन कवियों को यदि विशुद्ध खड़ी बोल[illegible] ही में कविता करने का ध्यान भी न आया हो [illegible] आश्चर्य्य ही क्या है? तब की और अब की दशा [illegible] बहुत अंतर है। जब आज कल के भी बहुत से कवि [illegible] जानकर अथवा बिना जाने ही मिश्रित कविता रच[illegible]

* प्रयाग के बेलविडियर प्रेस ने "सन्तबानीमाला" के नाम से भारतवर्ष के प्रसिद्ध सन्त और साधुओं के ग्रन्थ छाप हिन्दी का बड़ा उपकार किया है। कबीरदासजी के भी कई ग्रन्थ उसी माला में छपे है। इन से उनकी भाषा का परिचय भली भांति मिल सकता है।
सम्पादक।

कविता २ पत्रों में छपा कर नाम हासिल कर ...हैं तो फिर प्राचीन कवियों को किस कारण ...किया जा सकता है ?

...आनंदघन ने संवत् १५०० के लगभग अपनी ...' खड़ी बोली ही में लिखी है—उसका ...इस प्रकार है :—

'सलोने श्याम प्यारे क्यों न आवो।
दरस प्यासी मरें तिन को जिवावो॥
कहाँ हो जू कहाँ हो जू कहाँ हो।
लगे ये प्रान तुम सों हैं जहाँ हो'॥

...दयालजी (सोलहवीं शताब्दी) की कविता ...खड़ी बोली के अनेक उदाहरण मिलते हैं :—

'पूरन ब्रह्म विचारिये, सकल आत्मा एक।
काया के गुन देखिये, नाना बरन अनेक'॥
'बुद्धि विवेक विचार बिन, मानुष पशु समान।
समुझाये समुझै नहीं, दादु परम अज्ञान'॥

...दन (१८ वीं सदी) ने अपने 'सुजान चरित्र' में ...खड़ी बोली की कविता लिखी है। उदाहरण ...—

...रूप सिंह तेरा चचा और सआदत खान।
...है सल्तक दर पुश्त से दूना किया सुजान॥
...महल सराइ सैखाने बूआ बूबू करी,
...मुझे अब सोच बड़ा बड़ी बीबी जानी का।
...आलम में मालुम चकत्ता का घराना यारों,
...जिसका हवाल है तनैया जैसा तानी का।
...बने खाने बीच सें अमाने लोग जानें लगे,
...आफत ही जानो हुआ बोज दहकानी का।
...ब की रजा है हमें सहना बजा है यह
...हेन्दू का गजा है आया और तुरकानी का॥

...लल्लू लाल जी ने प्रेमसागर में लिखा है:—

...। खैंचे तरवार, करै साधु ताकी मनुहार।
...पुढ़ सोई पछताय, जैसे पानी आग बुझाय॥

...म होता है कि खड़ी बोली का प्रभाव १८वीं ...में दूर २ तक पड़ चुका था क्योंकि गुजराती कवि दयाराम की भी बहुत सी कविता खड़ी बोली में मिलती है—एक उदाहरण देते हैं :—

'गफलत टोटा बड़ा दिवाना क्यों ग़फलत में पड़ा॥
कर्म फूट में जन्म गंवाया।
चाम दाम से चित न अघाया।
सच्चा वेली कृष्ण न गाया।
अचक झपाटा आय लगेगा काल सीस पर खड़ा॥
दिवाना क्यों '१०'

इतने उदाहरण केवल यही दिखाने को दिये हैं कि किस प्रकार धीरे २ खड़ी बोली का रूप उन्नीसवीं शताब्दी तक बदला या नहीं बदला। आज कल की बहुत सी खड़ी बोली की कविता का इन उदाहरणों से मिलान किया जा सकता है—पर हाँ, संस्कृत-मय खड़ी बोली (हिन्दी) की कविता की भी अब कमी नहीं दीख पड़ती। यह बहुत शुभ लक्षण है। पर इन बातों से यह न समझना चाहिये कि खड़ी बोली की कविता की कहने लायक़ उन्नति कभी भी हुई थी या अब तक भी हो सकी है, पर हाँ यदि लोग इसे अपनाते रहे तो कुछ वर्षों में हो जाने में कुछ संदेह भी नहीं।

'हड़ बहेड़ा आंवला घी शक्कर में खाय।
हाथी दावे कांख में साठ कोस ले जाय'॥
'पिद्दी पाले पिलपिला और लाल पाले साहूकार,
कबूतर पाले चोट्टा जो तर्के बिराना माल'॥

इस ढंग की कविताओं या तुकबन्दियों की हिन्दी में कमी नहीं है और शायद ये दिन पर दिन बढ़ती ही जाती हैं, पर यथार्थ में इनसे कितनी उन्नति हो सकेगी इसके बतलाने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। मुसल्मानों का राज्य रहने के कारण उर्दू को जो प्रशस्त रूप प्राप्त हो गया वह हिन्दी को शीघ्र प्राप्त तभी हो सकता है जब इसकी सच्चे हृदय से सेवा की जाय और बड़े २ आदमी इसे अपनावें।

गत वर्ष के सम्मेलन के लिये प्रेषित निबन्ध में पं० श्रीधर पाठक जी ने आगरा इत्यादिक नगरों में

होने वाले 'भगत' नामक तमाशे का ज़िक्र किया है। इस में संदेह नहीं कि 'भगत' के कारण इन दायरों में क्या दूर २ खड़ी बोली की कविता लोक-प्रिय हो सकी है। भगत की कविता कहीं कहीं बहुत अच्छी पाई जाती है। इसी तरह आगरे में ख़्याल बाज़ी भी होती थी जो कि अब दिन पर दिन कम होती जाती है। मशायरे की तरह बहुत से लोग ख़्याल बना २ कर उसी वक़्त कहते हैं और कोई २ पहिले बनाये हुए भी गाते हैं। इन में नामी ख़्यालबाज़ कभी २ एक दूसरे पर कटाक्ष भी करते हैं जिनका उत्तर उनका प्रतिद्वंदी उन्हें वहीं और ख़्याल में ही दे देता है। इसी तरह इधर की तरफ़ 'खंड' भी होते हैं। ये इतने जोशीले होते हैं कि इनके गाने वालों में कभी २ लड़ाई और मारपीट तक की नौबत आ जाती है। इन की कविता भी अधिकतर विशुद्ध खड़ी बोली होती है। उच्च भावों से भरी अत्यन्त मनोरंजक तथा वीर-रस प्रधान कथाएं इन में पाई जाती हैं, जैसे—'अमरसिंह राठौड़', 'दयाराम गूजर' इत्यादि, पर शोक है कि कोई नागरी प्रचारिणी सभा इधर ध्यान नहीं देती। इसलिये इस विषय के बहुत से ग्रंथ अप्रकाशित ही पड़े हैं। इन ग्रंथों का मिलना कठिन नहीं है। इनके प्रकाशित हो जाने से हिन्दी संसार का बड़ा लाभ होगा। 'खंड' अभी तक लिखे भी नहीं गये हैं बल्कि लोगों को यों ही याद हैं। इनके लिखने वालों की महनत वसूल हो जाने में कोई संदेह नहीं। आजकल की कितनी ही कविताओं से इन अर्द्ध शिक्षित क्या क़रीब २ अशिक्षित लोगों की कविता में अच्छे भाव तथा अच्छी भाषा पाई जाती है। ये कब से बनते आते हैं सो किसी को नहीं मालूम। लिखित पुस्तकें तो बहुत सी नष्ट हो गईं और बहुत सी होती जाती हैं, यदि इनका उद्धार न किया गया तो हिन्दी-संसार पछतायेगा। सर्व साधारण को इन की भगत पसंद है और उन के चित्त पर इन का कितना पड़ता है इसका अनुमान वही कर सकता है या तो भगत देखी हो या पुस्तकें पढ़ी हों पास लल्लू जी लाल के वंशज मन्नूलालजी भगत के लिये रचे गये 'सीताराम चरित्र' खड़ी बोली के एक अप्रकाशित नाटक के कु हैं। इन में से एकाध उदाहरण देते हैं:—

(१) जनक की सभा में रामचन्द्र लक्ष्म आना इस प्रकार वर्णित है:—

'उसी वक़्त दरम्यान सभा के
राज कुंवर दोनों आये।
ज्यों तारों के बीच चन्द दो
ज्योति, छटा, छवि से छाये'॥

(२) बाणासुर का वचन रावण प्रति:—

बाणासुर सुन कर कहै, सुन रावण दस
यार सभा से उठ चलो, (नहिं) होय तुमारी
होय तुमारी खीस सुनो
दससीस बीस भुज भारी।
शिव पिनाक नहिं उठै, कटैगी
आख़िर नाक तुम्हारी॥
चुपके ही उठ चलो सभा से
मानों बात हमारी।
लाज शरम रह जाय इसी में
मत बजवावो तारी॥'

(३) जयमाल डालने का वर्णन:—

विजय माल लेकर चली, सिया सखिन के सं
रग भूमि में उस समय, बरस रहा रस रं

बस रहा रस रंग सियाने
कर सरोज लेकर वर माल।
रघोजी के उर पहिराई
प्रेम फंद का पड़ गया जाल॥
सखियाँ कहैं राम पद परसे,
हरषे सुधि कर गौतम बाल।
प्रीति अलौकिक देख सिया की
मन में विहंसे राम दयाल॥

(।) परशुरामजी का वर्णन (सखियाँ राम से
ती हैं):—

तपसी इसको कहो, हमसी हमें लखाय।
प सा आता चला, देखो श्री रघुराय॥
राक्षस सा आता है सामने
देखो श्री रघुकुल मणिराय।
तुम तपसी कैसे बतलाओ
हमको हश्शी पड़े लखाय॥
धरा कंध पर फरसा इसके
ब्रह्म राक्षस जाना जाय।
व्याकुल विकल कहैं सब सखियाँ
यह जम आज सबों को खाय॥

तना स्वाभाविक वर्णन है इसका अनुमान
ो मर्मज्ञ पर ही छोड़ते हैं। उपर्युक्त उदा-
में हमने अपनी तरफ़ से ज़रा भी हस्तक्षेप
किया है, मूल का पाठ कहीं ज़रा भी नहीं
है। इससे भी अच्छे अच्छे उदाहरण दिये जा
हैं।

लोग हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाना चाहते हैं,
र इसके बहुत से भक्त कविता करना भी
क समझते हैं पर इन बेचारे स्वांग और
ालों ने (जिनमें कि संगतराश, कुम्हार, कोरी, पंसारी आदि भी हैं) न तो कभी राष्ट्रभाषा किस चिड़िया का नाम है इस पर ही विचार किया और न खड़ी बोली का साहित्य बढ़ाने ही की इच्छा से काव्य-रचना की, किन्तु इस लिये कि एक तो व्रज-भाषा से खड़ी बोली में लिखना उनके लिये आसान था और दूसरे इन लोगों की भाषा जो खड़ी बोली थी वही आगरे भर की थी और वही सब की समझ में आसानी से आ जाती थी। फिर भी इनकी सीधी सादी प्रभाव भरी ऐसी ऐसी कविताओं को देखकर हृदय में एक अद्भुत भाव उत्पन्न होता है। 'शीला' 'उषा' आदिक कितने ही ऐसे नाटक पड़े हैं जिन से आप लोग बिलकुल ही अपरिचित हैं। अतएव निवेदन है कि कोई सभा एक कमेटी संगठित करा कर और उसके द्वारा ऐसे ग्रन्थों को छपा कर हिन्दी के सच्चे उपकार करने की ओर ध्यान दे। हाथरस आगरे के बहुत पास है वहाँ भी ऐसी कितनी ही पुस्तकें मिल सकती हैं। वहाँ के उदाहरण पं० श्रीधर-पाठकजी गतवर्ष दे ही चुके हैं अतएव उनके देने की आवश्यकता नहीं है।

खड़ी बोली का बंद खुल गया है, उसका विकट प्रवाह अब रोका नहीं रुक सकता। अतएव जो सज्जन इस ओर से उदासीन हैं उन्हें उचित है कि इस ओर भी अपनी कृपादृष्टि रक्खें। लेख के आरम्भ में यह दिखलाया ही जा चुका है कि व्रज-भाषा और खड़ी बोली का सूत्रपात क़रीब क़रीब साथ ही हुआ था। मोहम्मद गोरी के बाद थोड़े ही वर्षों के अन्तर से दोनों में काव्य रचना आरम्भ हुई थी। इसलिए इसको नवीन आच्छादन में देखकर नवी का 'कल की' समझना भूल है। इन दोनों भाषाओं (व्रज-भाषा और खड़ी बोली के काव्यों) की और साथ

ही साथ पड़ी थी, जिनमें ब्रजभाषा का मकान तो बन बना कर तैयार हो भी गया पर खड़ी बोली की नींव सी ही पड़ कर रह गयी। अथवा यों कहें कि दोनों बेलें साथ ही बोई गई थीं जिनमें से एक तो फल, फूल और पल्लवों से जितनी लद सकती थी लद चुकी और दूसरी में कलियाँ तो क्या अभी पत्ते भी नहीं आये हैं। अब कुछ लोग उसके भी सींचने का प्रयत्न कर रहे हैं अतएव हिन्दी-भाषाभाषी मात्र का कर्त्तव्य है कि समदृष्टि रखकर अपने पूर्व पुरुषों द्वारा [illegible]पित इस खड़ी-बोली की काव्य-बेलि का यथ[illegible] सिंचन करें और फल-पुष्पादि-युक्त समृद्धिश[illegible] बनाने का प्रयत्न करें, अथवा यदि स्वयं न कर तो करने वालों को सहायता ही दें और यदि [illegible]यता भी न दें तो कम से कम उन पर कृपादृ[illegible] कर उनके काम में बाधा तो न डालें, उनसे द्वे[illegible] उन पर वाग्बाणों की वर्षा तो न करें।

समालोचना ।

[लेखक—श्रीयुत् गिरिजाकुमार घोष]

विरला ही कोई समाचारपत्र या मासिक पुस्तक होगी जिसमें प्रति चार समालोचनाएँ न निकलती हों। ग्रन्थ तो हैं नहीं, समालोचना अवश्य होनी चाहिए। समालोचनाओं की धूम देख कर जान पड़ता है कि हमारे विद्वान् लोग समालोचना ही को भाषा पुष्ट करने का मसाला समझते हैं। परन्तु इस समय हिन्दी-साहित्य के लिये समालोचना से सचमुच लाभ है या हानि यह भी तनिक सोच कर देखना चाहिए। सोचना चाहिए कि समालोचना ने संसार में कितना उपकार किया है। जो इससे उपकार हुआ तो कहना पड़ेगा कि समालोचना से प्रतिभा का विकाश होता है; वह बुद्धि को स्वच्छ करती है और इसे उचित पथ में ले आती है; बुरे लेखकों को लगाम पहना कर टेढ़ा मेढ़ा चलने से रोकती है और जो लेख सचमुच सुन्दर और साफ़ है उसे साफ़ साफ़ दिखा कर पढ़नेवालों के मन को उसकी ओर खींचकर ले जाती है। परन्तु अब देखिए समालोचना से सचमुच ही ऐसा लाभ होता है या नहीं।

इस बात के लिये प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं कि समालोचना से प्रतिभा का विकाश नहीं होता। प्राचीन समय में जो कवि हो गए हैं उन्हें समालोचकों की सम्मतियों को मान कर चलने की आवश्यकता नहीं थी। वाल्मीकि और व्यास के पहिले अलङ्कार-शास्त्र के होने का प्रमाण नहीं मिलता। कवियों ने अपनी प्रतिभा के प्रभाव से जिन सुन्दर संसारों और मनोहर दृश्यों की रचना की थी, क्या उसके लिये समालोचकों ने कुछ सहायता दी थी? कवियों ने अपनी प्रतिभा ही के जादू से क्षण भर में कादम्बरी के केलिकानन को रचा था, उसकी रचना की सुन्दर मनोहारिणी कला आज तक जगत् को चकित कर रही है। सूर तुलसी आदि श्रेष्ठ कविगण मग्न होकर ईश्वर की गुणावली भजनों में गाया करते थे; समालोचकों की तीव्र दृष्टि उन्हें नहीं डराती थी, न वे आलङ्कारिकों की प्रशंसा के लिये तड़पा करते थे। वे जहाँ जाते, प्रकृति के सौन्दर्य और गाम्भीर्य से मोहित होकर अपनी रागिनियों की ध्वनि से भारत भर को गुंजा देते थे। देववाणी संस्कृत के बोलनेवाले बूढ़े काव्यकारलोग हिमालय सरीखे विशाल पहाड़ों की ऊँचाई में ईश्वर की शक्ति और गम्भीरता को देख कर प्रकृति की विस्तीर्णता को जानते थे; शान्तिमय जलाशयों में पत्र पुष्पों से सजे हुए वन उपवनों की सुन्दर छाया को देख कर सुख पाते और दौड़ते हुए बादलों की सुनहरी छवि में उसी प्रकृति की रमणीयता का अनुभव करते थे। प्रकृति की वीणा की गूंजती हुई ध्वनि को सुन कर उसीके सुर से अपना सुर मिला कर उन लोगों ने ऐसे मग्न हो कर गाया था कि संसार सब दिन के लिये मोहित हो गया है। उनकी कविता को जो सुनते थे वे ही मुग्ध हो जाते थे; ईश्वर की शक्ति ही से उनका स्वर इतना मीठा और रसीला होता था। वे जहां जाते थे वहां

आनन्द उमड़ आता था–सब लोग उनका आदर करते थे। युवा उनकी गीत सुन कर आंसू बरसा देते; बूढ़े थोड़ी देर के लिये अपनी दुर्बलता को भूल कर युवावस्था के उत्साह से सबल हो जाते थे। समालोचना ने उन कवीश्वरों की प्रतिभा को उत्तेजित नहीं किया था।

प्रतिभा समालोचना से उत्तेजित नहीं होती। प्रतिभा समालोचना से मार्जित भी नहीं होती, न उससे सच्ची राह में लाई जाती है। प्रतिभा सब समय आपही अपनामार्ग ढूंढ़लेतीहै। प्रतिभा की चाल के नियमों को दूसरे लोग नहीं बता सकते। कवि के हृदय में सुन्दरता का जो बीज जमा हुआ है, वह समय पाकर आप ही अंकुरित होने लगता है। जिस कल्पना की सहायता से कवि स्वर्ग के ऊपर एक दूसरा स्वर्ग रचता है, समालोचक की सामान्य कल्पना उसका अनुभव नहीं कर सकती। जो दृष्टि स्वर्ग की ओर जाकर इन्द्रधनुष के सुन्दर रङ्गों में रञ्जित होकर लहराते हुए बादलों का मनोहर स्वरूप धर लेती है—जो दृष्टि मनुष्यों की साधारण दृष्टि से छिपे हुए जगमगाते तारागणों से गुथे हुए आकाशमण्डल में विचरा करती है, समालोचक उस दृष्टि को कहाँ, कसे, पा सकता है? कवि की कल्पना के दर्पण में जो नित्य और अविनाशी राज्य की छाया आ कर गिरती है, क्या समालोचक उसे देख सकता है? कवि जिस चित्र को रच देता है, समालोचक दूसरे चित्रों से उसकी केवल तुलना भर कर सकता है। समालोचक वर्त्तमान को ही देखकर भविष्य का अनुभव करने लगता है। परन्तु प्रतिभा उसके अनुभव से बँधी रहना नहीं चाहती। समालोचक अपने अनुभव से जिस भविष्य का निर्णय करता है, प्रतिभा उस मार्ग से जाना भी नहीं चाहती। विलायती समालोचक ने 'इलियड' को देखकर कह दिया कि भविष्यकाल में जितने महाकाव्य होंगे, वे 'इलियड' ही के नियम से रचे जाने से अच्छे होंगे। परन्तु जिस समालोचक ने [illegible] और महाभारत देखे हैं, वह कहेगा कि [illegible] वर्ष में "इलियड" एक साधारण काव्य है [illegible] महाकाव्य रामायण और महाभारत ही [illegible] चाहिएं। होमर व्यास के नियम पर नहीं [illegible] थे। इन दोनों महापुरुषों ने स्वाधीन री[illegible] से, भिन्न भिन्न देशों में, एक दूसरे से [illegible] स्वतन्त्र प्रणालियों की रचनाएँ रची थीं। [illegible] के वर्त्तमान ने होमर के भविष्य को निय[illegible] नहीं किया था, और होमर ने जिस नियम [illegible] पालन किया था, यूनानी वियोगान्त नाटक[illegible] ने उस नियम से अपने दृश्यकाव्यों की र[illegible] नहीं की। उनकी काव्यप्रणाली दूसरे [illegible] नियमों से लिखी गई थी।

विद्या के प्रचार के साथ साथ आज[illegible] ढेरों ग्रन्थ प्रकाशित होने लगे हैं। जिस व[illegible] की उपज अधिक होती है, उसमें से बहुत [illegible] भाग फेंक भी दिया जाता है। ग्रन्थों के लि[illegible] भी ऐसा ही हिसाब है। इस रीति से बुरे [illegible] खकों का तिरस्कार और प्रतिभा का चुन लेन[illegible] अब समालोचना का एक प्रधान कार्य हो गय[illegible] है। एक बहुत बड़े विलायती समालोचक क[illegible] मूलमन्त्र कहता है कि नीरस ग्रन्थों का प्रका[illegible] करना और दुष्कर्म करना, दोनों बराबर हैं। पा[illegible] को दबाने के लिये, बुरे ग्रन्थों को रोकने के लिये, किसीके मन में दुःख भी पहुंचाया जाय तो उस पर ध्यान देने की आवश्यकता नहीं है। ऐसा करने का उद्देश्य देश का उपकार करना ही है।

परन्तु नवीन और कच्चे लेखकों को समालोचना की झाड़ू से बुहार कर अलग कर देने की कोई आवश्यकता नहीं। हमें इस बात की आशङ्का नहीं है कि बुरे लेखक भी कभी प्रतिष्ठा पा जायँगे। आदर न मिलने पर वे आप ही मुँह छिपाते फिरेंगे। जब संसार में सुले[illegible] खकों ही को प्रतिष्ठित होने में बहुत समय लगता है तब बुरे लेखकों की बात ही क्या है! अंगरेज़ी के जाननेवाले सज्जन जानते हैं कि अंगरेज़ी भाषा के महाकवि शेक्सपियर ही की

किसी देर में हुई थी। ऐसे ऐसे महा-
कवियों का सम्मान जब बड़ी कठि-
से होता है, तब भला समालोचना के
आरम्भ से क्या लाभ?

परन्तु समालोचक कहेंगे कि हम पढ़ने-
वालों को प्रसन्न नहीं करते, ग्रन्थकारों का
भला करने के लिये हम क़लम उठाते हैं।
बात भ्रम से भरी हुई है। उनकी समालो-
चनाओं से हित के बदले अहित ही अधिक
हुआ करता है। मनुष्य का जीवन सुख और
दुःख से भरा है। इस जीवन में सवेरा होता है,
निकलता है, सुख रूपी सूर्य का उदय
होता है, और तब मनुष्य का हृदय आनन्द से
प्रफुल्लित होता है। जीवन में रात्रि भी होती है,
उस रात्रि में चांदनी भी रहती है। मनुष्य
चाँदनी में बैठकर कवियों का सारा आ-
नन्द लूटने लगता है। एक एक दिन ऐसा
समय आ पहुंचता है जब उसके जीवन, मन,
कवितारस से भर जाते हैं। भाव का
और कल्पना की लहरें उसके मानसिक
राज्य में खेलती फिरती हैं। ऐसा कौन
होगा जिसने कभी न कभी सन्ध्या
समय किसी वृक्ष के नीचे बैठ कर
काननन में विचरण न किया होगा!
समय पृथ्वी कैसी कल्पना से भरी
जान पड़ती है! उस समय सुनहले रंग से
हुए आकाश में स्वर्गराज्य की छाया
पड़ने लगती है—मन में एक बड़ी
सुख की लहर उमड़ने लगती है। सब
के जीवन में एक न एक समय इस
काल का उदय होता है। नई अवस्था
कल्पना की लहर इस रीति से उमड़ने
है, जब सभी लोग एक बार कवियों
रीति से ईश्वर की प्रकृति और अपने
को देखने लगते हैं, तब, कहिए तो सही,
उनके हृदय के भावों में कविता नहीं
? इन भावों की कलियां एक ही दिन में
नहीं खिलतीं। कितनी चिन्ताएं, कितने भाव,
कितनी कल्पनाएं कभी कभी एक साथ भंड
बांध कर हृदय आकाश को ढक लेती हैं!
हृदय भावों के आवेश से उमड़ने लगता है!
कितने सुनहरे चित्र उसे दूर से लुभाने लगते
हैं! कितनेही चित्र, कितने सुख के स्वप्न हृदय के
भीतर नाचने लगते हैं। क्या उन चित्रों को
ठीक ठीक खींच कर दिखाना सम्भव है? या
उनकी चंचल छाया ठीक ठीक हृदय पर जमती है?
वह छाया कैसी मनोरम होती है, यह सब लोग
नहीं समझ सकते। चित्र खींचते समय उसके रंग
अच्छी भांति नहीं खुलते, भाव गड़बड़ हो
जाते हैं, चित्र विचित्र हो जाता है। नया लेखक
अपनी कल्पनाशक्ति के अनुसार उस चित्र को
खींचने का यत्न करता है और समझता है कि
यही ठीक छाया है। समालोचक इन बातों को
क्या समझने लगा! वह उन छायाओं के योग्य
चित्र की कल्पना नहीं कर सकता। उसके
सामने सब गड़बड़ टूटा फूटा जान पड़ता है।
वह सारे चित्र को दोष से भरा हुआ समझने
लगता है। उसकी गालियां सुनकर नया लेखक
हृदय में गहरी चोट खाकर कल्पना-मार्ग में
फिर पांव बढ़ाने का साहस नहीं करता। यदि
वह इस भांति दुरदुराया न जाता तो सम्भव
है कि उसके तरुण काल के सब भाव धीरे
धीरे फैलने लगते, प्रतिभा का विकाश होने
लगता, और कल्पनाशक्ति की संकुचित कलियां
समय पाकर खिल जातीं। बहुत से लोग
समालोचना के तीखे वाक्यों से ऐसे घबरा
जाते हैं कि आगे फिर लेखनी पकड़ने का उनको
साहस ही नहीं होता।

कवि का हृदय कैसा कोमल होता है, समा-
लोचक यह नहीं समझता। बे-समझे हुए यह
विष में बुझे हुए तीक्ष्ण वाणों की वर्षा करने
लगता है। कितने सुकुमार तरुण कवि उनकी
चोट से बे-मौत के मारे जाते हैं।

यही नहीं। समालोचक बहुधा पक्षपाती

भी हो जाते हैं। समालोचकों में जितने अच्छे गुण होने चाहिए, बहुधा वे उनमें नहीं पाये जाते। समालोचक का काम कैसा कठिन है, इस पर लोग ध्यान नहीं देते। पक्षपात की संकीर्णता में फँस कर या तो वे अनुचित स्तुति ही करने लगते हैं नहीं तो, ऐसी तीव्रता से वाणों की वर्षा करते हैं कि लेखक अभागे का हृदय टूट कर टूक टूक हो जाता है।

हिन्दी साहित्य की अभी तक बहुत कच्ची दशा है। इस समय इसके समालोचकों को बहुत ही सावधानी से काम करना चाहिए। हिन्दी की पुष्पवाटिका मे भांति भांति के पौधे और लताएं लगाई जा रही हैं। बेला, चमेली, जूही, चम्पा आदि की सुगन्ध लेने के लिये उत्सुक होना समालोचकों के लिये स्वाभाविक बात है। परन्तु यही समालोचक यदि कांटों के डर से गुलाब की जड़ पर खुर्पी चलाने को दत्तचित्त हो जाय, पौधे को कंटकाकीर्ण देख कर उसका अनादर करने लगे, तो बताइये, जिस पौधे में आगे चल कर नयन-मन-मोहन पुष्प लगते, उसका अस्तित्व संसार से सम्पूर्ण उठ जायगा या नहीं? और भी देखिए। जो समालोचक सच्चा गुणग्राहक है, जिसकी दृष्टि प्रकृति की सच्ची शोभा अनुभव करने की अभ्यस्त है, वह उचित समय में, उचित स्थान में, कडुए नीम के नन्हें नन्हें फूलों में भी व[illegible] की रमणीयता अनुभव कर सकता [illegible] प्रकृतिवाला समालोचक जंगली पुष्[illegible] दया की दृष्टि ही रक्खेगा, उनके दो[illegible] सोच सोच कर अपना गला फाड़ [illegible] व्यर्थ नहीं चिल्लावेगा। चतुर माली [illegible] कांटे के पेड़ भी शोभावर्द्धक बन जाते [illegible] अपने सहकर्मियों को उन्हीं कांटों प[illegible] फावड़ा कुदाली चलाना ही नहीं सि[illegible] वरन् यदि उन कांटों से कुछ मतलब [illegible] बन सके—उनमें भविष्य काल में प्रतिभा[illegible] काश के लक्षण वह देख पावे-तो वह उ[illegible] उचित आदर करने से मुख न मोड़ेगा। [illegible]लोचक का ध्यान इसी बात पर रहना [illegible] कि सचमुच वाटिका की शोभा की ह[illegible] नहीं होती; घास, फूस, जंगल आदि के [illegible]ण से "होनहार बिरवान" के पात तो [illegible] नहीं पड़ते। उदारता, अपक्षपात, दया, [illegible] धैर्य, आदि जिन जिन सद्गुणों से मनुष्य [illegible] कहलाने के योग्य बनता है, उन्हीं सब [illegible] का समावेश समालोचक में भी होना चा[illegible] नहीं तो वह उस पवित्र पदवी के योग्य [illegible] हो सकता। वह अपने को कोई भले [illegible] लेवे, लोग कभी उसको सम्मान की [illegible] नहीं देखेंगे।

———

नाटक ।

—:o:—

[लेखक—अधिकारी जगन्नाथदास विशारद]

नाटक की उत्पत्ति बहुत ही प्राचीन काल से है इस बात को पुरा तत्त्ववेत्ताओं ने भी स्वीकृत किया है। सब लोग सब में नाटक "हनुमन्नाटक" को मानते हैं। परन्तु क कहा भी जा सकता है यह सन्देहयुक्त । नाटक उसको कहते हैं जिसमें नाट्य हो, " " अवस्था का अनुकरण का नाम नाट्य है। भूषण, अक्षर-संहति, उदाहरण, हेतु, संशय, दृष्टान्त, तुल्यतर्क, आदि ३६ विषयों का समावेश जिसमें उसको नाटक कहते हैं।

तक हमारा अनुभव है हम कह सकते हैं ासादि अन्य ग्रंथों से जो लाभ नहीं नाटक से होता है, परन्तु यह तब हो जब कि नाटक यथार्थ में नाटक ही हो। वस्तु के केवल वर्णन मात्र से उतना नहीं होता जितना कि प्रत्यक्ष दिखाने से होता । नाटक सभी भाषाओं में साहित्य का एक प्रधान है। इसके द्वारा मनुष्य को बहुत कुछ शिक्षा होती है। नाटक रस परिपोषण के साथ साथ चार विमुख को मानवता भी अवकाश न हुए कान्ता की भांति उपदेश देने वाले काव्यो दुपदेश प्रदान के लिये उत्तम साधन है।

त्पादनुचितं किञ्चिन्नायकस्य रसस्य वा।
विरुद्धं तत्परित्याज्यमन्यथा वा प्रकल्पयेत्॥

इस नाटकीय शिक्षा के अनुसार यदि नायक असत्प्रवृत्त भी हो तो उसका वर्णन इस प्रकार से किया जायगा कि उसका चरित्र सदुपदेशप्रद हो जाय। नाटक का दैशिक, नैतिक, धार्मिक आदि उन्नति के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसी से नाटक के द्वारा दैशिक, नैतिक तथा धार्मिक उन्नति में अधिक सहायता मिलती है। मातृ-भाषा का भी जितना प्रचार और उन्नति नाटकों के द्वारा सम्भव है उतना प्रकारान्तर से कठिन है। नाटकों से समाजोन्नति के विषय में जो प्रभाव पड़ता है वह अनेकानेक व्याख्यान देने या काव्य रचने अथवा निबन्ध लिखने से नहीं पड़ता।

नाटक में प्रत्यक्ष जगत् को [illegible] पात्र, कार्य, गुण आदि को परोक्ष रूप बुद्धि में लेकर फिर नवीन आविष्कृति में एक नई दुनिया बना कर निरीक्षकों के समक्ष कथा स्वरूप में रखने का काम है। इसी कारण काव्य के दोनों (श्रव्य और दृश्य) भेदों में से दृश्य काव्यान्तर्गत १० भेदों में से नाटक हो परमोपयोगि एवं शिक्षाप्रद माना जाता है। किसी कवि ने कहा भी है — "काव्येषु नाटकं रम्यम्" अर्थात् काव्यों में नाटक-काव्य रमणीय होता है।

अनुमान द्वारा ज्ञात होता है कि नाटक काव्य की उत्पत्ति बहुत ही दूरदर्शी [illegible] हुई होगी। पूर्वकाल में जब [illegible] था और उसका [illegible]

कभी कभी किसी बुद्धिमान् मंत्री की भी इतनी शक्ति न होती थी कि राजा को ठीक मार्ग पर लाये, तब नाटक की उत्पत्ति की गई। रंगभूमि में किसी दूसरे के चरित्र अभिनय के मिस से राजा तथा महाजनों पर अच्छे विचारों का प्रभाव डाला जाता था और वे इस प्रकार से अपना चरित्र सुधारते थे। इसीलिये नाटक की उत्पत्ति की गई थी। यदि हिन्दू-शास्त्र मानने वाले स्वीकार करें तो यह बात अवश्य है कि 'हनुमन्नाटक' की रचना वाल्मीकि के समय में हुई। यह बात उसकी भूमिका से ही स्पष्ट है कि उसकी रचना वाल्मीकि के समय में हुई थी। वास्तव में यह सर्वोत्कृष्ट नाटक है परन्तु खेद है कि उसका पूर्णभाग नहीं प्राप्त होता।

इसके अनन्तर रामायण या भागवत में कोई विशेष नाटक का पता नहीं लगता। परन्तु "नर्थव नटनर्तकाः" यह वाक्य प्राचीन पुस्तकों में तथा पुराणों में भी पाया जाता है। नट की व्युत्पत्ति व्याकरणानुसार इस प्रकार है:–'नटतीति नटः' अर्थात् जो अभिनय द्वारा किसी दृश्य को दिखाता हो उसे नट कहते हैं। इससे निश्चय होता है कि सभी काल में नाटक तथा नाटक करने वाले नट विद्यमान थे। परन्तु इसके विशेष ग्रंथ नहीं मिलते। महाभारत में तो इस बात का स्पष्ट लेख है कि श्रीकृष्ण के पुत्र साम्ब ने हस्तिनापुर में जाकर ऐसा नाटक खेला कि दर्शक मुग्ध हो गये और मुक्त कंठ से उसकी प्रशंसा करने लगे।

उसके अनन्तर कालिदास प्रभृति महाकवियों ने "अभिज्ञानशाकुन्तलादि" अनेक नाटक बनाये। परन्तु ये सब संस्कृत भाषा में थे।

हिन्दी भाषा में रीवां के स्वर्गीय महाराजा साहब श्रीविश्वनाथसिंहजू देव बहादुर ने भी एक सर्वोत्तम "आनन्द रघुनन्दन" नामक नाटक लिखा था। इसके अनन्तर हिन्दी के सञ्जीवक एवं आचार्य लोकमान्य प्रातःस्मरणीय श्रीयुक्त बाबू श्रीहरिश्चन्द्रजी ने भी 'सत्यहरिश्चन्द्र' नाटक प्रभृति सर्वोत्तम नाटक लिखे। इसके अनन्तर महाराणा प्रतापादि [illegible] हिन्दी-संसार में प्रस्तुत हुए।

इनके अतिरिक्त वर्त्तमान समय में प्रा[illegible] जैसे पंजाब, कर्णाटक, बंगाल, गुजरात आदि में नाटक खेले भी जाते हैं। अन्य की अपेक्षा गुजरात तथा बंगाल की नाट[illegible] लियों ने बहुत कुछ उन्नति की है। तोभी

[illegible]

करते हैं। जन रुचि के अनुसार कोई कोई मय[illegible] भक्ति पक्ष के नाटक भी खेलने लगी हैं।

जहाँ तक हमारा अनुभव है हम कह स[illegible] कि मध्य प्रदेश में कोई भी ऐसी बड़ी कम्पन[illegible] है जैसी गुजरात आदि प्रदेशों में वर्त्तमान [illegible] कदाचित् दो चार के नाम शपथ खाने को [illegible] भी जांय तो वे सब उर्दू भाषा की हैं। हिन्दी [illegible] का उनके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। जैसे [illegible] कांश लेखक वर्त्तमान समय में उपन्यासों की [illegible] उतर पड़े हैं उसी तरह यदि नाटक की ओर भी [illegible] कर्त्ता दृष्टिपात करें तो हिन्दी-साहित्य में नाटक [illegible] स्थान जो खाली है वह भर जाय।

पूर्वकाल में नाटकों का बहुत कुछ प्रचार [illegible] इस में सन्देह नहीं है। अब भी उनके अनेक [illegible] प्रचलित हैं। जैसे बहुरूपी, यह भी नाटक का [illegible] प्रकार है। बहुरूपी लोग कभी साधु बन जाते [illegible] कभी भिखारी कभी बुढ़िया बन जाते हैं। नाटक[illegible] प्राचीन काल में इतना प्रचार प्राप्त किया था [illegible] उसका कुछ कुछ प्रचार अद्यावधि लड़कों में भी देख[illegible] में आता है। बालक आपस में क्रीड़ा करते सम[illegible] अनेक प्रकार के नाटक खेलते हैं। कोई राजा बनता [illegible] है दूसरा उसका सिपाही बनता है तीसरा चोर [illegible] बनता है। राजा बनने वाला न्याय करने बैठता [illegible] है, फिर चोर बनने वाले लड़के को सिपाही बनने [illegible] वाला लड़का हाथ बांध कर राजा के समक्ष उपस्थित [illegible] करता है, फिर वह उसका न्याय करता है, यह भी एक [illegible] प्रकार का अभिनय ही है।

में 'भमंदा' के नाम से नाटक का एक
मी प्रचलित है। मारवाड़ में इस को
'ख्याल' कहते हैं। मध्यप्रदेश में भी 'स्वांग'
में यह खेल प्रायः खेला जाता है परन्तु ये
शास्त्रीय विधि से होने के कारण उपदेशप्रद
होते। हाथरस, मथुरा आदि नगरों में ते इसके
सहस्रों रुपये "भगत" में व्यय हो जाते हैं।
ये सब शृङ्गारमय होने के कारण तथा नाट्य-
विधि प्रतिकूल होने के कारण असदुपदेश-
हो जाते हैं और इनका परिणाम बुरा होने लग
है, अत्याचार की वृद्धि होने लग गई है। इन
इस कारण नाटकों का विधिप्रतिकूल बनाना
। रामलीला एवं रासलीला भी नाटक का एक
ही है। परन्तु ऐसे नाटकों से कुछ लाभ
है प्रत्युत अनाचार-वृद्धि ही है। इसलिये
हिन्दी-प्रेमी का कर्त्तव्य है कि ऐसे नाटका-
को उत्तेजना न देकर नियमित शिक्षा प्राप्त
कर पूर्ण तैयारी के साथ दृश्य दिखाने के लिये
का प्रचार करें। जिससे सुकुमार-मतियों
दाचार की शिक्षा प्राप्त हो, जिसमें खेल का
स न होकर यथार्थ अभिनय हो उसे नाटक
है। इङ्गलैंड के प्रसिद्ध कवि शेक्सपियर
नाटक लिखने से ही सर्वोच्च प्रसिद्धि
है। इनके नाटक यहां तक प्रचलित हैं कि
रा यूरोप की नाटक-मण्डलियों ने उनको
किया है और उनका अभिनय करती हैं।

रन्तु हमें इस बात का बड़ा खेद है कि इतने बड़े
में महाकवि कालिदास, महाराजा विश्वसिंहजू
था श्रीयुक्त बाबू हरिश्चन्द्रजी के बनाये नाटकों
एक भी नाटक कहीं भी नहीं खेला जाता*।

हमारे यहां एक यह भी त्रुटि है कि कोई ग्रंथ-
कर्त्ता कोई ग्रंथ तैयार करे तो कई वर्ष तो उसके
बिकने में ही लग जाते हैं। और मुफ़ भेजने पड़ते
हैं सो जुदे। फिर ग्रन्थकर्ता का उत्साह कैसे बढ़
सकता है? । इसलिये साहित्य तत्ववेत्ताओं की
एक ऐसी समिति होने की अत्यावश्यकता है जो
यदि कोई विद्वान् कोई नाटक की पुस्तक तैयार करे
तो प्रथम तो उसकी परीक्षा करे और पुरस्कार
देने योग्य समझी जाय तो लेखक को पुरस्कार
देकर उस पुस्तक को स्वयं प्रकाशित करे। और
यदि लेखक स्वयं प्रकाशित करना चाहे तो पुस्तक
की कुछ प्रति मोल लेकर उन्हें सहायता दे। तभी
नाटक की उन्नति हो सकेगी।

और एक दो नाटक-मण्डली भी वैसी कि महा-
राष्ट्र आदि प्रदेशों में विद्यमान हैं तैयार होनी
चाहियें। इससे आजीविका का साधन, जन-समुदाय
को शिक्षा और हिन्दी-साहित्य के एक अंग की
पूर्त्ति, ये सब बातें एक साथ ही हो सकती हैं।
गुजरात, महाराष्ट्र, बंगाल आदि प्रदेशों में उन
भाषाओं के जानने वालों की संख्या हिन्दी जानने
वालों की अपेक्षा बहुत छोटी है परन्तु वहां कई
मण्डलियां अच्छी तरह से चल रही हैं और गुजरात
में सूरदास, तुलसीदास, नरसिंह मेहता, मीराबाई,
जगदेव परमार, जगतसिंह इत्यादि, और महाराष्ट्र में
कीचक वध, वायकोच्यावड इत्यादि इत्यादि बहुत
नाटक प्रचलित हैं।

बड़े हर्ष का विषय है कि काशी की सभा ने तथा
प्रयाग की नागरीप्रवर्द्धिनी सभा ने इसके लिये
कुछ प्रबन्ध किया है। सत्य हरिश्चन्द्र प्रभृति नाटकों
का अभिनय भी होने लगा है।

यद्यपि आज हिन्दी-जगत् में नाटकों की कमी
नहीं है सैकड़ों नाटक हैं तथापि ऐसे नाटकों
से कुछ प्रयोजन-सिद्धि नहीं हो सकती
प्रत्युत संसार दुराचार में प्रवृत्त होता है।
इसलिये हिन्दी के नाटक-लेखकों से तथा नाटक
लिखने की इच्छा रखनेवाले पुरुषों से सविनय

---

*इसमें सन्देह नहीं कि हिन्दी-भाषा में नाटक बहुत, कम
इनका अभिनय भी बहुत कम होता है। परन्तु यह
क नहीं है कि ये कहीं भी नहीं खेले जाते। प्रयाग और
में तो प्रति वर्ष हिन्दी के दो एक नाटक खेले जाते हैं।
न कर लेखक ने स्वयं इस बात का उल्लेख किया है।

सम्पादक।

निवेदन है कि वे गर्हणीय एवं जघन्य नाटकों के लिखने में अपने समय का व्यय न कर अच्छे अच्छे शिक्षाप्रद नाटकों को हिन्दी-जगत् में प्रस्तुत करें जिस से नाटक का प्रयोजन सिद्ध हो।

अपने सामाजिक व्यवहार में जो दूषित, जघन्य प्रथाएँ हैं उनका चित्र खींचना और उसमें उत्तमोत्तम आदर्श सामने रखना, विभिन्न अवस्थाओं में मनुष्य के चित्त की उच्चावच स्थिति की समीचीनता से आलोचना कर उसका ज्यों का त्यों निरूपण करना, पुस्तक आदि से अन्त तक अविच्छिन्न अवस्था में रहे ऐसा वस्तु-संकलन करना, सद्वस्तु पर प्रेम और अस का तिरस्कार होवे ऐसा उपदेश करना, भाषा चित्ताकर्षक बनाना, इत्यादि अनेक बातों पर नाट्य लेखकों का ध्यान रहना चाहिये।

अन्त में हम आशा करते हैं और विश्वा करते हैं कि "साहित्य-सम्मेलन" और हिन्दी-हितै साहित्य के इस अंग की पूर्ति के लिये कटिब होंगे और इस विषय में अवश्य कुछ करेंगे।

हिन्दी और ब्रजभाषा।

—:o:—

[लेखक—गोस्वामी गौरचरण]

—:o:—

सब से पहिले यह देखना चाहिये कि "हिन्दी" शब्द का क्या अर्थ है। "हिन्दी" "हिन्दोस्थान" की भाषा या मुख्य बोली का नाम है। यह भाषा भारतवर्ष में थोड़ी या बहुत सब स्थानों में व्याप्त है। जैसा इस भाषा का प्रचार है वैसा भारत वर्ष में किसी दूसरी भाषा का नहीं, इसी से इसको मुख्य भाषा होने का सौभाग्य प्राप्त है। यह बताना अनावश्यक है कि भारत वर्ष में पहिले केवल "संस्कृत" ही प्रचलित था। यद्यपि यह उसके नाम से ही विदित है कि उस से पहिले भी कोई भाषा थी, पर थी वह आर्य्य भाषा ही, अनार्य्य नहीं थी। संस्कृत के साथ साथ तो नहीं उसके कुछ बाद "प्राकृत" की उत्पत्ति हुई। "प्राकृत" को हम निःशङ्क चित्त से 'अपभ्रंश भाषा' कह सकते हैं, संस्कृत के नाटकों में यह अशिक्षित और गंवार लोगों की भाषा है। यह नियम अभी तक प्रचलित है कि संस्कृत के नाटकों में गंवार या अशिक्षितों की बोली "प्राकृत" ही लिखी जाती है। इसी "प्राकृत" से क्रमशः पञ्जाबी आदि भाषाओं की उत्पत्ति हुई। हमारी समझ में "पञ्जाबी" भाषा से ही "ब्रजभाषा" की उत्पत्ति हुई है।

"ब्रजभाषा" भी संस्कृत की कृपा से कविता की ही क्या, साहित्य भर की भाषा हो गई थी। अब भी वह कविता में प्रत्यक्षता से और गद्य में सरलता से काम में आती है। इसी "ब्रजभाषा" से "हिन्दी भाषा" की उत्पत्ति है। हिन्दी भाषा से यहां हमारा मतलब "खड़ी बोली" से है जिसका पहिले "रेख़्ता की बोली"* भी नाम था।

"लल्लूलाल" नाम के एक ब्राह्मण आगरे में रहते थे। आगरा ब्रज की सीमा है। वहां सदा से ब्रजभाषा से उत्पन्न "खड़ी बोली" बोली जाती है। या यह कहना अधिक सङ्गत होगा कि खड़ी बोली का जन्मस्थान "आगरा" ही है। लल्लूलाल जी को वहां से अपनी मातृ-भूमि को छोड़ कर कलकत्ता आना पड़ा। वहां उन्होंने आकर "प्रेमसागर" नाम का ग्रन्थ अपनी जन्म-भूमि की भाषा में बनाया। तब भी उस में बहुत सी जगह ब्रज भाषा की छाया पाई जाती है। लल्लूलाल ने खड़ी बोली की उत्पत्ति की यह हम नहीं कह सकते। क्योंकि यदि यह होता तो वे ऐसे शब्दों की भी खड़ी बोली कर सकते थे, जो "प्रेमसागर" में बिलकुल ब्रज भाषा में पाये जाते हैं। उसमें एक जगह शब्द आया है "दधिकांदो"। "दधिकांदो" † को यदि वे खड़ी बोली-बनाना चाहते तो "दधिकांदा" बना सकते थे, जैसा कि खड़ी बोली के व्याकरण से सिद्ध है। पर उनकी जन्म भूमि आगरे में यह शब्द कभी नहीं बोला जाता होगा। बोला

---

* यह बोली केवल "रेख़्ता" के नाम से प्रसिद्ध थी। ग़ालिब के निम्न लिखित शेरों से भी यही बात सिद्ध होती है:—

रेख़्ता के तुम्हीं उस्ताद नहीं हो 'ग़ालिब'।
कहते हैं अगले ज़माने में कोई 'मीर' भी था।
मैं कौन और रेख़्ता, हां इससे मुद्दआ।
जुज़ इम्बिसात ख़ातिरे हज़रत नहीं मुझे।

सम्पादक।

† [illegible] देखिए।

बो जाता हो तो उन्होंने उसका शुद्ध रूप न सुना होगा। इसी से उन्होंने "[illegible]" ही लिख दिया, जैसा कि ब्रज में बोला जाता है। इस से यह बात सिद्ध है कि लल्लूलाल जी ब्रज भाषा से खड़ी बोली बनानेवाले नहीं थे, यह भाषा बहुत दिनों से प्रचलित थी। हां, यह कहा जा सकता है कि उन्होंने खड़ी बोली में सब से पहिले ग्रन्थ लिखा, पर इस विषय में भी मतभेद है, और हो सकता है।

"ब्रजभाषा" से "हिन्दी" का कितना सम्बन्ध है यह बताना व्यर्थ है। जब उस में माता-पुत्री का सम्बन्ध स्पष्ट विद्यमान है तब इससे बढ़ कर और क्या सम्बन्ध हो सकता है?

माता-पुत्री का सम्बन्ध है या नहीं, इसके लिये न तो मुझे ही किसी अंग्रेज़ की सम्मति लिखनी पड़ेगी, न आप ही यह चाहते होंगे। "प्रत्यक्षे किं प्रमाणम्।" ब्रजभाषा की प्रायः सब क्रियाओं और शब्दों के अन्त में "ओ" की मात्रा रहती है, जैसे, करैगो, जायगो, थोड़ो, छोड़ो, मांगेगो इत्यादि अर्थात् उस में ओकारान्त शब्द अधिकता से हैं। बस, इन्हीं ओकारान्त शब्दों को आकारान्त बना लिया, उसी भाषा का नाम हिन्दी, या खड़ी बोली हो गया। करैगो, का करैगा, जायगो को जायगा, थोड़ो, छोड़ो, छोड़ा, मांगेगो, मांगेगा, आदि इसके हैं। आप कोई खड़ी बोली की कविता पढ़ें बिना कठिनाई "ब्रजभाषा" बन सकती है कहने का केवल यह तात्पर्य है कि ब्रजभाषा से का यह सम्बन्ध है जो संस्कृत का प्राकृत से।

अब प्रश्न यह है कि कविता हिन्दी में ब्रजभाषा में? इसका सहज उत्तर होगा कि भाषा ही में। हां! पन्चसम्बन्धी या लौकिक क खड़ी बोली में हो, तो कुछ हानि नहीं। पर कोई चाहे कि मैं महाभारत या श्रीमद्भागव खड़ी बोली में अनुवाद करूं, तो यह हास्यपद है खड़ी बोली में न तो ब्रजभाषा की बराबर प्रस्ता न उतनी मधुरता। हमारे समझ में ब्रजभा यावतभगवत्सम्बन्धी, और साहित्य की कविताएं इसके विषय में कुछ अधिक कहने का न तो समय ही है, न लेख का यह विषय ही है।

बस, अब मैं आप का अधिक समय लेना उ नहीं समझता। आशा है, यदि इस लेख में अनुचित बातें लिख दी हों, तो आप क्षमा करें

प्रारम्भिक शिक्षा ।

प्रारम्भिक शिक्षा की हिन्दी-पुस्तकें।

[लेखक-पण्डित रामजीलाल शर्मा।]

प्रारम्भिक शिक्षा का महत्व।

प्रारम्भिक शिक्षा का विषय बड़े महत्त्व का है। जिस प्रकार कोई विशाल भवन निर्माण कराते समय उसकी नींव की दृढ़ता पर विशेष ध्यान दिया जाता है और बिना नींव की दृढ़ता के कभी कोई ऊँची इमारत तैयार नहीं करा सकता, ठीक उसी प्रकार, पूर्णपाण्डित्य और विद्वत्ता सम्पादन करने के लिए प्रारम्भिक-शिक्षा की आवश्यकता है। प्रारम्भिक-शिक्षा को विद्वत्ता की नींव समझना चाहिए। जिस प्रकार नींव के कच्ची रह जाने से इमारत के गिरजाने का भय रहता है, भय क्या रहता है वह गिरही जाती है, इसी प्रकार प्रारम्भिक शिक्षा के बिगड़ जाने पर उच्च-शिक्षा भी सर्वाङ्ग सुन्दर नहीं होती। इसी लिए मेरी तुच्छ बुद्धि में प्रारम्भिक-शिक्षा के सुधार की अत्यन्त आवश्यकता है। हमारा सुख-दुःख, हमारी उन्नति, अवनति, हमारा सौभाग्य दौर्भाग्य, सभी कुछ प्रारम्भिक-शिक्षा के ऊपर निर्भर है। यदि वह अच्छी हुई तो हमारा सुधार हो सकता है और दौर्भाग्य से यदि वह बिगड़ गई तो फिर हमारे जीवन के बिगड़ने में लेशमात्र भी सन्देह नहीं।

जब मैं इस बात का विचार करता हूँ कि यह प्रारम्भिक शिक्षा उन छोटे बालकों को दी जाती है जिनके कोमल, नवविस्फुटित हृदयपुष्प को संसार के दूषित जल-वायु का स्पर्श तक नहीं हुआ, तब इस का महत्त्व और भी विशेष बढ़ जाता है। बालकों के मन का भाव अत्यन्त सरल, कोमल, शुद्ध और निर्मल होता है। बालकों का शुद्ध हृत्पटल श्वेतवस्त्र के समान होता है। जिस प्रकार श्वेतवस्त्र को हम लोग इच्छानुसार रङ्ग में रँगकर अपने काम का बना लेते हैं, ठीक उसी प्रकार बालकों का मन भी इच्छानुसार शिक्षित किया जा सकता है। जिस प्रकार कोमल पौधे को हम चाहे जिधर को झुका सकते हैं उसी प्रकार हम चाहें तो बालकों के मन को भी अपनी इच्छा के अनुसार परिष्कृत कर सकते हैं। वस्त्र जितना ही श्वेत या निर्मल होगा रङ्ग भी उस पर उतना ही गहरा आवेगा। जिस प्रकार मैले या काले वस्त्र पर कोई रङ्ग अच्छा नहीं चढ़ सकता उसी प्रकार जिस बालक की प्रारम्भिक शिक्षा बिगड़ जाती है उस पर उच्च शिक्षा या विद्या का उत्तम प्रभाव अच्छा नहीं जमता। जिस बालक का कोमल चित्त बचपन ही से बुरी बुरी वासनाओं से दूषित हो जाता है उसका वह दोष आजन्म बना रहता है लाख प्रयत्न करने पर भी वह निखारे नहीं निखरता। क्या कोई काले कपड़े को सफ़ेद कर सकता है? कभी नहीं। बालकों की प्रारम्भिक शिक्षा का ध्यान न देना उन पर अन्याय करना है। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा की ओर से उपेक्षा करना मानो अपने हाथ से श्वेत वस्त्र पर काला रङ्ग चढ़ाना

है। जो लोग वालकों की प्रारम्भिक शिक्षा के समय मूर्खता की लम्बी चादर तानकर, आलस्य की गाढ़ी निद्रा में पड़े सोते रहते हैं वे पीछे जागने पर भी कुछ नहीं कर सकते। "संदीप्ते भवने तु कूप-खननम् प्रत्युद्यमः कीदृशः"। इसलिए जो लोग अपने वालकों को विद्या और सुशिक्षा से सम्पन्न बनाना चाहें उनको उनकी प्रारम्भिक-शिक्षा की ओर विशेष ध्यान रखना चाहिए।

जो माता पिता अपने वालकों के वस्त्राभूषणों पर आवश्यकता से भी कहीं अधिक ध्यान देते हैं, हम देखते हैं, वे उनकी प्रारम्भिक शिक्षा का ध्यान कभी भूलकर भी अपने मन में नहीं आने देते। आजकल के माता पिता अपने वालकों के हाथ, पैर और गले आदि अङ्गों में चाँदी सोने की वेड़ियाँ पहनाने में जितना समय, धन और मन लगाते हैं, यदि उसका षोड़शांश भी उत्साह वे उनकी प्रारंभिक शिक्षा के सुधार के लिए दिखावें तो वेड़ा पार है। परन्तु मैं देखता हूं कि लोग इस ओर विलकुल ही ध्यान नहीं देते। या देते भी हैं तो उर्द पर सफ़ेदी के वरावर। जिस प्रारम्भिक शिक्षा पर वालक का सर्वस्व अवलम्बित है, जिस प्रारम्भिक शिक्षा पर वालक का ही नहीं, सारे समाज, नहीं नहीं, सारे देश की वुराई भलाई निर्भर है उसी की तरफ़ हम आँख उठा कर भी नहीं देखते! क्या यह कम दुःख की वात है? क्या यह कम लज्जा का विषय है?

प्रारम्भिक शिक्षा के भेद।

प्रारम्भिक शिक्षा दो प्रकार से दी जा सकती है। प्रत्यक्ष रीति से और परोक्ष रीति से। दूसरी तरह से आप इसे यों भी कह सकते हैं कि मौखिक और लेख द्वारा। जो शिक्षा मौखिक दी जाती है, जिसमें ज़वानी कुछ समझाया जाता है, वही शिक्षा की प्रत्यक्ष रीति है। और, जो शिक्षा लेख द्वारा दी जाती है, जिसमें पुस्तकों के द्वारा शिक्षण होता है, वह परोक्ष रीति है। हैं दोनों रीतियाँ आवश्यक। जव तक वालक अक्षराभ्यास नहीं करता, पुस्तकें नहीं पढ़ता तव तक उसको मौखिक शिक्षा का ही सहारा रहता है। यों तो वड़े होने पर, अनेक पुस्तकें के पढ़ने पर भी, वालक वीच वीच में मौखिक शिक्षा को ग्रहण करता रहता है, पर तो भी शैशवकाल में उसको सर्वथा मौखिक शिक्षा का ही आधार रहता है।

मौखिक शिक्षा का मुख्य भार वालक के माता पिता और उन लोगों के ऊपर ही रहता है जिनके समीप रहकर वह अपनी वाल्यावस्था को पूरी करता है। ये शिक्षायें सर्वथा उसके माता-पिता के ही हाथ में हैं। इसलिए वालक के माता-पिताओं का यह मुख्य कर्तव्य होना चाहिए कि वे अपने वच्चे को ऐसी मौखिक शिक्षा देते रहें जिससे उसके सुकोमल हृदय-पट पर सद्गुणों का चित्र अङ्कित हो जाय; दुर्गुणों, दुर्व्यसनों और वुराइयों से घृणा उत्पन्न हो जाय। छोटा वच्चा जैसा दूसरों को करता देखता है वैसा ही आप भी करने लगता है। वालक स्वभाव ही से अनुकरणशील होता है। इसलिये जो लोग अपने वालक को सद्गुणी और सुशील वनाना चाहें, उनका कर्तव्य है कि वे सदैव उनके साथ शुभगुणों की ही चर्चा करते रहें। चर्चा ही नहीं, किन्तु अपने आचरण से भी वैसा ही वर्ताव करके दिखाते रहें जैसा उनको वनाना चाहते हों। जो लोग अपने वालक के सामने वात वात में असत्यभाषण करते हैं, उनके वालक कभी सत्यवादी नहीं वन सकते। जिनके माता-पिता वात वात में वच्चे को हौआ आदि का भूँठा डर दिखलाया करते हैं उनके वच्चे कभी साहसी, निडर और वीर नहीं वन सकते।

मौखिक शिक्षा के विषयमें वहुत सी वातें कही जा सकती हैं। यदि उन सव आवश्यक

कों का उल्लेख यहाँ किया जाय तो लेख बहुत बढ़ जाने का डर है। मेरा मुख्य आलेख्य-विषय भी दूसरा ही है। मौखिक शिक्षा का प्रारम्भिक शिक्षा से सम्बन्ध होने ही के कारण उसका यहाँ पर कुछ उल्लेख करना पड़ा। आशा है समस्त शिक्षाप्रेमी, शिक्षा के इस आवश्यक अङ्ग की ओर भी, विशेष ध्यान देने का यत्न करके अपने कर्तव्य का पालन करेंगे।

प्रारम्भिक शिक्षा की प्रचलित हिन्दी-पुस्तकें।

यह बात कही जा चुकी है कि शिक्षा का दूसरा प्रकार परोक्ष रीति से, अर्थात् पुस्तकों के द्वारा, शिक्षा देना है। पहली रीति से शिक्षा देने का भार बालक के माता-पिता पर था और इस दूसरी रीति से शिक्षा देने का मुख्य भार पुस्तक रचनेवालों और सर्कारी शिक्षा-विभाग पर है। परन्तु आज कल प्रारम्भिक शिक्षा की जो हिन्दी-पुस्तकें प्रचलित हैं उनको देखने से प्रत्येक विचार-शील मनुष्य अच्छी तरह से समझ सकता है कि वे हमारे बालकों की प्रारम्भिक शिक्षा के लिए यथेष्ट उपयोगी नहीं हैं। उनमें एक नहीं अनेक त्रुटियाँ हैं। पुस्तक के उपयोगी होने के लिए दो ही बातें आवश्यक होती हैं। भाषा और विषय। पर आजकल की प्रचलित हिन्दी-पुस्तकों की न तो भाषा ही प्रशंसनीय है, न विषय ही। पहली पुस्तक की जो भाषा है वही भाषा प्रायः छठी पुस्तक तक चली गई है। भला यह भी कोई न्याय की बात है? जैसा और जितना भोजन ६-७ वर्ष के बच्चे के लिए अपेक्षित है वैसा ही और उतना ही भोजन १० वर्ष के बालक के लिए कभी पर्याप्त नहीं हो सकता। कल्पना कीजिए कि ६ वर्ष का बच्चा दिन भर में तीन छटाँक अन्न से तृप्त हो जाता है, तो क्या १० वर्ष का बालक भी ३ छटाँक अन्न के सहारे ही रह कर अपना जीवन-निर्वाह करे? जिसको छ छटाँक की भूक है उसका काम तीन छटाँक से किस तरह चल सकता है? आधे पेट भोजन करके दुर्बल होता होता बालक क्या बहुत जल्द काल के गाल में न चला जायगा? अवश्य चला जायगा। तो फिर छ छटाँक की भूक वाले बालक पर ३ छटाँक में ही निर्वाह करनेके लिए क्यों दबाव डाला जाता है। उसको यथेष्ट खाद्य सामग्री क्यों नहीं दी जाती? यह मैं भी मानता हूँ कि जितनी पाचन शक्ति हो उतना ही भोजन करना चाहिए। अधिक खाने से अजीर्ण हो जाने का डर रहता है। पर आधे पेट खाना भी तो अच्छा नहीं। मेरी सम्मति में इससे अच्छी और कोई बात नहीं कि जिसको जितनी भूक हो उसको उतना ही भोजन दिया जाय। ऐसा करने से उसकी तृप्ति भी होगी और उसका बल भी बढ़ेगा। जो लोग ६ से १० वर्ष तक के बालकों को समान भाषा की ही पुस्तकें पढ़ाते हैं वे अच्छा काम नहीं करते। कोई भी मतिमान् मनुष्य इस बात को कभी नहीं मान सकता कि जिस ढंग की भाषा पहली पुस्तक की हो छठी पुस्तक की भी वैसी ही हो। जहाँ तक मुझे पूछने से पता लगा है, मैं कह सकता हूँ कि भारतवर्ष को छोड़ कर और किसी भी देश में ऐसा अन्धेर नहीं है। दूर देशों की बात जाने दीजिए। इसी देश के और और प्रान्तों की पाठ्य पुस्तकें, भाषा के विचार से, इस प्रान्त की पाठ्य पुस्तकों से आकाश-पाताल का सा अन्तर रखती हैं। ५-६ वर्ष से तो यहाँ ऐसी पुस्तकें प्रचलित हैं जिनको पढ़नेवाला अपर-प्राइमरी पास कर लेने पर भी, हिन्दी-समाचार पत्रों को पढ़ कर नहीं समझ सकता!

भाषा की तरह विषयों की भी दुर्दशा है। ढूँढने पर दस पाठों में कठिनता से एक पाठ ऐसा निकलेगा जिससे बालक कोई अच्छी बात सीख सकता है। शेष पाठ ऐसे

अनावश्यक, अनुपयोगी और व्यर्थ विषयों से भरे पड़े हैं जिनको देख कर चित्त में दुःख होता है।

आर्य-भाषा-भाषी आर्य-सन्तानों की विद्या-तृष्णा, कुत्ते-बिल्लियों या गीदड़-उल्लुओं के पाठ पढ़ने से शान्त नहीं हो सकती। किसी पाठ में मक्खी को ६, हज़ार आँखें और ६ टाँगें बतलाने से ही आर्य-बालक विज्ञान-वेत्ता नहीं बन सकता। जादू के कुएँ के पाठ में परियों की असम्भव कहानी पढ़ने से हिन्दू-बालक अपना कितना सुधार कर सकता है इसको प्रत्येक विचारशील विद्वान अच्छी तरह सोच सकता है। जिन पाठों से बालकों को न किसी प्रकार की धार्मिक-शिक्षा मिलती है, न सामाजिक और न नैतिक,उनके पढ़ाने से पढ़नेवालों का अमूल्य समय व्यर्थ नष्ट करना नहीं तो और क्या है?

प्रारम्भिक शिक्षा की प्रचलित हिन्दीपुस्तकों के दोष जान लेने पर भी हम लोग ऐसे निश्चिन्त बैठे हैं मानो हमें कुछ करना ही नहीं है। अपनी आँखों के सामने अपने बालकों की विद्या-शिक्षा की नींव को सर्वथा कच्ची बनते देख कर भी हमारे कान पर जूँ नहीं रेंगती। क्या अपने बालकों की प्रारम्भिक शिक्षा की इस दुर्दशा के हम उत्तरदाता ही नहीं? क्या हमारे इस अज्ञान, आलस्य या उपेक्षा का बुरा परिणाम हमको या हमारे बालकों को नहीं भोगना पड़ेगा या नहीं पड़ रहा है? केवल हम या हमारे बालकों को ही नहीं, इसका कुफल हमारी समाज और देशभर को भोगना पड़ेगा।

आजकल हम लोगों में विद्या की ऊँची डिग्री प्राप्त कर लेने पर भी धार्मिक, सामाजिक और नैतिक बल की जो कमी दिखलाई देती है [illegible]का क्या कारण है? केवल प्रारम्भिक शिक्षा का बिगाड़। हम विद्या पढ़ कर भी, अपने धर्म देश और समाज को प्यार नहीं करते, या करते हैं तो उतना नहीं करते जितना हमको करना चाहिए। यह हमारी प्रारम्भिक शिक्षा के बिगड़ जाने का ही कुफल है कि हम ईश्वर को मानते ही नहीं, हममें स्वधर्मपालन का उत्साह नहीं, हमारे हृदय में जननी जन्मभूमि की प्रतिष्ठा ही नहीं और अपने भाइयों के प्रति हममें भक्ति, श्रद्धा और प्रेम ही नहीं। ऐसी विद्या के पढ़ने से क्या लाभ जिससे ईश्वर में भक्ति न हो, धर्म में श्रद्धा न हो, देश में अनुराग न हो, और अपने देशी भाइयों में प्रेम न हो। मेरी तुच्छ सम्मति में,वह विद्या विद्या ही नहीं कहलाई जा सक[ती] जिससे मनुष्य में सदाचार और कर्तव्यपाल[न] का भाव दृढ़ न हो। वह शिक्षा कभी शिक्षा का[ह]लाने का दावा नहीं कर सकती जिससे—

"कः कालः कानि मित्राणि को देशः कौव्ययागमौ को वाऽहं का च मे शक्तिः..................."

का पूरा पूरा बोध न हो।

अब प्रश्न यह है कि यदि प्रारम्भिक-शिक्षा की प्रचलित हिन्दी-पुस्तकें बालकों के लिए अधिक लाभदायक नहीं हैं तो फिर उनके लिए कैसी पुस्तकें होनी चाहिएँ। निस्सन्देह इस बात पर विचार करने की बड़ी आवश्यकता है। यह प्रश्न बड़ा गम्भीर है। अब मैं अपनी तुच्छ बुद्धि के अनुसार यहाँ यह बतलाना चाहता हूँ कि प्रारम्भिक शिक्षा की हिन्दी-पुस्तकें कैसी होनी चाहिएँ।

१—सबसे पहिली बात भाषा की है। मेरी सम्मति में प्रारम्भिक शिक्षा की हिन्दी पुस्तकों की भाषा बहुत सरल होनी चाहिए, ऐसी सरल कि जिसके समझने में बालकों को अधिक कठिनता न हो। उनकी भाषा में न तो संस्कृत के कठिन शब्दों की भरमार होनी चाहिए और न उर्दू-फ़ारसी आदि विदेशी भाषाओं के कठिन

[illegible] होना चाहिए। जो शब्द अधिक प्रचलित हैं, फिर चाहे वे किसी भी भाषा के क्यों न हों, उनका व्यवहार करना अनुचित नहीं है। जानबूझ कर उर्दू-फ़ारसी के कम प्रचलित शब्दों का प्रयोग करना मैं उचित नहीं समझता। इसी प्रकार घर की जगह 'गृह', जगह की जगह 'स्थान', 'कान' की जगह 'कर्ण', 'मुंह' की जगह [illegible] शब्दों का प्रयोग करना मेरी अल्प-बुद्धि में अनावश्यक है। तात्पर्य यह है कि प्रारम्भिक शिक्षा की पुस्तकें बहुत ही सरल भाषा में लिखी जानी चाहिएँ। पहिली पुस्तक की जैसी भाषा हो वैसी ही भाषा बराबर पाँचवीं छठी पुस्तक तक रखना अच्छा नहीं है। भाषा की कठिनता और गम्भीरता उत्तरोत्तर बढ़ती जानी चाहिए।

२—हम देखते हैं कि बालकों के स्वभाव का झुकाव आरम्भ से ही गद्य की अपेक्षा पद्य की ओर अधिक होता है। बालक कविता के पढ़ने सुनने में अधिक रुचि रखते हैं। इसलिए बालकों की प्रारम्भिक पुस्तकों में अधिकांश पद्यभाग ही होना चाहिए, कारण यह है कि छोटी और सरल कविता को बालक बड़े चाव से पढ़ते हैं और बहुत जल्द याद कर लेते हैं। यही नहीं, किन्तु बचपन की याद की हुई कविता उनको आजीवन नहीं भूलती। परन्तु आजकल की प्रारम्भिक पुस्तकों में कविता का भाग बहुत ही कम है। जो है भी वह केवल प्राचीन हिन्दी-कवियों की दो चार इनी गिनी कविताओं का कुछ [illegible] मात्र है। वर्तमान मासिक पत्रों या पत्रिकाओं में जो नई प्रणाली की हिन्दी-कविताएं प्रकाशित होती रहती हैं उनमें से भी बहुत सी कविताओं का समावेश प्रारम्भिक पुस्तकों में किया जाना अत्यन्त आवश्यक है। अधिक नहीं तो कम से कम पुस्तक का एक चतुर्थांश तो अवश्य ही कविता से अलंकृत रखना चाहिए।

३—तीसरी बात भाव या विषय की है। विषय का काठिन्य और भाव का गाम्भीर्य क्रम क्रम से उन्नत होता जाना चाहिए। पहली पुस्तक के पाठों के भाव से आगे की पुस्तकों का भाव यथाक्रम गम्भीर होना चाहिए। वैसा न होना चाहिए जैसा आजकल की पुस्तकों में है। पहली पुस्तक से छठी पुस्तक के भाव में जितना अन्तर होना चाहिए उतना आजकल की पुस्तकों में नहीं है। मेरे कथन का तात्पर्य यह है कि भाषा के साथ साथ भाव का गांभीर्य भी क्रमशः बढ़ता जाना चाहिए।

४—प्रारम्भिक पुस्तकों में जो आजकल इतिहास की बातें पढ़ाई जाती हैं उनमें भी बहुत कुछ परिवर्तन करने की आवश्यकता है। भारतीय बालकों की प्रारम्भिक पुस्तकों में पहले भारत के इतिहास की ही बातें अधिक होनी चाहिएँ। ऐतिहासिक शिक्षा में सबसे मुख्य विचारणीय बात यही है कि बालकों को अपने देश में उत्पन्न हुए आदर्श महापुरुषों के जीवन-चरितों से परिचय हो और वे उनसे उचित शिक्षा ग्रहण करें। यदि ऐसा न हो तो फिर इतिहास की शिक्षा देना निष्फल है। बालकों को आरम्भ से ही ऐसी ऐतिहासिक बातें पढ़ानी चाहिएं जिनसे उनके कोमल हृदय-पटपर अपने प्राचीन-पुरुषों के महत्व का चित्र अंकित होजाय और वे अपने पूर्वजों को अधिक गौरव की दृष्टि से देखने लगें। अपना इतिहास पढ़ चुकने पर फिर दूसरों के इतिहास पढ़ने चाहिए।

५—प्रारम्भिक शिक्षा की हिन्दी पाठ्यपुस्तकों में ऐसे पाठ होने चाहिएं जिनको पढ़कर [illegible] में उच्च भावों की वृद्धि हो। दुर्व्यसनों [illegible] दुराचरणों से इनको [illegible] की पाठ्य पुस्तकों में ऐसे [illegible] होना चाहिए [illegible] की [illegible]

सकें। आजकल की पुस्तकों में ऐसे पाठों का सर्वथा अभाव है जिनसे बालकों को स्वदेश और स्वधर्म में दृढ़ प्रेम और गाढ़ी भक्ति हो। स्वदेशप्रेम, स्वधर्म भक्ति और स्वावलम्बन आदि ऐसे गुण हैं जो प्रत्येक मनुष्य में होने चाहिएँ। पर हम देखते हैं, आजकल की पुस्तकों में ऐसे आवश्यक विषयों का प्रायः अभाव है। बालकों की पाठ्य पुस्तकों में कोई भी ऐसी पुस्तक नहीं जिसमें स्वास्थ्य सुधार की आवश्यक बातों का उल्लेख हो। यह देखकर किसको खेद न होगा कि प्रारम्भिक शिक्षा की हिन्दी-पुस्तकों में जिन जिन उपयोगी विषयों का समावेश होना आवश्यक था, प्रचलित पुस्तकों में उन्हीं अत्यावश्यक विषयों का बहिष्कार किया गया है।

प्रारम्भिक शिक्षा के सुधार का उपाय।

मेरे इस कथन से आप को यह बात अच्छी तरह मालूम हो गई होगी कि प्रारम्भिकशिक्षा के लिए हिन्दी-पुस्तकें कैसी होनी चाहिएँ। परन्तु ऐसी पुस्तकों का लिखना हरएक आदमी का काम नहीं। इन पुस्तकों को वे ही लोग अच्छी तरह लिख सकते हैं जो हिन्दी के नामी लेखक होने के साथ ही, संस्कृत और अँगरेज़ी भाषा के भी अच्छे विद्वान् हों। जो लोग अपने देश की आवश्यकताओं को नहीं समझते और यह नहीं जानते कि इस समय बालकों को किस किस प्रकार की शिक्षा किस ढंग से दी जानी चाहिए, वे ऐसी पुस्तकें कभी नहीं लिख सकते; और न उनको ऐसी पुस्तकों के लिखने का कभी साहस ही करना चाहिए। परन्तु हमारे दौर्भाग्य से आज हमारी प्रारम्भिक शिक्षा की पुस्तकों के लिखने का काम बहुत करके दूसरे ही महात्माओं के हाथ में है। जो लोग हिन्दी का इमला तक शुद्ध नहीं लिख सकते वे लोग जब हिन्दी की पाठ्य पुस्तकें लिखने का दुस्साहस करते हैं, तब हमको कैसे विश्वास हो सकता है कि हमारे बालकों के हाथ में शुद्ध और लाभदायक पु[स्तकें] पहुँचेंगी। जो लोग भारतवर्ष के पुराने इति[हास] को दूसरों की दृष्टि से ही देखते हैं, जिनके [हृदय] में भारत के पुराने गौरव का अङ्कुर तक [नहीं] वे लोग प्रारम्भिक शिक्षा के लिए ऐतिहा[सिक] पुस्तकें नहीं लिख सकते। जो ऐतिहा[सिक] पुस्तकें वे लिखते हैं वे हमारे किसी काम [की] नहीं होतीं।

हम देखते हैं कि हमारी कितनी ही प्र[ार]म्भिक पुस्तकें ऐसे लोगों की लिखी हुई हैं, [जो] भारतीयता का कुछ भी ज्ञान नहीं रखते [और] जो सर्वथा विदेशी हैं। भला सात समुद्र प[ार] का रहने वाला, चाहे वह कितना ही विद्वा[न] क्यों न हो, कभी हमारी उन आवश्यकताओं [को] पूरी कर सकता है जिनकी हमारे लिए आव[श्]यकता है? मेरी तो यह सम्मति है कि आव[श्]यकताओं की पूर्ति तो अलग रही, वे हमार[ी] आवश्यकताओं को समझ ही नहीं सकते [।] दूसरे लोगों का ज्ञान हमारे लिए सर्वांश में हित[कर] और उपादेय नहीं हो सकता। उनमें एक [नहीं] नहीं अनेक त्रुटियाँ हैं। पहले तो वे यही नहीं जानते कि हिन्दी कहते किस को हैं। दूसरे, भारतवासियों के आचार-विचारों के ज्ञान से भी वे कोरे ही रहते हैं। तीसरे, यहाँ रह कर उन लोगोंने जो थोड़ी बहुत बातें हम लोगों के विषय में जानी भी हैं वे सर्वांश में यथार्थ नहीं। उन्हें अभी यहाँ की बातों का बहुत ही कम ज्ञान है। जब उनकी यह दशा है तब आप स्वयं सोच सकते हैं कि उनकी लेखनी से लिखी गई अधकचरी बातों से भारतवर्ष के बालकों को कितना लाभ हो सकता है! अकेले उन्हीं बेचारों का दोष नहीं; यहाँ वाले भी जो लोग बालकों की किताबें लिखने लगे हैं वे भी प्रायः दोषपूर्ण ही हैं।

हमें खेद है कि हमारे शिक्षित भाई, जो संस्कृत और अँगरेज़ी भाषा के अच्छे विद्वान् हैं

ओर उनका भी अपना ध्यान आकर्षित
। हमारी प्रारम्भिक शिक्षा के बिगड़ने-
सारा पाप-पुण्य हमारे शिक्षित भाइयों
है। हमारी समझ में नहीं आता कि हमारे
भाई क्यों इस ओर ध्यान नहीं देते। हिन्दी
नामी लेखकों को इस आवश्यक कर्त्तव्य
र अवश्य ध्यान देना चाहिए। यहाँ की मुख्य
नागरी प्रचारिणी सभाओं को इस आवश्यक
की ओर पूरा ध्यान देना चाहिए। यदि
साहित्य-सम्मेलन ही इस कार्य को अपने
ले ले, तो भी बहुत कुछ सफलता की आशा
में खेद है कि समाचार-पत्रों के सम्पादक
का ध्यान इधर बिलकुल नहीं गया। प्रत्येक
का यह कर्त्तव्य होना चाहिए कि अपने
बुराइयों का घोर विरोध करें और उनके
उपाय लोगों को बतलावें। यदि कोई
सम्मेलन पुस्तक-प्रकाशन का भार अपने
ले सकता तो कम से कम पुस्तक-प्रणयन
तो उसको अपने हाथ में अवश्य ही ले
हिए। यदि सम्मेलन अच्छे अच्छे विद्वान्
लेखकों को पुरस्कार दे देकर प्रारम्भिक-शिक्षा
की पुस्तकें बनवाने का काम आरम्भ करदे तो
भारतवर्षीय बड़े बड़े पुस्तक-प्रकाशक उनके प्रकाशन
और विक्रय का भार बड़ी ख़ुशी से अपने ऊपर ले
सकते हैं। ऐसा करने से पाठ्य पुस्तकों का सुधार
भी हो जायगा और सम्मेलन को कुछ आर्थिक लाभ
भी अवश्य ही होगा। परन्तु यह काम है बड़ा कठिन।
इसके लिए सम्मेलन के अधिकारियों को बहुत
परिश्रम करना पड़ेगा और निरन्तर उद्योग जारी
रखना होगा। उनको सर्कारी शिक्षाविभाग का ध्यान
इस ओर आकर्षित कराना होगा और उसके द्वारा
अपनी पुस्तकों को स्वीकृत कराना होगा। मेरी
सम्मति में, यदि इस काम को उत्तम रूप से चलाने
के लिए भारतवर्ष के ८। १० प्रतिष्ठित हिन्दी हितैषी
महानुभावों की एक शिक्षा-समिति सङ्गठित हो जाय
और वह निरन्तर उद्योग करती रहे तो मुझे विश्वास
है कि इस समय हिन्दी में प्रारम्भिकशिक्षा की जो
अनुपयोगी या अल्प उपयोगी पुस्तकें प्रचलित हैं
उनके स्थान में जैसी हम चाहते हैं वैसी ही सर्वाङ्ग
और उपयोगी पुस्तकें प्रचलित हो सकती हैं।

प्रारम्भिक शिक्षा में स्वरूप शिक्षा की उपयोगिता

[लेखक-श्रीयुत शैलजाकुमार घोष]

आराधयामि मणिसन्निभमात्मरूपं
आनन्दालयविश्व-हृदयपंकजसन्निविष्टम् ।
श्रद्धानदी विमलचित्त जलावगाहं
नित्यं आमोदपुष्पैर्जनसरलुग्राय ॥
रूपारूपपक्षरसिक सुचित्र-कर्मकारक
विश्वधृक् त्वं च देवेश वासनामानदंडधृक् ॥
आदिशिल्पिन् महाभाग सृष्टिसौन्दर्य्यरंजक
विश्वकर्मन् नमस्तुभ्यं सर्वाभीष्टफलप्रदः ॥

हमारे लेख का विषय है स्वरूप शिक्षा । श्रीस्वामी शंकराचार्य्यजी आत्मनिरूपण के एक श्लोक में कह गये हैं "न स्थानं न मानं न रूपं न रेखा"—आत्मा स्थूल शरीर के न होने के कारण स्थान, परिमाण, रूप और रेखारहित है। परन्तु दिखाई देती हुई जगत् की चीज़ें इसके विपरीत स्थान, परिमाण, रूप और रेखा से युक्त हैं, उन सब चीज़ों के स्थान, परिमाण, रूप और रेखा अवश्यही होते हैं। स्थान वा किसी आधार पर रक्खी हुई, परिमाण अर्थात् लम्बाई चौड़ाई और मोटाई से युक्त, प्रकाश के किरणों से नेत्रों में अपना चित्र बनाने वाली और आयतन की रेखामय सीमा को प्रकट करनेवाली वस्तु स्वरूप से युक्त कही जाती है।

हमें किसी वस्तु का बोध कैसे होता है ? सूर्य्य, बिजली वा अग्नि के प्रकाश की किरणें जब किसी वस्तु पर पड़ती हैं तो उसे चमका देती हैं। ये किरणें सीधी रेखा से वस्तुओं पर पड़ती वस्तु पर से विम्बित् किरणें (Reflected नेत्रों में पैठ जाती हैं। पुतलियों के भीतर आंख जो कि बंद बक्स सी है उसके पिछले लगे हुए परदे पर इन विम्बित् किरणों के इकट्ठे हो जाने से चित्र बन जाता है। उ पर के चित्र को बोधतन्तु अर्थात् बहुत मही नसें मस्तिष्क (Brain) तक पहुँचा दे तब चित्र का बोध अर्थात् दिखाई देती हुई स्वरूप का ज्ञान होता है। यह सब काम इत समय में होता है—(और नेत्र के खुले र बराबर हो रहा है) कि हम लोग उसके विचार द्वारा ही समझ सकते हैं। यह चित्र के रूप अर्थात् वर्ण वा रंग का ही प्रतिबिम्ब है, और यह वर्ण प्रकाश वा उजियाले ही से होता है और इसीलिए अँधेरे में नहीं दीखता। व के रूप देख पड़ने के साथही उनके धरातल देख पड़ते हुए ऊपरी भाग की सीमा वा ह बोध होने लगता है। दिखाई देते हुए इस वस्त एक धरातल जहाँ दूसरे से जा मिलता है सीमा वा हद बनाता है, जिसे रेखा कहते हैं। जब रूप रेखा को देख लेती है तब स्पर्शेन्द्रिय हाथ आदि कर्मेन्द्रिय उसे छूकर परिमाण का भव करते हैं। उस समय यह ज्ञान होता है

किसी आधार या स्थान पर रक्खी हुई है और लम्बाई, चौड़ाई और मोटाई भी है तथा वा बोझ भी है।

आशय यह कि जिन वस्तुओं के बाहरी दृश्य या देख पड़ते हैं, उन के दृश्य को स्वरूप है।

उस स्वरूप को समझने की शक्ति और समझ स्मृति में धारण करने की शक्ति और याद हुए स्वरूप को किसी भी पार्थिव वस्तु के सहारे बाहर ठीक २ प्रकाश कर देने की शक्ति जब शिक्षा ही से पुष्ट की जायगी, और यही शिक्षा की विधि शिक्षार्थी के वयसानुसार को पाती जायगी, तभी यह आशा की कि यह शिक्षार्थी अपनी शिक्षा की पूर्ति के क्षेत्र में उतर कर प्रकृति की लीला माधुरी रंग और रूपों से समाज को आनन्द का बनाने में अपने को समर्थ पावेगा—और के द्वारा अपनी मानसिक, आर्थिक और नैतिक करने में भी समर्थ होगा। सच तो यह है प्राकृतिक वस्तुओं का ठीक ठीक निरीक्षण, का ठीक २ बोध और उन वस्तुओं का पुनः करके उनको प्रकाशित करते हुए आगे को वाला पुरुष प्रकृति के महाकाव्य का मर्मज्ञ, और ब्रह्माण्ड के विज्ञान का गम्भीर ज्ञाता है। स्वरूपकार प्रकृति के छिपे हुए महा-को स्थूल वस्तु द्वारा जगत् के सम्मुख, जिस से उपस्थित कर सकता है, प्राकृतिक की प्रबल तरङ्गों को अपने बनाए हुए रेखा या रंग चित्र और प्रतिमा स्वरूप या मिट्टी, पत्थर, धातु आदि से बने स्वरूप द्वारा पटुता के साथ प्रकट कर सकता है और गम्भीरता के साथ उसके शब्दहीन पक्षन्न था, उसकी लिपि रहित ललित कविता का समाज पर पड़ता हुआ सामाजिक, मानसिक और देह और स्वास्थ्य को बढ़ा सकता है।

रेखा द्वारा, रंग द्वारा, या धातु मिट्टी पत्थर आदि पार्थिव वस्तुओं द्वारा बिना शब्द कहे, बिना लिपि लिखे, मनोभाव को प्रकट करने की यह जो बड़ी शक्ति है इसकी पूर्ण पुष्टि शिक्षा द्वारा ही हो सकती है। इँगलिस्तान, जर्मनी, अमेरिका, जापान आदि में साहित्य, अंक या गणित, भूगोल आदि के लिए पाठों के साथ ही साथ यह स्वरूप शिक्षा इस निपुणता से दी जाती है कि छोटे बालक और बालिका भी प्राकृतिक वस्तुओं को एक ही बार देख कर रेखा या रंग द्वारा अति सुहावने चित्र बनाते हैं जिनका संक्षेप वर्णन यों है:—आकाश में उड़ती हुई चिड़ियें, पहाड़ तली के निर्मल सोतों में लाल सुनहरी रुपहरी आदि प्राकृतिक रंगों से भूषित आनन्द की कल्लोल से बहती हुई मछलियाँ, हरे हरे खेतों में उन्माद भरे खेलते हुए और भागते हुए खरगोश, सन्ध्या-काल की लालिमा-रंजित लाल मेघमाला में [illegible] पूर्ण सरोवरों में हँसते हुए [illegible] के आघात से काँपते हुए [illegible] झकोरे से गिरे हुए पत्तों [illegible] कर अपूर्व भाव दिखाने [illegible] पर की घासों के गुच्छों के दृश्य, [illegible]।

जिनके वर्णन मात्र में [illegible] उनके सत्य स्वरूप को जो शिशु [illegible] लाभ करते हैं उनकी दृष्टि शक्ति, [illegible] साथ मनोभाव को प्रकाश करने की शक्ति, [illegible] विशाल भंडार में सुरक्षित [illegible] भावों को प्रकाश करने वाले [illegible] का सामर्थ्य प्रारम्भिक शिक्षा ही [illegible] के सहित पुष्टि पाता है [illegible] ही समझ सकते हैं।

यही स्वरूप शिक्षा का [illegible] [illegible] [illegible] की [illegible] [illegible]

प्रारम्भिक शिक्षा में स्वरूप शिक्षा की उपयोगिता

[लेखक-श्रीयुत शैलजाकुमार घोष]

आराधयामि मणिसन्निभमात्मरूपं
आनन्दालयविश्व-हृदयपंकजसन्निविष्टम् ।
श्रद्धानदी विमलचित्त जलावगाहं
नित्यं आमोदपुर्णैर्जनसत्सुखाय ॥
रूपारूपद्वरसिक सुचित्र-कर्मकारक
विश्वधृक् त्वं च देवेश वासनामानदंडधृक् ॥
आदिशिल्पिन् महाभाग सृष्टिसौन्दर्य्यरंजक
विश्वकर्मन् नमस्तुभ्यं सर्वाभीष्टफलप्रदः ॥

हमारे लेख का विषय है स्वरूप शिक्षा। श्रीस्वामी शंकराचार्य्यजी आत्मनिरूपण के एक श्लोक में कह गये हैं "न स्थानं न मानं न रूपं न रेखा"—आत्मा स्थूल शरीर के न होने के कारण स्थान, परिमाण, रूप और रेखारहित है। परन्तु दिखाई देती हुई जगत् की चीज़ें इसके विपरीत स्थान, परिमाण, रूप और रेखा से युक्त हैं, उन सब चीज़ों के स्थान, परिमाण, रूप और रेखा अवश्यही होते हैं। स्थान या किसी आधार पर रक्खी हुई, परिमाण अर्थात् लम्बाई चौड़ाई और मोटाई से युक्त, प्रकाश के किरणों से नेत्रों में अपना चित्र बनाने वाली और आयतन की रेखामय सीमा को प्रकट करनेवाली वस्तु स्वरूप से युक्त कही जाती है।

हमें किसी वस्तु का बोध कैसे होता है? सूर्य्य, बिजली या अग्नि के प्रकाश की किरणें जब किसी वस्तु पर पड़ती हैं तो उसे चमका देती हैं। ये किरणें सीधी रेखा से वस्तुओं पर पड़ती है[illegible] वस्तु पर से विम्बित् किरणें (Reflected [illegible] नेत्रों में पैठ जाती हैं। पुतलियों के भीतर [illegible] आँख जो कि बंद बक्स सी है उसके पिछले [illegible] लगे हुए परदे पर इन विम्बित् किरणों के स[illegible] इकट्ठे हो जाने से चित्र बन जाता है। उस[illegible] पर के चित्र को बोधतन्तु अर्थात् बहुत महीन [illegible] नसें मस्तिष्क (Brain) तक पहुँचा देती[illegible] तब चित्र का बोध अर्थात् दिखाई देती हुई व[illegible] स्वरूप का ज्ञान होता है। यह सब काम इतने [illegible] समय में होता है—(और नेत्र के खुले रहते [illegible] बराबर हो रहा है) कि हम लोग उसको [illegible] विचार द्वारा ही समझ सकते हैं। यह चित्र [illegible] के रूप अर्थात् वर्ण या रंग का ही प्रतिविम्ब [illegible] है, और यह वर्ण प्रकाश या उजियाले ही से प्र[illegible] होता है और इसीलिए अँधेरे में नहीं दीखता। वस्[illegible] के रूप देख पड़ने के साथही उनके धरातल अ[illegible] देख पड़ते हुए ऊपरी भाग की सीमा या हद [illegible] बोध होने लगता है। दिखाई देते हुए इस वस्तु [illegible] एक धरातल जहाँ दूसरे से जा मिलता है व[illegible] सीमा या हद बनाता है, जिसे रेखा कहते हैं। इ[illegible] जब रूप रेखा को देख लेती है तब स्पर्शेन्द्रिय [illegible] हाथ आदि कर्मेन्द्रिय उसे छूकर परिमाण का अ[illegible] भव करते हैं। उस समय यह ज्ञान होता है [illegible]

...या स्थान पर रक्खी हुई है और चौड़ाई और मोटाई भी है तथा है।

...कि जिन वस्तुओं के बाहरी दृश्य या ...देख पड़ते हों, उन के हृदय को स्वरूप ...हैं।

...स्वरूप को समझने की शक्ति और समझ ...में धारण करने की शक्ति और याद ...स्वरूप को किसी भी पार्थिव वस्तु के सहारे ...कर ठीक २ प्रकाश कर देने की शक्ति जब ... शिक्षा ही से पुष्ट की जायगी, और यही ...शिक्षा की विधि शिक्षार्थी के वयसानुसार ...की जायगी, तभी यह आशा की ...कि यह शिक्षार्थी अपनी शिक्षा की पूर्ति ...में उतर कर प्रकृति की लीला माधुरी ...और रूपों से समाज को आनन्द का ...बनाने में अपने को समर्थ पावेगा—और ...अपनी मानसिक, आर्थिक और नैतिक ...में भी समर्थ होगा। सच तो यह है ...वस्तुओं का ठीक ठीक निरीक्षण, ...ठीक २ बोध और उन वस्तुओं का पुन... उनको प्रकाशित करते हुए आगे को ...पुरुष प्रकृति के महाकाव्य का मर्मज्ञ, ...ब्रह्माण्ड के विज्ञान का गम्भीर ज्ञाता है। स्वरूपकार प्रकृति के छिपे हुए महा...स्थूल वस्तु द्वारा जगत् के सम्मुख, जिस ...से उपस्थित कर सकता है, प्राकृतिक ...तत्त्वों को अपने बनाए हुए रेखा ...चित्र और प्रतिमा स्वरूप या मिट्टी, ...पत्थर, धातु आदि से बने स्वरूप द्वारा ...के साथ प्रकट कर सकता है ...गम्भीरता के साथ उसके शब्द-हीन पवन ...उसकी लिपि रहित ललित कविता का ...पर पड़ता हुआ सामाजिक, मानसिक ...और स्वास्थ्य को बढ़ा सकता है।

रेखा द्वारा, रंग द्वारा, या धातु मिट्टी पत्थर आदि पार्थिव वस्तुओं द्वारा बिना शब्द कहे, बिना लिपि लिखे, मनोभाव को प्रकट करने की यह जो बड़ी शक्ति है इसकी पूर्ण पुष्टि शिक्षा द्वारा ही हो सकती है। इँगलिस्तान, जर्मनी, अमेरिका, जापान आदि में साहित्य, अंक या गणित, भूगोल आदि के लिए पाठों के साथ ही साथ यह स्वरूप शिक्षा इस निपुणता से दी जाती है कि छोटे बालक और बालिका भी प्राकृतिक वस्तुओं को एक ही बार देख कर रेखा या रंग द्वारा अति सुहावने चित्र बनाते हैं जिनका संक्षेप वर्णन यों है:—आकाश में उड़ती हुई चिड़ियें, पहाड़ तली के निर्मल सोतों में लाल सुनहरी रुपहरी आदि प्राकृतिक रंगों से भूषित आनन्द की कलोल से बहती हुई मछलियां, हरे हरे खेतों में उन्माद भरे [illegible] हुए और भागते हुए खरगोश, संध्या-काल की रक्तिमा-रंजित लाल मेघमाला में [illegible] [illegible] पूर्ण सरोवरों में हँसते हुए और [illegible] [illegible] के आघात से कांपते हुए पानी के फूल, [illegible] के झकोरे से गिरे हुए पत्तों [illegible] कर [illegible] कर अपूर्व भाव दिखाने वाले [illegible] पर की घासों के गुच्छों के दृश्य, इत्यादि।

जिनके वर्णन मात्र में [illegible] उनके सत्य स्वरूप को जो [illegible] लाभ करते हैं उनकी [illegible] शक्ति, [illegible] साथ मनोभाव को प्रकाश करने की शक्ति, [illegible] विशाल भंडार में [illegible] भावों को प्रकाश करने [illegible] का सामर्थ्य प्रारम्भिक शिक्षा [illegible] के सहित पुष्टि [illegible] ही समझ सकते हैं।

[illegible]

प्रारम्भिक शिक्षा में स्वरूप शिक्षा की उपयोगिता

[लेखक—श्रीयुत शैलजाकुमार घोष]

आराधयामि मणिसन्निभमात्मरूपं
आनन्दालयविश्व-हृदयपंकजसन्निविष्टम् ।
श्रद्धानदी विमलचित्त जलावगाहं
नित्यं आमोदपुण्यैर्जनसततुखाय ॥
रूपारूपक्षरसिक सुचित्र-कर्मकारक
विश्वधृक् त्वं च देवेश वासनामानदंडधृक् ॥
आदिशिल्पिन् महाभाग सृष्टिसौन्दर्य्यरंजक
विश्वकर्मन् नमस्तुभ्यं सर्वाभीष्टफलप्रदः ॥

हमारे लेख का विषय है स्वरूप शिक्षा । श्रीस्वामी शंकराचार्य्यजी आत्मनिरूपण के एक श्लोक में कह गये हैं "न स्थानं न मानं न रूपं न रेखा"—आत्मा स्थूल शरीर के न होने के कारण स्थान, परिमाण, रूप और रेखारहित है । परन्तु दिखाई देती हुई जगत् की चीज़ें इसके विपरीत स्थान, परिमाण, रूप और रेखा से युक्त हैं, उन सब चीज़ों के स्थान, परिमाण, रूप और रेखा अवश्यही होते हैं । स्थान वा किसी आधार पर रक्खी हुई, परिमाण अर्थात् लम्बाई चौड़ाई और मोटाई से युक्त, प्रकाश के किरणों से नेत्रों में अपना चित्र बनाने वाली और आयतन की रेखामय सीमा को प्रकट करनेवाली वस्तु स्वरूप से युक्त कही जाती है ।

हमें किसी वस्तु का बोध कैसे होता है ? सूर्य्य, बिजली या अग्नि के प्रकाश की किरणें जब किसी वस्तु पर पड़ती हैं तो उसे चमका देती हैं । ये किरणें सीधी रेखा से वस्तुओं पर पड़ती वस्तु पर से विम्बित् किरणें (Reflected नेत्रों में पैठ जाती हैं । पुतलियों के भीतर आँख जो कि बंद बक्स सी है उसके पिछले लगे हुए परदे पर इन विम्बित् किरणों के इकट्ठे हो जाने से चित्र बन जाता है । उ पर के चित्र को बोधतन्तु अर्थात् बहुत महीं नसें मस्तिष्क (Brain) तक पहुँचा दे तब चित्र का बोध अर्थात् दिखाई देती हुई स्वरूप का ज्ञान होता है । यह सब काम इत समय में होता है—(और नेत्र के खुले र बराबर हो रहा है) कि हम लोग उसको विचार द्वारा ही समझ सकते हैं । यह चित्र के रूप अर्थात् वर्ण वा रंग का ही प्रतिविम्ब है, और यह वर्ण प्रकाश वा उजियाले ही से होता है और इसीलिए अँधेरे में नहीं दीखता । व के रूप देख पड़ने के साथही उनके धरातल देख पड़ते हुए ऊपरी भाग की सीमा या ह बोध होने लगता है । दिखाई देते हुए इस वस्त एक धरातल जहाँ दूसरे से जा मिलता है सीमा वा हद बनाता है, जिसे रेखा कहते हैं । जब रूप रेखा को देख लेती है तब स्पर्शेन्द्रिय हाथ आदि कर्मेन्द्रिय उसे छूकर परिमाण का भव करते हैं । उस समय यह ज्ञान होता है

आधार या स्थान पर रक्खी हुई है और लम्बाई, चौड़ाई और मोटाई भी है तथा व रंग भी है।

और यह कि जिन वस्तुओं के बाहरी दृश्य या देख पड़ते हों, उन के हृदय को स्वरूप है।

इन स्वरूप को समझने की शक्ति और समझ मूर्ति में धारण करने की शक्ति और याद इस स्वरूप को किसी भी पार्थिव वस्तु के सहारे बनाकर ठीक २ प्रकाश कर देने की शक्ति जब शिक्षा ही से पुष्ट की जायगी, और यही शिक्षा की विधि शिक्षार्थी के वयसानुसार दी जाती जायगी, तभी यह आशा की कि यह शिक्षार्थी अपनी शिक्षा की पूर्ति क्षेत्र में उतर कर प्रकृति की लीला माधुरी सब और रूपों से समाज को आनन्द का बनाने में अपने को समर्थ पावेगा—और द्वारा अपनी मानसिक, आर्थिक और नैतिक करने में भी समर्थ होगा। सच तो यह है प्राकृतिक वस्तुओं का ठीक ठीक निरीक्षण, का ठीक २ बोध और उन वस्तुओं का पुनः करके उनको प्रकाशित करते हुए आगे को वाला पुरुष प्रकृति के महाकाव्य का मर्मज्ञ, और ब्रह्माण्ड के विज्ञान का गम्भीर ज्ञाता है। स्वरूपकार प्रकृति के छिपे हुए महा- के स्थूल वस्तु द्वारा जगत् के सम्मुख, जिस से उपस्थित कर सकता है, प्राकृतिक की प्रबल तरङ्गों को अपने बनाए हुए रेखा या रंग चित्र और प्रतिमा स्वरूप या मिट्टी, पत्थर, धातु आदि से बने स्वरूप द्वारा पटुता के साथ प्रकट कर सकता है ही गम्भीरता के साथ उसके शब्द-हीन वक्तव्य का, उसकी लिपि रहित ललित कविता का समाज पर पड़ता हुआ सामाजिक, मानसिक रुचि और स्वास्थ्य को बढ़ा सकता है।

रेखा द्वारा, रंग द्वारा, या धातु मिट्टी पत्थर आदि पार्थिव वस्तुओं द्वारा बिना शब्द कहे, बिना लिपि लिखे, मनोभाव को प्रकट करने की यह जो बड़ी शक्ति है इसकी पूर्ण पुष्टि शिक्षा द्वारा ही हो सकती है। इँगलिस्तान, जर्मनी, अमेरिका, जापान आदि में साहित्य, अंक या गणित, भूगोल आदि के लिए पाठों के साथ ही साथ यह स्वरूप शिक्षा इस निपुणता से दी जाती है कि छोटे बालक और बालिका भी प्राकृतिक वस्तुओं को एक ही बार देख कर रेखा या रंग द्वारा अति सुहावने चित्र बनाते हैं जिनका संक्षेप वर्णन यों है:—आकाश में उड़ती हुई चिड़ियें, पहाड़ तली के निर्मल सोतों में लाल सुनहरी रुपहरी आदि प्राकृतिक रंगों से भूषित आनन्द की कलोल से बहती हुई मछलियाँ, हरे हरे खेतों में उत्साह भरे खेलते हुए और भागते हुए खरगोश, संध्या-काल की रक्तिमा-रंजित लाल मेघमाला से गुलाबी छायायुत जल-पूर्ण सरोवरों में हँसते हुए और छोटे छोटे तरङ्गों के आघात से काँपते हुए पानी के फूल, पवन के झकोरे से गिरे हुए पत्तों से लपट कर झुक झुक कर अपूर्व भाव दिखाने वाली उस सरोवर के तट पर की घासों के गुच्छों के दृश्य, इत्यादि।

जिनके वर्णन मात्र में रोचकता है, भाव सहित उनके सत्य स्वरूप को जो शिशु बनाने का सामर्थ्य लाभ करते हैं उनकी दृष्टि शक्ति, बोध शक्ति, गठन के साथ मनोभाव को प्रकाश करने की शक्ति, प्रकृति के विशाल भंडार में सुमार्जित रुचि के साथ मनोहर भावों को प्रकाश करने वाले विषयों को चुन लेने का सामर्थ्य प्रारम्भिक शिक्षा ही से कितनी दृढ़ता के सहित पुष्टि पाता है यह विचारवान पुरुष स्वयं ही समझ सकते हैं।

यही स्वरूप शिक्षा की क्रमोन्नति की धारा बच-पन से जब जारी रहती है तो स्वरूप कार्य के रचना की योग्यता का कुछ अंश छात्रता के [illegible] शिक्षार्थी में अवश्य ही आ जाता है। [illegible]

के आने पर, उपयोगी सामग्रियों के मिलने पर, ऐसा शिक्षित व्यक्ति प्रकृति के रूप-रंग-मय गूढ़स्वरूप रत्नों को समाज में प्रकाशित करने का सुअवसर पाही जाता है।

प्रिय हिन्दी प्रेमी सज्जन गण! क्या विनय सहित मैं यह पूछ सकता हूँ कि भारतवर्ष की राष्ट्र-भाषा बनने वाली हिन्दी-भाषा में ऐसी पुस्तकों का उचित आदर होना उचित नहीं है? यदि है तो इसके प्रचार में शिल्पकुशल निपुण लोग और शिल्प रसिक साधारण लोग मिल कर सहायता क्यों नहीं करते? जगत् की सभ्य जातियाँ सामाजिक जीवन की उन्नति की चेष्टा में शिक्षा परिपाटी में सुधार कर रही हैं। अब भारत में भी इसकी खबर लेनी चाहिये। भारत की भविष्य उन्नति के आशा-स्थल शिशुओं की शिक्षा परिपाटी में इस स्वरूप शिक्षा रूपी एक प्रधान अंग को जीवनरहित निश्चेष्ट जड़वत् न छोड़ कर विचार और उद्यम और उत्साह की धारा से संजीवित कर देना प्रारम्भिक शिक्षा-सुधारकों का अवश्य कर्तव्य है।

जातीय जीवन का सुधार, और समाज में शारीरिक, नैतिक और आर्थिक दशा की उन्नति व्यक्तिगत शिक्षा की योग्यता पर निर्भर है। व्यक्तिगत शिक्षा भी जब तक प्रारम्भिक शिक्षा ही से उचित मार्ग में परिचालित न हो तब तक पूर्ण सफलता को प्राप्त नहीं होती। उपयोगी पुस्तकों के पठन पाठन से साहित्य-विषयक ज्ञान तो होता है परन्तु वह ज्ञान यदि बच्चों को शिक्षा कह के न दिया जाय वरन् इस ढंग से दिया जाय कि वह बड़े ही आनंद का और उत्साह का खेल प्रतीत हो, तो इस प्रकार की शिक्षा से स्थायी परिणाम की आशा की जा सकती है।

पाश्चात्य विद्वानों ने 'किंडरगार्टन' आदि अनेक रीतियों की शिक्षा-प्रणाली प्रचलित की है जिससे व्यक्ति-गत कार्य-कुशलता और चरित्र-गठन में बड़ी सहायता मिलती है। पाश्चात्य देशों में प्राथमिक और प्रारम्भिक अवस्था ही से शिक्षा ऐसे ढंग से दी जाती है मानो झरने से नदी, नदी से महा प्रवाह और महाप्रवाह से सहस्र धारा का मुहा[illegible] जाता है, जिसका अंतिम फल यह है कि अ[illegible] जर्मनी, अमेरिका, जापान आदि सभ्य जा[illegible] साय, शिल्प और विज्ञान की चेष्टाओं में प[illegible] से आगे बढ़ जाने की स्पर्धा कर रहे हैं। [illegible] में शिक्षा की प्रणाली बचपन से युवावस्था त[illegible] रीति से परिचालित होती है कि छात्रावस्था [illegible] रान्त कार्य-क्षेत्र में उपस्थित होते ही व्य[illegible] योग्यता के अनुसार देश और समाज में व[illegible] उपयोगी सामग्रियों का कुशलतापूर्वक ग्रह[illegible] व्यवहार करते हुए शिक्षित पुरुष अपनी और [illegible] की उन्नति करने में अपने को समर्थ पात[illegible] कच्ची नीव पर बनी हुई इमारत चाहे कैसी ही [illegible] सूरत नगीने से जड़ी हुई पच्चीकारी और नक़[illegible] से शोभित क्यों न हो, उसके शीघ्र ही थोड़े दि[illegible] टूट कर गिर जाने और बेकाम होने में सन्देह [illegible] रहता। भारतीय वर्त्तमान शिक्षा-प्रणाली में [illegible] दोष का विचार करना यहाँ मेरा उद्देश्य नह[illegible] और हिन्दी-भाषा जिसे भारत भर की राष्ट्र-भ[illegible] बनाने की चेष्टा हो रही है, उसमें प्रारम्भि[illegible] शिक्षा की उपयोगी पुस्तकें और पाठ-विधि[illegible] प्रकाशित हैं या नहीं, इसका विचार दूसरे यो[illegible] विद्वान् करेंगे। मेरा यहाँ पर यही वक्तव्य [illegible] कि हिन्दी भाषा में नये ढङ्ग से खेल के साथ साथ शिक्षा देने-वाली पुस्तकों के अधिक प्रच[illegible] और व्यवहार से प्रारम्भ में प्रत्येक शिशु की शि[illegible] और योग्यता की उन्नति करने में अत्यन्त सहाय[illegible] होगी।

वर्त्तमान हिन्दी की पुस्तकों में एक विषय [illegible] बहुत ही शोचनीय अभाव है। वह विषय वैज्ञानि[illegible] शिल्प शिक्षा है। और शिल्प-शिक्षा के प्रथम आधा[illegible] स्वरूप शिक्षा के उचित प्रबन्ध का तो कहीं नाम निशान भी नहीं है। कुछ टूटी फूटी थोड़ी सी चित्र[illegible] कारी के अंग अर्थात् ड्राइंग की चर्चा इस देश की सरकारी पाठशालाओं में है सही, परन्तु स्वरूप क्या वस्तु है, उसकी क्या उपयोगिता है, उसके बोध से[illegible]

मानव जीवन के कर्त्तव्य कर्मों में कहाँ । मिल सकती है. ज्ञान, बोध, क्रिया- ौर मानसिक भावों को प्रकाश करने की कहाँ तक पुष्ट हो सकती हैं. उसके विवरण होने का अवसर सर्व साधारण को अभी तक अच्छी तरह नहीं मिलता। इसी शिक्षा के संबन्ध में कुछ थोड़े से संक्षेप आज मैं उपस्थित करता हूँ।

ुष्य एक दूसरे के साथ बर्ताव में और अपने ैक जीवन के सब विभागों में मन के भावों ारों पर प्रकट करते हुए कार्यों की पूर्ति ासे जीवन-निर्वाह करते हैं। जो समाज ही उन्नत होता है उसमें उतनीही बुद्धिमत्ता ाभाव प्रकट करने की विधियाँ अधिकता से ै। वाक्य द्वारा, संकेत द्वारा, रेखा चिह्न और ाणी द्वारा तो मनोभाव दूसरों पर प्रकट जाते हैं, परन्तु स्वरूपों के बोध से और ुन: गठित करके दिखाने की शक्ति से सभ्यता ा जिस परिमाण से बढ़ जाती है, वह प्राचीन ं ग्रीस, राम आदि की प्राचीन काल की ठन और चित्रकारी आदि शिल्पकला से ै। वाक्यों से पद, पदों से सुन्दर प्रबन्ध ्धों से गम्भीर पुस्तकें बनती हैं, और नव ललित काव्य और काव्यों में महा काव्य महा के जातीय उत्साह-विकाश के ऐसे स्थायी ान जाते हैं कि सर्वहर काल का कठोर कर- सहज में उन्हें मिटाने में समर्थ नहीं होता। साधारण स्वरूपों के बोध से प्रकृति के ुकरण रूपी ललित शिल्पों की उत्पत्ति होती उन ललित शिल्पों से भुवन प्रसिद्ध वस्तुएं नने लगती हैं जब जातीय जीवन आदर्श ार उच्च महाभावों के प्रति धावित होता है। ण और महाभारत भारत के ही नहीं वरन ् के जैसे अमूल्य महाकाव्य हैं, प्राचीन माज के उदार और महिमान्वित जीवन के ऐसेही इलोरा और अजंटा की गिरिगुहा की पाषाणमयी ललित कविता उस समय के भारतीय समाज के उत्साह. पुरुषार्थ और उन्नत धर्ममय जीवन की प्रदर्शक है। कालचक्र के परिवर्त्तन से स्वरूप-शिक्षा से उत्पन्न महाकाव्यों को बनाना यद्यपि भारतवासी भूल गये हैं, तथापि अन्य सभ्य देशों को देख कर उन्हें इस ओर फिर से उत्साह बढ़ा कर अपनी मान- सिक, सामाजिक और नैतिक संस्था के अनुसार शुचि भाव, लालित्य, कोमल रुचि, और उन्नत जीवन बढ़ाने की चेष्टा करनी चाहिये जिससे कि भारतीय महाभावों की विजय वैजयन्ती, जो कि काल के तूफ़ानों से अब तक गिरी हुई थी फिर से फहराती हुई जगत पर अपने महत्त्व को प्रकाशित कर दे।

भगवत् भक्तजन, रसिक कविजन, तत्त्ववेत्ता दार्शनिक जन, गम्भीर विचारशील—वैज्ञानिक जन जैसे साधारण से साधारण वस्तु को ले कर असीम आश्चर्य-पूर्ण दृश्यमान ब्रह्मांड के रचने वाले की बनाई हुई वस्तुओं का यथार्थ तत्व मधुरता सर- सता और गम्भीरता के साथ प्रकट करने में समर्थ होते हैं वैसेही स्वरूपकार दृश्यमान वस्तुओं के अवयव के बोधरूपी सामान्य आरम्भ से चल कर जीवन के व्यवहारयोग्य वस्तुओं को और प्राकृतिक सौन्दर्य को पुनः गठन करने की शक्ति जब पा जाता है तब वह भी कवि की भांति विश्व की सुन्दर वस्तुओं को चुन चुन कर अपने मित्रों के और अपने समाज के चारों ओर स्वरूपों द्वारा माधुरी मयी प्राकृतिक सृष्टि की सजावट से अलौकिक मूक कविता की छटा का चमत्कार प्रकाशित करने को प्रवृत्त होता है।

हम कह चुके हैं कि अक्षरों से शब्द, शब्दों से पद, पदों से महाकाव्य आदि ग्रंथ बनते हैं, ऐसेही स्वरूप शिक्षा में भी क्रम विकासशैली ही से उन्नति हो सकती है।

संक्षेप में एक नियमसूची (करिक्युलम) मैं पेश करता हूँ। विचारशील सज्जनगण यदि इसे योग्य पावें तो प्रार्थना है कि सर्वत्र प्रारम्भिक शिक्षा में इसका उपयोग करके कैसी सफलता लाभ होती

है उसका अनुभव कर लें। बच्चों के जाने हुए सहज स्वरूपों का रेखागणित के सहज स्वरूपों के घन पिंडों के साथ मिलान करते हुए परिचित फल आदि के स्वरूपों को पहिले मिट्टी में बनवाना उचित है। इन फलों को बालक सहज में बना सकते हैं, क्योंकि प्रायः इनके स्वरूप गोल, अंडाकार आदि सहज में समझ में आने के लायक़ रेखागणित के घन पिंड के साथ मिलते जुलते हुआ करते हैं। स्थूल-फल से स्थूल मिट्टी का नमूना बनाना खेल का खेल और शिक्षा की शिक्षा है। उस फल से चौरस धरातल—जैसे श्यामपट्ट—पर सादे और रंगीन खरिये से रेखा और चित्र बनवाना, और इस चौरस चित्र में और मिट्टी के ठोस स्वरूप में क्या और कैसे फ़र्क़ पड़ा सो समझाना; फिर चौरस काग़ज़ पर पेंसिल, तूली, रंग, मुलायम कोयले आदि वस्तुओं द्वारा उसी स्वरूप को बनवाना, और अन्त में उसी फल को बिना देखे हुए बनवाना, इन अभ्यासों द्वारा बच्चों में देखे हुए फलों को अपने मन से प्रकाशित करने की शक्ति आ जावेगी। इसी भांति अनेकों प्रकार की प्राकृतिक पत्तियाँ और फूल, उसके बाद सहज साध्य मछलियाँ, तितली, भौंरे, आदि कीड़े, और तोते मैने आदि चिड़ियों का अभ्यास कराना चाहिये। अन्त में बच्चों से किसी दूसरे अवसर पर स्वयं देखे हुए किसी चीज़ वा योग्यतानुसार किसी जीव, जानवर का स्वरूप बनवाना चाहिये। इसी प्रकार सहज से कठिन विषय की ओर बढ़ते हुए प्रारम्भिक शिक्षा ही में यह उपयोगिता पैदा कर देनी चाहिये कि माध्यमिक शिक्षा के आरम्भ में शिक्षार्थी अपने को कठिन[...] के व्यक्त करने में समर्थ पावें। माध्यमिक [...] यदि क्रमोन्नति की ओर दृष्टि रक्खेगी तो हमारी यह आशा कि भारत की भविष्य शि[...] अपर सभ्यदेशों के शिक्षितों के समकक्ष [...] सर्व कल्याणकारी परमात्मा के प्रसाद से [...] में अवश्य पूर्ण हो जायगी।

स्वरूप शिक्षा की उपयोगिता ही पर मुझे [...] थोड़ा सा कहना था, स्वरूप-शिक्षा किस [...] से होनी चाहिये, इसका विस्तारित विव[...] हिन्दी-प्रेमी जन मुझे कृपा कर आज्ञा क[...] क्रमशः लेख-माला द्वारा प्रकाशित कर[...] सहृदय जनों की भेंट करूँगा।

अभी तक हिन्दीभाषा में इस विषय [...] पुस्तक नहीं थी। इस लिए गोरखपुर नागरीप्र[...] सभा के अनुरोध से मैंने एक संक्षिप्त पुस्तक "[...] शिक्षा" के विषय पर लिखी है। जो स्व[...] सज्जन प्रारम्भिक शिक्षा में स्वरूप शिक्षा की [...] के विषय में कुछ जानना चाहते हों वे इस [...] से बहुत कुछ लाभ उठा सकते हैं। यदि [...] शिक्षा के विषय पर प्रकाशित होने वाले मेरे [...] को योग्य पाकर सज्जन इनका उचित आदर [...] तो हिन्दी के शिल्पभंडार में स्वरूप-विषयक [...] रूपी पत्र पुष्प समर्पण करने का मैं साहस [...] रहूँगा। विद्वज्जनों से प्रार्थना है कि वे इस [...] विषय के गुरुत्व और महत्त्व की ओर ध्या[...] मेरी त्रुटियों को और मेरे साहस को क्षमा करें

———

व्याकरण ।

हिन्दी-व्याकरण।

—:०:—

[लेखक—पण्डित अनन्तराम त्रिपाठी]

—:०:—

चाहे जिन महानुभावों की जो इच्छा हो परन्तु इस अनुग्रहीत की प्रार्थना तो यही है कि जो व्याकरण हिन्दी में हैं उनके होते अब और व्याकरण की कोई आवश्यकता नहीं है।

भाषा कोई हो व्याकरण से केवल इतना ही काम होना है कि उसका शुद्ध शुद्ध व्यवहार एक श्रेणी में बंध जाय। आज तक जो हिन्दी व्याकरण के ग्रन्थ भारत वर्ष में उपस्थित हैं भाषा-भास्कर, भाषाचन्द्रोदय, भाषाचन्द्रिका, भाषा-प्रभाकर आदि, क्या इन ग्रन्थों के रचयिताओं ने अपने अपने ग्रन्थ की रचना इस बुद्धि से नहीं की कि अब और इस व्याकरण से समस्त भाषा का एक नियम हो जाय और अब किसी दूसरे को व्याकरण की रचना का श्रम न उठाना पड़े? अवश्य यही विचार सब का रहा होगा, परन्तु भाषाओं के प्रचार की प्रणाली तो कुछ और ही है।

इस प्रचार की विलक्षणता तभी जानी जा सकती है जब इस बात के निर्णय पर ध्यान दिया जाय कि, पहले भाषा है अथवा व्याकरण। व्याकरण के अनुसार भाषा बोली जाती है, वा भाषा के ढंग पर व्याकरण तैयार किया जाता है?

अर्थात् व्याकरण के अधीन भाषा है वा भाषा के अधीन व्याकरण है?

यहां बीज और फल जैसा न्याय नहीं है, न दुःख सुख जैसा विवाद है, न कर्म और संसार जैसा गूढ़ विचार है कि उसकी उत्पत्ति उसके बिना नहीं, उसकी उसके बिना नहीं। इसमें निर्विवाद यही स्पष्ट होना है कि भाषा के अधीन व्याकरण है। इस सृष्टि में जो जो व्याकरण बने हैं सब भाषा के अनुसार ही बने हैं।

किसी भाषा का व्याकरण हो, भाषा के अधीन होने के कारण उसकी तैयारी होने में थोड़ा समय नही लगता, क़ानून की पुस्तक-रचना के समान इसके बनाने में भी बहुत समय, बहुत विचार, बहुत से आचार्यों का समारोह एकत्र करना होता है। इतने पर भी जब तक वह व्याकरण तैयार ही होता है तब तक तो भाषा के परिवर्त्तन का समय आजाता है? बालक और ग्रामीण और स्त्री इन तीनों की बोली कभी व्याकरण के क़ानून को डरती ही नहीं और संसार में अधिक व्यवहार इन्हीं की भाषा से है। इनके बोल चाल में जब देखिये तब अशुद्धि रहती है। प्रायः जितने नाटक देखने में आये हैं क्या संस्कृत क्या हिन्दी के उनमें बालक और स्त्रियों की भाषा कुछ निराली ही लिखी है। इन सब की बोली एक तार में बांधी नहीं जा सकती। शब्द और अर्थ के साथ सदा अभेद सम्बन्ध रहता ही है। अतएव उनकी उस भाषा को इनके निकटवर्ती शीघ्र सीख लेते हैं और वही भाषा फिर बोल चाल में आजाती है। रजस्टरी, मनीआर्डर, पोस्टकार्ड, चिट्ठी आदि शब्द कैसे प्रचलित हुए हैं और उन्हें कौन नहीं बोलता? कहिये ये शब्द कौन व्याकरण से सिद्ध होते हैं। अर्थात् ये शब्द सहसा हमारी मातृभाषा में आगये और अब बोलचाल के व्यवहार से पृथक् भी नहीं हो सकते। इससे यह बात स्पष्ट होती है जो शब्द अधिक बोलने में आते हैं वे चाहे शुद्ध हों चाहे अशुद्ध

चाहे संस्कृत हों चाहे अंग्रेज़ी, अरबी, फ़ारसी आदि किसी भाषा के हों जैसे के तैसे प्रचलित हो जाते हैं।

स्त्रियों के पढ़ाने से स्त्रियां और बालक शुद्ध बोलचाल करने लगें आज कल यह विचार जिन जिन महानुभावों का है बहुत ही उत्तम है; परन्तु उसकी सफलता में थोड़ा समय नहीं लगेगा। यह विचार कि अमुक भाषा की इयत्ता इतनी ही है, अतएव इसका व्याकरण इतना ही ठीक है, नितान्त संभ्रम है। क्योंकि उन बालक, स्त्री, ग्रामीणों की भाषा का असर जल्दी जल्दी पड़ने से एक प्राकृत भाषा प्रकट होती ही रहती है।

एक भाषा का प्रचार चला और फिर किसी ने व्याकरण रचना की, जब तक वह रचा गया, सभ्यजनों ने उसे जब तक स्वीकृत किया, तब तक बोल चाल में फिर कुछ और हो गया। इसीसे व्याकरण के बड़े बड़े आचार्यों ने अपने बनाये हुए व्याकरण में थक करके यह लिख दिया है कि जो व्याकरण से सिद्ध न हो उसे निपात से सिद्ध समझना। जैसे 'उणादि' 'सिद्धान्तकौमुदी' (संस्कृत व्याकरण) का एक प्रकरण है। जब संस्कृत के शब्द साधते २ [illegible] ही कहना [illegible] हैं, अर्थात् जो शब्द इस व्याकरण क्रम से न सधें उन्हें उक्त सूत्र से ही साध लेना। एक समय किसी वैयाकरण से किसी ने कहा कि "मुलक मियां मुलना" इनको साधो, तो उसने तुरन्त उत्तर दिया कि "तद्धित से कुछ प्रत्यय आये डुलक डियां डुलना, मा धातु से साध लिया है मुलक मियां मुलना"

अतएव यह बात स्पष्ट प्रकट होती है कि व्याकरण चाहे जितना विशाल बने परन्तु भाषा का पूरा पूरा समाधान उसमें नहीं हो सकता। आज कल के उपस्थित हिन्दी-व्याकरणों में जो कमी हम समझते हैं उन्हें पूर्ण करने को हम सब कुशाग्रबुद्धि हो कर बैठें तो भी हमारे पश्चात् के विद्वानों के लिये त्रुटियां स्थान बना ही रहेगा।

अतएव मैं अपने इस तुच्छ विचार से य[illegible] दन करता हूं कि जो हिन्दी-व्याकरण आज[illegible] गये हैं इन्हों में से कतिपय विद्वान् एकत्र होक[illegible] दो प्रतियों को उत्तम ठहरावें, पहिली एक [illegible] सामान्य बोध के लिये और दूसरी विशेष [illegible] लिये।

एक प्रस्ताव हिन्दी-व्याकरण के विषय [illegible] और है—कि व्याकरण पद्यमय होजाय। हि[illegible] व्याकरण जितने देखने में आते हैं सभी [illegible] हैं। गद्य की उपस्थिति नहीं रहती जितनी पद्य[illegible] और आज हमारे देश के आचार, विचार, [illegible] धर्म के ग्रन्थ सब पद्य में ही हैं इसी से प्रायः क[illegible] भी हैं। शिल्पशास्त्र हमारे देश में ऐसा अपूर्व [illegible]

[illegible] से समस्त भारत निरुद्यम हो रहा है।

केवल व्याकरण ही क्या जितने विषय भारत[illegible] वर्त्तमान समय की भाषा के उन्नति के कारण[illegible] अपने सामाजिक सुधार के उपयोगी हों, सभी प[illegible]त्मक हो जांय तो अच्छा; और वे विशेष कर[illegible] पद्यों में हों जो सर्वसाधारण स्त्री-पुरुषों के गीत[illegible] बोल चाल में उपयोगी हो सकें। एक नीति-विषय[illegible] "ठहरो" नाम की पुस्तक वेङ्कटेश्वर समाचार प[illegible] के उपहार में उपलब्ध हुई थी। परन्तु गद्यम[illegible] होने के कारण कण्ठस्थ नहीं रही, और रहीम के दो[illegible] बाबा दीनदयालगिरि तथा गिरधर की कुण्डलिय[illegible] प्रायः बहुत से महाशयों को उपस्थित हैं।

इससे नायिका भेद, अलङ्कार, करुणा, शान्तरस के वर्णन की रुचिवालों से विनय है कि उक्त विषयों पर अब ग्रन्थों के रचने की कोई आवश्यकता नहीं है। जिन जिन बातों से हमारी भाषा की उन्नति हो उनकी ओर भी ध्यान दीजिये; उनमें एक विषय व्याकरण भी है, इसको अवश्य पद्यमय होना

कदाचित् व्याकरण पद्यमय हो गया
भाषा में जो परिवर्त्तन हो जाता है नहीं
विद्या का संचार स्त्री-पुरुषों में यह हो
के साथ साथ व्याकरण के पद्य भी
होंगे, भाषा का शुद्ध शुद्ध व्यवहार भी
।

यदि कोई महाशय यह प्रश्न करें कि व्याक-
मय कहीं है भी, तो विनयपूर्वक निवेदन है
का व्याकरण गद्यमय होने के सिवाय
भी है।

वर्ण विषयक पद्य ।

स्वरा ज्ञेया अचश्चापि तु ते मताः ।
स्वरा ज्ञेयाः स्वरापेक्षा हलः स्मृताः ॥
कचटतपावर्गाः स्पर्शाः पञ्चभिरक्षरैः ।
॥
[illegible]
इत्यादि ।

कर्मवाच्य ।

प्रधानता स्थाने कर्त्तुः संख्यातिङासमाः ।
प्रधानतायां च कर्म संख्यापि तत्समाः ॥
कर्त्तरि प्रथमा स्यादनुक्ते तृतीया भवेत् ।
इत्यादि ।

कारक ।

कर्म च करणं च सम्प्रदानं तथैव च ।
दानाधिकरणमित्याहुः कारकाणि षट् ॥

(अन्वय)

कर्त्तृ पदं वाच्यं द्वितीयादिपदं ततः ।
मुनस्यपञ्च मध्येतु कुर्य्यादन्ते क्रियापदं ॥
पदं पुरस्कृत्य; इत्यादि ।
तु विषयों पर भी अनेक पद्य हैं ।
हाल में भी किसी महाशय ने 'सुपद्यकौमुदी'
एक व्याकरण का ग्रन्थ रचा था जो अब
लता है ।

जो महाशय इस प्रस्ताव पर हैं कि नहीं व्याक-
रण की और नई रचना हो और वह समस्त हिन्दी-
भाषा के लिये उपयोगिनी हो, उन सहयोगी श्रीमानों
से सविनय निवेदन है कि संस्कृत-व्याकरण को भी जो
सर्व शब्दशास्त्रों में चढ़ा बढ़ा है धर्मग्रन्थ (वेदादि),
काव्यग्रन्थ (हनुमन्नाटकादि), इतिहास ग्रन्थ
(वाल्मीकि आदि), के सम्बन्ध में उलट पलट हो जाना
पड़ता है। वेदविषय में 'पकार' को कवर्गी 'ख' 'यकार'
को 'ज' बोलने के लिये प्रत्यक्ष नियम है। इसी प्रकार
और भी नियम "तद्वेदे बहुलं भवेत्" में लाये गये हैं।
नाटकादि में 'यूयं वद' इत्यादि को 'प्रमाद पवाय-
मित्यादि,' इतिहास में 'प्रदीयता दाशरथाय मैथिली'
के लिये 'आर्षप्रयोग' की उक्ति रक्खी गई है।

और भी ।

रलयो डलयोश्चैव सखयोर्वबयोस्तथा ।
मिथस्तेषां च सावर्ण्यमलङ्कारविदो विदुः ॥
पादादैाच पदादैाच संयोगावग्रहेपु च ।
जकार इति विज्ञेयोह्यन्यत्र य इति स्मृतः ॥

इसी प्रकार हिन्दीसाहित्य में धर्म, काव्य, इति-
हास के ग्रन्थों की न्यूनता नहीं है। परन्तु उनका
पूर्णावलोकन व्याकरण की बुद्धि से न हुआ है न
होना ही है।

जिस प्रकार संस्कृत के व्याकरण पढ़ने में परि-
श्रम किया जाता है उस प्रकार हिन्दी के व्याकरण
में कोई परिश्रम नहीं करता। जब तक भाषा का
रस नहीं मालूम होता तभी तक चाहे जितना श्रम
व्याकरण में उठा लिया जाय; और जहां नाना सर-
सोक्तियों का स्वाद मिला तहां तो यही कह आता
है कि

'पठन्तु कतिचिद्दटात्वपकछठेतिवर्णच्छटान्
घटः पटइतीतरे पटुरटन्तु वाक्पाटवात् ।
वयंकलमघुरी गलद्दलीनमार्द्वीभरी ।
धुरीणपदरीतिभिर्भणतिभिः प्रमोदामहे ॥'

और है भी ऐसा ही। व्याकरण और काव्य में
बड़ा अन्तर है। कालिदास और वररुचि का वृत्तान्त

प्रकट ही है। बङ्गाल का 'मुग्धबोध' कितना छोटा है। वे लोग कभी पाणनीय 'द्वादश सहस्र' में अपना अर्द्धायु नहीं नष्ट करते। थोड़ासा 'भवति' 'पचति' का ज्ञान किया और शास्त्रों की ओर चल गये। इसके विपरीत वाराणसीस्थ पण्डित 'कौमुदी' 'मनोरमा' 'शेखर' 'भाष्य' में ही पूर्णावस्था व्यतीत कर देते हैं और अन्य शास्त्रों से विमुख रहते हैं। ग्रन्थचुम्बन की बात अलग है परन्तु इसमें संदेह नहीं है कि उनका जितना श्रम व्याकरण में होता है उतना औरों में नहीं। शुद्ध बोलने भर के लिये व्याकरण पढ़ना होता है। किसी ने कहा भी है कि:—"यद्यपि बहु नाधीषे तथापि पठ पुत्र व्याकरणम्। स्वजनः श्वजनो मा भूत्सकलं शकलं सकृच्छकृत्" ॥

यह भी मैं अच्छे प्रकार से जानता हूँ कि जिस भाषा का शुद्ध शुद्ध लिखना पढ़ना सीखना हो उसके व्याकरण के सर्व विषय, वर्ण, उच्चारण स्त्रीलिङ्ग, पुँलिङ्ग, कारक, सर्वनाम धातु, समास, कृदन्त सब प्रकार से देखे जायँ। विन रीति से देखे शुद्ध व्यवहार भाषा का सकता। परन्तु आज तक जो ग्रन्थ व्या उपस्थित हैं उनमें भले प्रकार से विचारा कुछ कमी नहीं है ? 'हिन्दीबालबोध' व्याक पंडित माधवप्रसाद काशीस्थ राजकीय प्रधा शालाध्यक्ष ने सुरचित किया है बहुत अ और भी जो हैं, वे क्या कम हैं ?

यदि कोई महाशय व्याकरण को पद्य-र करने का साहस कर जायं, तो यू० पी० सी० पी० में उसका प्रचार बड़ी जल्दी हो और बहुत काल तक भाषा की प्रणाली के सूत्र में बांधे रहेगा और आप भी चिर का नष्ट नहीं होगा।

हिन्दी भाषा का व्याकरण।

—:o:—

[लेखक-गोस्वामी लक्ष्मणाचार्य्य]

—:o:—

संस्कृत में व्याकरण शब्द का अर्थ किया है 'व्याक्रियन्ते व्युत्पाद्यन्ते शब्दा अनेनेति व्याकरणम्' अर्थात् जिससे शब्द बनाये जायं उसको व्याकरण कहते हैं। वहां इस विषय पर भी बहुत विचार गया है कि शब्द नित्य हैं या अनित्य। इसमें है। कोई शब्दों को नित्य मानता है और अनित्य। तार्किक शब्दों को अनित्य मानते हैं, कहते हैं 'अनित्यः शब्दः कृतकत्वात् घटादि- अर्थात् शब्द अनित्य है, बनाया हुआ होने के घटादि की भांति। परन्तु और सब शास्त्र को नित्य मानते हैं। व्याकरण व्युत्पन्न और पक्ष मानता हुआ भी शब्दों की नित्यता र करता है। माधवाचार्य्य सिद्धान्तरत्नावली ते हैं "यदि व्याकरणं शब्दान्निष्पादयति तर्हि सिद्धं वा। नाद्यः स्वयमसिद्धं न साधयितु- म्। न द्वितीयः अन्योन्याश्रयापातात्। विना व्याकरणं न सिध्यति तत्सिद्धिं ना शब्दनिष्पत्तिर्न भवतीति।" भावार्थ इसका कि "जो व्याकरण शब्दों का निष्पादन करता वह स्वयं असिद्ध है या सिद्ध, यदि असिद्ध है दूसरे को क्या सिद्ध कर सकता है और सिद्ध इसको किसने सिद्ध किया) यहां 'अन्योन्याश्रय ता है, शब्दसिद्धि के विना व्याकरण सिद्ध नहीं होता, व्याकरण-सिद्धि के विना शब्द नहीं होती।" इस प्रकार का पूर्वपक्ष करके सिद्धान्त लिखते हैं "एवं तर्हि निष्पत्तिरिह व्युत्पत्ति- र्नतु निष्पादनमात्रम्" (इस दशा में निष्पत्ति का अर्थ व्युत्पत्ति मानना न कि निष्पादनमात्र) अर्थात् व्याकरण शब्दों का ज्ञान कराना है न कि बनाना है। इसीसे वैयाकरण प्रधानाचार्य्य भाष्यकार भगवान् पतञ्जलि मुनि 'सिद्धे शब्दार्थसम्बन्धे' (शब्द, अर्थ और इनका सम्बन्ध नित्य है) इस वार्त्तिक का प्रमाण देकर उत्तम रीति से सिद्ध कर चुके हैं कि शब्द नित्य हैं अर्थात् बने बनाये स्वतः सिद्ध हैं। ये नवीन नहीं बनाये जाते। ऐसी दशा में व्याकरण की आव- श्यकता ही क्या है? क्योंकि नवीन शब्द तो बनाने ही नहीं, और प्राचीन शब्द परम्परा से सबको विदित ही हैं फिर व्याकरण का क्या प्रयोजन? कोई कोई इस विषय को इस प्रकार कहते हैं—"जो शब्द जिस प्रकार नित्य बर्त्ताव में आरहे हैं वे यदि उसी प्रकार बर्त्ते जांय तो शुद्ध हैं अन्यथा अशुद्ध हैं, जैसा कोई पुरुष कहे 'मैं जाता हूँ' यह वाक्य शुद्ध है और यदि यह कहे कि 'मैं जाती हूँ' तो अशुद्ध है क्योंकि ऐसा बर्त्ताव नहीं है [illegible] सिद्ध हुआ कि नित्य बर्त्ताव (व्यवहार) ही [illegible] व्याकरण है, फिर पृथक् व्याकरण की क्या आवश्यकता है?" इसका उत्तर इस प्रकार है—[illegible] शब्द [illegible] और नित्य बर्त्ताव की [illegible] कारण ऐसे हैं जिनसे व्याकरण की बड़ी आवश्यकता है। संस्कृत में तो व्याकरण के [illegible] हैं पर हिन्दी के व्याकरण की आवश्यकता के विषय में लिखते हैं। [illegible]

क्रम यथोचित प्रयोग करना यह व्याकरण के विना असंभव है। फिर शब्दों का धातु प्रत्यय संधिसमास आदि का परिज्ञान भी व्याकरण के विना नहीं हो सकता। 'गणेश' शब्द का अर्थ भलेही कोई जानले पर गण ईश से गणेश कैसे बन गया यह व्याकरण के विना कोई कैसे जान सकता है। जिस नित्य वर्त्ताव के अंगीकार करके व्याकरण की अनावश्यकता सिद्ध की जाती है व्याकरण के विना उसी की पूरी दुर्दशा है क्योंकि यदि व्याकरण न हो तो क्षण क्षण में परिवर्त्तन होने लगे। उसको अनन्त काल तक स्थिर रखना यह व्याकरण का ही काम है। देखिये संस्कृत में व्याकरण है तो संस्कृत के सहस्रों वर्षों के बने हुए ग्रंथ आज भी वैसे ही हैं जैसे वे प्राचीन समय में थे। जिस प्रकार उस समय उनका अर्थ समझा जाता था उसी प्रकार का अर्थ अब भी समझा जाता है। पर हिन्दी में व्याकरण के न होने से यह बात नहीं है। सो दो सो वर्ष के बने हुए भी ग्रंथ अब अच्छी तरह सबकी समझ में नहीं आते। सो दो सो वर्ष क्यों तीस चालीस वर्ष पहिले की हिन्दी ग्रैार आज कल की हिन्दी में ही विचार कर देखा जाय तो बड़ा अन्तर पाया जायगा। इतने दूर जाने की क्या आवश्यकता है—वर्त्तमान समय में ही काशी, कलकत्ता, लखनऊ, आगरा, दिल्ली, मथुरा आदि नगरवासियों की हिन्दी आपस में एक से एक की नहीं मिलती, कोई किसी प्रकार लिखता है ग्रैार कोई किसी प्रकार। ग्रैार जिनकी मातृ-भाषा हिन्दी नहीं है उनका तो कहना ही क्या है। यह सब क्यों है? व्याकरण के न होने से। अभी हाल में 'शिक्षा' (ता० ३१ अगस्त) में लिखा है:—

"सुनते हैं कि उर्दू के मुहावरे दिल्ली ग्रैार लखनऊ में बनते थे। वेही उर्दू प्रेमियों के मान्य होते थे। आज कल कलकत्ते में हिन्दी के मुहावरे ही नहीं बनते प्रत्युत व्याकरण के नये २ नियम भी तैयार होते हैं। उदाहरण एक पत्र से लीजिए। 'मारवाड़ी जाति वैश्य हैं'। संस्कृत तथा हिन्दी व्याकरण का यह नियम है कि जिसमें जाति की विवक्षा की जाती है वह एक वचन होता है, यहाँ स्व[illegible] शब्द बहुवचन माना गया है। क्योंकि 'है[illegible] बहुवचन है। यहाँ व्याकरण की कैसी [illegible] हुई। 'भारत की अन्य समाजें' यहाँ 'समाज[illegible] को स्त्रीलिङ्ग लिखना उचित नहीं है, यह [illegible] अकारान्त होने के कारण पुंलिङ्ग है। हाँ एक बा[illegible] पड़ी। "हिन्दी सिद्धान्तप्रकाश" नामक पु[illegible] लिखा है कि वैष्णव तथा आर्य्यसमाजी 'समाज[illegible] को स्त्रीलिङ्ग लिखते हैं.................हिन्दी [illegible] चाहें तो सभी शब्दों को स्त्रीलिङ्ग बना दें। [illegible] हिन्दी की विशेष हानि नहीं होगी किन्तु जो [illegible] संस्कृत में पुंलिङ्ग अथवा नपुंसक हैं उन्हें स्त्री[illegible] बना देने से हिन्दी को राष्ट्र-भाषा बनाने की यो[illegible] नहीं प्राप्त होगी। क्योंकि बंगाली, गुजराती, [illegible] मरहट्ठे हिन्दी में प्रयुक्त संस्कृत शब्दों को उनके [illegible] व्याकरण के अनुसार जिस लिङ्ग का समझेंगे हि[illegible] रसिक उस में अड़चन डालेंगे। बेचारे घबड़ा[illegible] हिन्दी नहीं सीख सकेंगे।"

इसलिये हिन्दी भाषा के एक सर्वाङ्गपूर्ण उ[illegible] व्याकरण बनने की आज कल बड़ी आवश्यक[illegible] है। इसके विना हिन्दी-साहित्य उन्नत नहीं [illegible] सकता। संस्कृत में व्याकरण की प्रशंसा में कि[illegible] कवि ने कहा है। "यद्यपि बहु नाधीतं तथापि[illegible] पुत्र व्याकरणम्। स्वजनः श्वजनो माभूत्सकलं श[illegible] सकृच्छकृचापि॥" अर्थात् "हे पुत्र तैने बहुत प[illegible] है या बहुत नहीं पढ़ा है तो भी व्याकरण को [illegible] जिससे कि 'स्वजन' 'श्वजन' न हो जावे ग्रैार 'सक[illegible] 'शकल' तथा 'सकृत्' 'शकृत्' न हो जावे।"

हिन्दी-व्याकरण के लिये भी यह उदाहृत [illegible] सकता है। विना व्याकरण के शुद्ध उचित शब्द[illegible] च्चारण हो नहीं सकता। इसके अतिरिक्त एक म[illegible] अनर्थ यह हो रहा है कि जिनकी मातृ-भाषा हिन्द[illegible] नहीं है वे सज्जन उचित रीति से हिन्दी सीख न[illegible] सकते, बोल नहीं सकते ग्रैार लिख नहीं सकते। उन[illegible] पास इसके सीखने का कुछ उपाय भी नहीं है [illegible] इस प्रकार अनियमित रूप से सीखी हुई हिन्दी[illegible]

मेशुद्ध उच्चारित नहीं हो सकती। इससे की हानि होना संभव है, एक तो यह ही दशा रही तो एक दूसरी हिन्दी, बनकर तैयार हो जायगी। अभी तक खड़ी बोली, बैठी बोली, और दौड़ती ।फिर इसी प्रकार बंगाली हिन्दी, गुजराती हिन्दी, नैपाली हिन्दी आदि उत्पन्न हो जायगी और उन हिन्दियों हिन्दी को कुछ लाभ न होगा प्रत्युत । और यदि वे लोग व्याकरणादि मपत्ति न होने से हिन्दी को न अप गी हिन्दी को जो राष्ट्रभाषा बनाने का रहा है और जिसकी उत्कट आवश्यकता हानि पहुंचेगी। और वास्तव में तो है कि जिस भाषा में व्याकरण नहीं है ही कुछ नहीं है। सारी भाषा का, उसके का मूल ही व्याकरण है। 'मूलं नास्ति शाखा'।

यदि अब नये बने हुये व्याकरण का शीघ्रही न हो जायगा, हम सब लोग उसी के अनु- हमा लिखने बोलने न लग जायँगे पर इससे त न सही हमारी वंशावली तो उस एक ही को पढ़ कर आगे एकसी ही हिन्दी लिखेगी गी। अहा! इस बात का ध्यान आते ही कैसा अपार आनंद आता है कि वह दिन हावना होगा जिस दिन सारे भारतवर्ष में से दूसरे छोर तक एकही भाषा एकही एकही लिपि में लिखी और बोली जायगी। कार संस्कृत में पाणिनीय व्याकरण के ने से कोई कोई शब्द उपेक्षा की दृष्टि से हैं चाहे वे किसी दूसरे व्याकरण से हों उसी प्रकार सर्वाङ्गपूर्ण व्याकरण बन किसी दिन हिन्दी में भी यह बात हो जायगी न्द अमुक व्याकरण के विरुद्ध है इससे नहीं। यह कैसी सुन्दर व्यवस्था होगी। हिन्दी भाषा में व्याकरण न हो यह तो कोई कह नहीं सकता, क्योंकि इसमें कई व्याकरण हैं परंतु वे सब अपूर्ण हैं कुछ न कुछ न्यूनता उन सबों में है।

दूसरी त्रुटि एक और है जैसे संस्कृत में व्याकरण और कोष का पढ़ना सर्व प्रथम माना जाता है वैसा नियम हिन्दी में नहीं है। इसमें जो कुछ व्याकरण हैं भी वे अनिवार्य्य रूप से पढ़ाये नहीं जाते इससे बड़ी विशृंखला हो रही है। सम्मेलन को, इस पवित्र सम्मेलन को व्याकरण बनाने के विचार के साथ साथ उसके पठन पाठन के प्रचार का भी विचार करना होगा।

हिन्दी भाषा में जिन व्याकरणों की मुझे स्मृति है वे ये हैं:—

१—दीवान जानी विहारी लाल कृत भाषा-संस्कृत-व्याकरण
२—ऋजुपाठ
३—दामोदर शास्त्रि कृत... ..व्याकरण
४—पं० केशवराम भट्ट कृत हिन्दी भाषा का व्याकरण
५—व्याकरणसारसुधार्णव
६—व्याकरण-प्रवेशिका
७—भाषाभास्कर
८—भाषा-चन्द्रिका
९—अनुवाद-दीपिका

इनके अतिरिक्त बाबू माणिक्य चंद्र जैनी कृत 'हिन्दी-व्याकरण' बाबू गंगा प्रसाद कृत 'हिन्दी-व्याकरण', 'बाल-हिन्दी-व्याकरण' आदि और भी व्याकरण हैं।

इनमें १-२-९ तो संस्कृत से ही विशेष सम्बन्ध रखते हैं। पांचवां अभी समग्र मुद्रित नहीं हुआ है और उसके मुद्रित होने की आशा भी कम है, जितना उसका अंश मुद्रित हुआ है वह बहुत उत्तम है और इसी से अनुमान होता है कि उसका अवशिष्ट अधिकांश भी उत्तम होगा। हिन्दी हितैषियों से निवेदन है कि वे उसके मुद्रण कराने का उद्योग करें। विशेष कर नागरी-प्रचारिणी सभा काशी के मंत्री महोदय से अनुरोध है कि वे इस पर विचार करें।

में पूर्ण सहायता दें। उसकी प्रस्तावित सूची
से यह निश्चित होता है कि सभा का यह
बहुत ही समीचीन रीति से हुआ है। यह
कि उसमें कदाचित् कोई त्रुटि हो, तो आप
उचित है कि अपने सत्परामर्श द्वारा उसे दूर
और जहां तक हो सके उस सर्वाङ्ग सुंदर
के शीघ्र प्रकाशित होने का उद्योग करें। इ
व्याकरण हो जायगा और उधर काशी-नागरी
हिन्दी का कोश हो जायगा इन दोनों मूल
के हो जाने से, हिन्दी-भाषा भाषियों के सिर
प्रकार का कलङ्क लग रहा है वह दूर हो जाय
उनको अन्य भाषा-भाषियों के सम्मुख ऊँची दृ
का साहस हो जायगा तथा लोक का
भारी उपकार होगा।

हिन्दी का व्याकरण।

(लेखक—श्रीनिवासाचार्य्य शास्त्री)

किं स्तुमः शाब्दयादिनाम्।
ये चार्थान्निष्कर्षन्ति सहस्रशः ॥ १ ॥

यह बात तो सर्वथा निश्चित है कि कोई भी भाषा विना व्याकरण के 'व्याधि-करण' हो जाती है। "व्याकरण" शब्द अपने स्वरूप से ही अपनी ... पद करता है, जैसे दीपक पहिले स्वयं ... होकर पश्चात् अन्यान्य वस्तुओं को ... है। वि-आ-करण तीनों की सन्धि ... यह शब्द—'विशेष करके-सब ओर ... यह सिद्ध करता है। विना शब्दों के समूह ... होगा, वाक्यविन्यास के विना कोई प्रयोजन ... हो सकेगा। शब्दों की सिद्धि और वाक्य-पद्धति को दिखाने वाले शास्त्र ही का ... है। व्याकरणवेत्ता विद्वानों ने व्याक- ... इस प्रकार प्रशंसा की है।

... शब्द एव निबन्धनम्।
... शब्दानामस्ति व्याकरणादृते ॥
... तस्य तपसामुत्तमं तपः।
... बुधाः ॥
... वाचिसु गूढ़मास्ते।
... पदे कथञ्चित् स्वैरं वपुःस्वियतिवेपतेच॥

... में व्याकरण संस्कृत की छाया से बना ... यह बात तो प्रायः सभी मानते हैं कि ... की जननी संस्कृत है। तथापि केवल ... जानने वाला शुद्ध हिन्दी नहीं लिख ... क्योंकि भिन्न भाषा हो जाने से लिङ्ग वचनादि ... आदि अनेक बाधाएं ऐसी उपस्थित होती हैं ... से भिन्नता दिखाती हैं। जैसे, संस्कृत तीन हैं हिन्दी में दो ही हैं; संस्कृत में लिङ्ग तीन हैं हिन्दी में दो ही हैं; संस्कृत में धातु विना शब्द नहीं बनता परन्तु हिन्दी में सिद्ध शब्द ही के अर्थ-ज्ञान की आवश्यकता है; इत्यादि।

संस्कृत-व्याकरण ने हिन्दी में जाकर अपना स्वरूप बदल लिया है, हिन्दी के व्याकरण पर कई विद्वानों ने पुस्तकें लिखी हैं परन्तु उन सब पुस्तकों में से "भाषा-भास्कर" जिसे काशीनगर के पादरी "एथरिंगटन" (Ethrington) साहब ने बनाया है बहुत शुद्ध, सरल और विना प्रयास बोधदायक है। आज कल तो स्थिति ऐसी विचित्र देखी जाती है कि हिन्दी के अच्छे अच्छे लेखक भी हिन्दी लिखने के समय व्याकरण विचार को एक कोने में धर कर प्रमाद में पड़ जाते हैं। 'महानुभाव' शब्द का व्याकरण की रीति से बहुवचन में 'ओं' प्रत्यय लगाये जाने से "महानुभावों", होता है परन्तु बहुत लोग "महानुभाओं" ऐसा लिखते हैं। 'स्थान' का 'स्थान' 'स्वामी' का 'श्वामी' इस प्रकार से सैकड़ों अनुचित शब्द व्यवहार में आते हैं। वाक्यविन्यास में भी जो नियम व्याकरण का है उसके विरुद्ध कहीं कर्ता, कहीं कर्म, कहीं क्रिया, मनमानी रीति से धर दिये जाते हैं। संज्ञा के भेद—रूढि, यौगिक, योगरूढ़ि, जातिवाचक, व्यक्तिवाचक, गुणवाचक, और ... वाचक, सर्वनाम—जो शब्द सिद्धि के साधन हैं, इनकी ओर कोई कोई महोदय दृष्टिपात भी नहीं करते। इसी से हिन्दी का व्याकरण शुद्ध और सरल होते हुए भी संस्कृत व्याकरण की भांति उपकारी नहीं हो सकता। फिर हिन्दी व्याकरण के जानने का अभिमान करके कुछ सज्जन हिन्दी में आधे शब्द उर्दू के कर देते हैं आधे संस्कृत के, "इन्द्रहिमूल विड़ाजटीका" दो मिलाकर हिन्दी लिख,

चाउर ग्रैार दाल की खिचड़ी हो जाती है।

ऊपर यह कह आये हैं कि संस्कृत ग्रैार हिन्दी के व्याकरण में भेद है परन्तु उस भेद के होते हुए भी दोनों में समानता स्वाभाविक ही है। हिन्दी में जो सन्धि विभाग है वह प्रायः संस्कृत-सन्धियों से भिन्न नहीं हो सकता, जैसे—गङ्गोदक, स्वयम्भूदय, परमात्मा, जगन्नियन्ता, गङ्गोर्मि, हिमर्तु, महैश्वर्य्य, यद्यपि, प्रत्युपकार, अन्वय इत्यादि संस्कृत शब्द ही सन्धित होते हैं। किन्तु संस्कृत के समान धातु से शब्द-सिद्धि हिन्दी में नहीं है। हिन्दी के व्याकरणकर्त्ता ने क्रिया के मूल स्वरूप को धातु माना है, आगे उस मूलस्वरूप को किस तरह कैान से प्रत्यय आदि लगाने से कैसी स्थिति होती है यह विषय व्याकरण में ठीक दिखाया गया है। इसी प्रकार तीनों कालों के आभ्यन्तरिक भेद भी ठीक समझाये गये हैं ग्रैार वाक्य-विन्यास की प्रक्रिया भी बांधी गई है।

हिन्दी के व्याकरण के छोटे बड़े अनेक ग्रन्थ हैं पर उनमें से कोई भी सर्वोपयोगी नहीं हो सका। इसका मुख्य कारण एक यह भी है कि हिन्दी-कोश कोई उपयुक्त तैयार नहीं है। अन्यान्य भाषाओं से हिन्दी जानने को ग्रैार हिन्दी से अन्यान्य भाषाओं के जानने के लिये तो अनेक कोश हैं परन्तु स्वतन्त्र हिन्दी-बोधक कोश की न्यूनता है। एक कोश के बनने पर संस्कारपूर्वक हिन्दी का व्याकरण तैयार होना चाहिए। हिन्दी के एक उपयोगी व्याकरण बनने के लिए प्रधान उपाय कोश निर्माण है ग्रैार इस लिये उसकी ग्रोर हिन्दी-हितैषियों को ध्यान देना चाहिए; फिर संस्कृत के व्याकरण के विभागानुसार गणपाठ, धातु पाठ तैयार करना चाहिये ग्रैार कारक-विभाग करना चाहिए, क्योंकि हिन्दी के व्याकरण जानने में ये ३ बातें प्रधान हैं। धातु का ज्ञान ठीक होने पर क्रिया पद के प्रत्यय लगाने से क्रिया-पद बन सकेगा। इसी प्रकार कारक विभाग से विभक्तियों के अर्थ ध्यान में आजाने से फिर अन्यान्य विषयों की इतनी कठिनाई नहीं रहेगी। समास ग्रैार तद्धित का हिन्दी में संस्कृत के समान महत्त्व नहीं है तद्धित बिना काम नहीं चल सकता। स[illegible] संस्कृत शब्दों में ही होता है हिन्दी में नहीं मेरे कहने का तात्पर्य यही है कि जो हि[illegible] व्याकरण पूरा पढ़ सके वह प्रशंसा का पात्र है जो पूरा व्याकरण न पढ़ सके वह भी ऊप[illegible] विषयों से अभिज्ञ हो जाने पर काम चला स[illegible] समासान्त वाक्यों का अधिक मिश्रण करने से में कठिनाई अधिक हो जाती है। यद्यपि रा[illegible] परमेश्वर, महेश्वर, बात-चीत, परस्पर, [illegible] इत्यादि शब्द समासान्त ही हैं, ग्रैार ऐसे श[illegible] प्रयोग भी अवश्यमेव सदा ही करना पड़[illegible] परन्तु सन्धिमात्र के ज्ञान लेने से भी इन श[illegible] जानने में कठिनाई नहीं रहती। दो से अधिक का समास संस्कृत ही में होता है। सरल[illegible] में कठिन समासान्त शब्द जहां तक हो सके धरना चाहिये।

हिन्दी के शुभचिन्तकों से निवेदन है कि[illegible] बात का प्रयत्न करें कि व्याकरण के ज्ञान[illegible] लिखी हिन्दी पुस्तकादिकों में न छप सकें। यह भी निवेदन है कि हिन्दी की दो कक्षाएं की एक सामान्य दूसरी उच्च अथवा विशेष। सा[illegible] हिन्दी में सरकारी कचहरी कोर्ट आदिकों में वाली कार्य्यवाही सम्बन्धी काग़ज़ पत्रों का स[illegible] हो, जिसमें विशेष व्याकरण की त्रुटि आदि[illegible] ध्यान न दिया जाय। उच्च हिन्दी में व्याकरण शुद्धता अवश्य देखी जावे। इसी प्रकार हिन[illegible] समाचार पत्रों के सम्पादक यह प्रतिज्ञा करें हिन्दी के सामान्य लेख जिन में व्याकरण-सं[illegible] अशुद्धियां भरी हों न छापें अथवा सुधार कर [illegible] हां यदि कोई महत्त्व भरी बात हो तो ५ व[illegible] बालक से भी प्राप्त कर छाप दें क्योंकि 'सुतव[illegible] विशेष निःस्पृहा गुणगृह्या वचने विपश्चितः'। उक्ति के अनुसार मेरी उक्ति को भी सुत मु[illegible] निकली मान कर हिन्दी-साहित्य-सम्मिलन स्वी[illegible] करे ग्रैार मेरा उत्साह बढ़ावे।

मिश्रित ।

हिन्दी और दैनिक पत्र।

——:o:——

[लेखक—श्रीयुत अम्बिकाप्रसाद गुप्त]

—:o:—

इस समय इस शुभ अवसर पर हम आप सब जिस उद्देश्य से एकत्रित हुए हैं वह परम पुनीत और उपयोगी है। उस उद्देश्य के पूर्ण होने से न केवल सर्वगुणागरी नागरी और ... की उन्नति होगी, किन्तु साथ ही साथ समग्र ... का उद्धार होगा। आप लोग जिस उत्साह ... आवश्यक कामों को छोड़ कर, मार्ग के कष्ट ... इस स्थान पर उपस्थित हुए हैं, उसे देख कर ... होती है कि हिन्दी-साहित्य की श्रीवृद्धि ... मातृभाषा हिन्दी के अभावों की पूर्ति के ... आप लोग कुछ उठा न रक्खेंगे और अपने ... अकर्मण्य होने का अपवाद न आने देंगे। ... साधारण पुरुष होकर भी, हिन्दी का सुकवि, ... का मर्मज्ञ न होने पर भी, आज आप लोगों ... कुछ निवेदन करने के लिए उपस्थित हुआ ... धृष्टता, इस वाचालता के लिए मैं क्षमा-... हूँ। मनुष्य के मन में, चाहे वह क्षुद्र से भी ... साधारण से भी साधारण ही क्यों न हो, जो ... उठती हैं, जो विचार उत्पन्न होते हैं, वे दबाये ... दबते; अवश्य किसी न किसी रूप में प्रकट ... हैं। इस समय मुझे भी मेरी उमंगों ने ... आने के लिए उत्साहित किया है। आशा ... आप सब कृपालु सज्जन धैर्य के साथ मेरे इस ... वक्तव्य को सुनने की कृपा करेंगे।

... समय इस विषय पर कुछ कहना नहीं ... नागरी लिपि कैसी सीधी और सुबोध ... भाषा कैसी श्रवण-मनोहर या मधुर ... समय यह भी नहीं कहना चाहता कि किन किन गुणों के कारण हिन्दी राष्ट्रभाषा होगी या हिन्दी के राष्ट्रभाषा बनाने की कल्पना की गई है। आप लोगों के आगे यह भी कहना सूर्य को दीपक दिखाना है कि हिन्दी इस समय किस दशा में है—हिन्दी को किन किन लोगों ने अपनाया है या हिन्दी बोलने वाले कितने आदमी हैं। मैं इस समय केवल इस विषय पर कुछ टूटे फूटे शब्दों में कहना चाहता हूँ कि हिन्दी में दैनिक पत्र की कितनी आवश्यकता है।

राष्ट्रभाषा हिन्दी इस समय उन्नति की ओर अग्रसर हो रही है। इस समय दिन दिन हिन्दी के हितैषी, हिन्दी के लेखक, कवि और मर्मज्ञ बढ़ते जाते हैं। इस समय हिन्दी में मासिक और साप्ताहिक पत्रों की संख्या ख़ूब बढ़ रही है। हिन्दी में भिन्न भिन्न विषयों पर अच्छी अच्छी पुस्तकें भी लिखी जा रही हैं और यह कहने में भी मुझको कुछ संकोच नहीं है कि यह क्रम यदि इसी तरह जारी रहा तो हिन्दी अपनी अन्यान्य बहनों से आगे बढ़ कर स्वदेश में ही नहीं, विदेश में भी अपनी विजय वैजयन्ती गाड़ देगी। यह सब हो रहा है किन्तु एक अभाव ऐसा है जिसकी पूर्ति हुए बिना हिन्दी की पूर्ण उन्नति नहीं हो सकती। वह अभाव हिन्दी में एक भी दैनिक पत्र का न होना है।

हम लोगों के लिये, हम हिन्दी-हितैषी होने का दावा करने वाले, हिन्दी को मातृ भाषा कहने वाले लोगों के लिये कैसी लज्जा और खेद की बात है कि जो भाषा भारत भर की राष्ट्र-भाषा होने वाली है, जिस भाषा के बोलनेवालों की संख्या साढ़े बारह करोड़ से भी ऊपर है उसमें एक भी दैनिक पत्र नहीं

है। अन्य भाषाओं की ओर देखिये, उनमें एक नहीं अनेक दैनिक पत्र निकलते हैं। बँगला, मराठी, गुजराती आदि प्रान्तिक भाषाओं को देखिये, उनमें दैनिक पत्रों की कमी नहीं है। उर्दू भाषा जो इस समय हिन्दी के विरुद्ध हिन्दी का गौरव छीनने के लिये कमर कस रही है और जिसके बोलने वालों की संख्या हिन्दी भाषियों की अपेक्षा बहुत कम है उसमें तीन दैनिक पत्र निकल रहे हैं। "पैसा अख़बार" और "अख़बारे-आम" ये दो पत्र लाहौर से और "अवध अख़बार" लखनऊ से निकलता है। इन तीन के सिवा एक चौथा दैनिक उर्दू पत्र "दरबार गज़ट" कलकत्ते से निकलने वाला है। क्या यह हमारे लिये कामकलंक है कि हम चुपचाप बैठे हैं और हिन्दी दैनिकपत्र निकालने का प्रश्नही सर्व साधारण के आगे नहीं उपस्थित करते।

इस हिन्दी की उन्नति के समय से तो इस विषय में कुछ दिन पहले हिन्दी की हीनदशा ही अच्छी थी जब "राजस्थान समाचार" और "हिन्दोस्तान" नामक दो दैनिक पत्र हिन्दी में निकलते थे। राजस्थान समाचार और हिन्दोस्तान के उपरान्त "सम्राट" भी कुछ दिन निकला। किन्तु हिन्दी के दुर्भाग्य से सम्राट के सञ्चालक और सम्पादक श्रीमान् कालाकाँकर नरेश जी थोड़े ही दिन मातृभाषा की सेवा कर चल बसे। सम्राट के बंद होने के उपरान्त हिन्दी समाचार पत्रों में दैनिक पत्र के लिये कुछ आन्दोलन अवश्य हुआ, परन्तु उस आन्दोलन का कुछ भी फल न हुआ। किसी माई के लाल में इतना साहस नहीं हुआ कि वह इस सत्कार्य्य में अग्रसर हो कर धन्य होता।

इसका क्या कारण है? इस उदासीनता का क्या हेतु है? क्या "श्री वेंङ्कटेश्वर समाचार" या "हिन्दी बङ्गवासी" ऐसे विशाल कलेवर और बद्धमूल पत्रों के मालिक अपने पत्रों को दैनिक नहीं कर सकते? उनको किस बात की कमी है? प्रेस उनका निज का है? मूल धन की भी उनके पास कुछ कमी नहीं है। फिर क्यों वे अपने दैनिक नहीं कर देते।

जहाँ तक मैं समझता हूँ उक्त पत्रों के अगर अपने पत्रों को दैनिक कर दें तो उन्हे नहीं उठाना पड़ेगा और अगर पहले घाटा भी पड़े तो आगे चल कर उसकी पूर्त्ति हो ज लोगों में दैनिक पत्र पढ़ने का शौक़ पैदा क आवश्यकता है। अभी तक हमारे सर्व सा हिन्दी-भाषा-भाषी भाइयों में बहुत से लोग हैं जो यह नहीं जानते कि दैनिक पत्र किसको हैं। किन्तु उनको जब यह बतला दिया जाय दैनिक पत्र पढ़ने से बुद्धि बढ़ती है, नित्य नये ताज़े समाचार पढ़ने को मिलते हैं, नित्य अपने की दशा का ज्ञान प्राप्त होता रहता है, ढ पुस्तकों के पढ़ने से जितना ज्ञान नहीं प्राप्त उतना ज्ञान दैनिक पत्र नित्य पढ़ने से होता है वे अवश्य शौक़ से, उत्साह के साथ ग्राहक और दैनिक पत्र पढ़ेंगे।

यूरोप के देशों की बात जाने दीजिये, छो जापान को देखिये। जापान, कुछ दिन पहले अ कहा जाने वाला जापान, इस समय शिक्षा प्र में कितना अग्रसर हो रहा है? वहाँ कोई ऐसा गाँव नहीं है जहाँ से दो चार एक दो दैनिक प निकलते हों। पढ़नेवालों की भी इस समय कमी नहीं है। कोई भी ऐसा पढ़ा लिखा म नहीं है जो नित्य दैनिक पत्र न पढ़ता हो। नाई, च चमार, धोबी, साईस तक दैनिक पत्र पढ़ते और विदेश की ख़बरें पढ़ कर, बातें देख कर, दि लाभ करते हैं। उनको दैनिक पत्र पढ़ने का सा हो गया है, विना दैनिक पत्र पढ़े भोजन पचता, नींद नहीं आती। क्या हम अपने उन भा को, जो आज अनभिज्ञ होने के कारण दैनिक का नाम तक नहीं जानते, ऐसा पठन-प्रेमी बना सकते? अवश्य बना सकते हैं, किन्तु कुछ स्वार्थ त्याग करना होगा।

...िंगटन विश्वविद्यालय के एक ऐति-
...ने किसी विशेष विषय को एक
...त्रों के आगे उपस्थित किया और उसके
उनकी सम्मति जानने के लिये वे स्वयं
...लगे। केवल पुस्तक से ही शिक्षा-
वाले बिचारे विद्यार्थी उसके सम्बन्ध
...न कह सके। जाँच करने पर अध्यापक
...जाना कि विद्यार्थियों में से एक भी
...को नहीं पढ़ता। इस पर असन्तुष्ट
...ापक महाशय ने एक ख़ासा लेक्चर
...र कहा कि—"जो दैनिक समाचार पत्र
... जीवन्मृत है, उसकी बुद्धि कभी
...ीं होती, और उसके मनोरथ अवश्य
..."। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अध्या-
...य का कथन बहुत ही ठीक है। जिस
...ें भी दैनिक पत्र नहीं है उस भाषा की
...कभी नहीं हो सकती और जो लोग
...के दैनिक पत्रों को नहीं पढ़ते वे बड़ी
...ते हैं। दैनिक पत्रों की उपयोगिता और
...के बारे में बहुत कुछ लिखा जा सकता
...ें न इतनी योग्यता है और न यहाँ
...है। इसके अतिरिक्त यह बात भी नहीं
लोगों से दैनिक पत्रों की उपयोगिता या
...छिपी हुई हो।

...देकर कहता हूँ कि हमारे हिन्दू नाम-
...भाषाभाषी भाइयों में ऐसे आदमियों
...ीं है जो वर्षों घाटा उठा कर भी एक
...र दैनिक पत्र निकाल सकते हों। कई
...यों के पत्र हमारे हिन्दी भाषाभाषी
...े मूल धन से चल रहे हैं। पर न जाने
...तृ-भाषा की ओर ध्यान क्यों नहीं देते?
पत्र निकाल कर हिन्दीसाहित्य के अभाव
...नहीं करते?

...हमारे सर्व साधारण हिन्दी भाषाभाषी
नहीं हैं। वे भारी २ दाम के अंगरेज़ी
...२ दैनिक पत्र तो मँगा कर पढ़ते हैं
...के साप्ताहिक पत्रों को भी ख़रीद कर
पढ़ना नहीं चाहते। यदि वे भूतपूर्व हिन्दी दैनिक पत्रों को यथेष्ट सहायता पहुँचाते तो आज हिन्दी में दैनिक पत्रों का अभाव न होता। "राजस्थान-समाचार" बंद न होता, स्वामी के परलोक वास होने पर भी 'हिन्दोस्तान' या 'सम्राट' का बंद होना असम्भव था। ग्राहकों के अभाव से हताश होकर ही इस समय समर्थ पत्र-सञ्चालक भी दैनिक निकालने का साहस नहीं कर सकते।

प्यारे हिन्दी पत्र पाठको और हिन्दी हितैषियो! क्या सचमुच तुम्हारा यह उत्साह केवल दिखाने भर का है? क्या वास्तव में तुम हिन्दी के सच्चे हितैषी नहीं हो? क्या तुम अपनी कमाई में से हिन्दी-साहित्य की वृद्धि के लिये, उसके एक भारी अभाव की पूर्ति के लिये, अपनी ज्ञान-वृद्धि के लिये दस रुपया साल या एक रुपया महीना नहीं ख़र्च सकते? क्या तुम अन्यान्य कामों में सैकड़ों रुपया ख़र्च करने पर भी अपनी मातृ-भाषा के लिये कुछ रुपया नहीं दे सकते? यदि मुख से बड़ी २ बातें करने के सिवा हिन्दी की भलाई, हिन्दी की उन्नति के लिये काम कुछ नहीं कर सकते तो जाओ अपना २ काम देखो, हिन्दी का अधःपात होने दो, इस थोथे आडम्बर की कोई आवश्यकता नहीं है। और यदि तुम मातृ-भाषा हिन्दी के हित के लिये सचमुच कमर कसे हुए हो, तन मन धन अर्पण कर चुके हो, तो आओ हिन्दी में दैनिक पत्र के निकालने में सहायता करो।

मैं, एक साधारण पुरुष, काशी से निकलने वाले मासिक पत्र 'इन्दु' को दैनिक बनाने के लिये तैयार हूँ। यदि आप लोग हस्ताक्षर दें, ग्राहक बन कर, लेख भेजकर, सम्मतियाँ देकर, सहायता पहुँचा कर सहारा दें तो आज मैं दैनिक पत्र निकालने के लिये तैयार हूँ। मेरे पास यथेष्ट धन नहीं है, और मेरे समान सामान्य मनुष्य इतने बड़े काम को अकेले कर भी नहीं सकता, इसलिये मैं आप की सहायता का सहारा चाहता हूँ। क्या आप इस लोकोपयोगी कार्य में सहायता नहीं करेंगे? मुझे पूर्ण आशा है कि अवश्य करेंगे।

मुझे इस विषय में और कुछ नहीं कहना है। अतएव आप लोगों से इतना निवेदन करता हुआ अपने वक्तव्य को समाप्त करता हूँ।

हिन्दी में राष्ट्रभाषा होने की योग्यता।

—:o:—

[लेखक—श्रीयुत कृष्णचैतन्य गोस्वामी]

—:o:—

प्रत्येक मनुष्य को अपना हार्दिक भाव प्रकाशित करने के लिए प्रधान साधन भाषा है। विना भाषा की ओर विशेष दृष्टि दिये हुए देशोन्नति होना दुःसाध्य है। यों तो हमारे देश के सभी प्रान्तों में कोई न कोई (आर्य्य वा अनार्य्य) भाषा प्रचलित ही है, जिसके द्वारा वहाँ के निवासी आपस में अपना मनोभाव प्रकाशित किया करते हैं, किन्तु सब प्रान्तों की भाषाएं एक दूसरे से विभिन्न हैं। अतः एक प्रान्त की भाषा जानने वाला अन्य प्रान्तीय मनुष्यों से सरलतापूर्वक वार्त्तालाप भी नहीं कर सकता। चाहे हमारी घनिष्ठता किसी के साथ चरम सीमा पर भी क्यों न पहुँची हो, तोभी जब तक हम अपने नवीन नवीन अभिप्राय भाषण द्वारा बराबर उसे न समझाते रहें, तब तक घनिष्ठता ज्यों की त्यों कभी रह ही नहीं सकती और अभाषण के प्रभाव से हम लोग मिल कर किसी काम को भी पूरा नहीं कर सकते। इन सब कारणों को देख कर एक 'राष्ट्र-भाषा' निर्धारित करने की विशेष आवश्यकता उपस्थित हुई है, जिस के द्वारा प्रत्येक प्रान्त के निवासी अन्य प्रान्तों के निवासियों से सरलता-पूर्वक भाषण करके अपने मनोगत भावों को प्रकट कर सकें और अपना दुख सुख दूसरों को समझा सकें। एक भाषा के ही अभाव से हम लोग एक देशवासी होकर भी भिन्न भिन्न गिने जा रहे हैं। यह भिन्नता दूर होनी कितनी आवश्यक है, इस बात पर कुछ कहने की आवश्यकता नहीं।

अब प्रश्न यह है कि भारत में प्रचलित कौ "राष्ट्र-भाषा" की पदवी पा सकती है। विच केवल "हिन्दी", ऐसा इस प्रश्न का उत्तर होगा। अँगरेज़ी, बङ्गला, उर्दू, मराठी, गुजराती, तैलङ्गी, फ़ारसी अरबी आदि भाषाएँ कदापि का पद नहीं पा सकतीं। कारण क्रमशः यों

(१) संस्कृत यद्यपि प्राचीन भाषा है औ काल में यही राष्ट्र-भाषा थी, किन्तु अब पुनः रा का पद संस्कृत नहीं पा सकती ; कारण ये हैं (१) संस्कृत का अभ्यास करना परिश्रम साध्य का (२) थोड़े परिश्रम से इसमें योग्यता कभी प्रा ही नहीं सकती इत्यादि।

(२) अँग्रेज़ी—प्रथम तो यह विदेश की है इससे इसके समझने वाले बहुत ही कम हैं। व्यय के कारण से हमारे असंख्य ग़रीब भारतीय उसके अध्ययन करने में असमर्थ हैं। इसलिये राष्ट्रभाषा बनाने का विचार विडम्बना मात्र है।

(३) बङ्गला—में बहुत प्रादेशिक भेद पाये हैं। पूर्व और पश्चिम बङ्गाल की बङ्गला में तो है ही, यहाँ तक कि कलकत्ते की वर्त्तमान बङ्ग और हुगली और वर्द्धमान की बङ्गला में ब अन्तर है। क्रमशः मानभूमि और पूर्वाञ्च बङ्गाल की बङ्गला में और भी अधिक भेद है। इस अतिरिक्त बङ्गला के नामोच्चारण मात्र ही से प्रान्ति गन्ध आती है और किसी भी केवल प्रान्तिक भा को 'राष्ट्र-भाषा' बनाने का विचार कदापि प्रशंसनीय होगा।

—यदि फ़ारसी लिपि छोड़ दी जाय तो
छ हिन्दी के रूप में ही कही जा सकती
सके यह नहीं कहा जा सकता कि "उर्दू
नान ही है या उर्दू राष्ट्रभाषा हो सकती
; उसमें भी बहुत से कठिन कठिन अरबी
। के शब्दों का प्रयोग किया जाता है, जो
दापि नहीं समझे जा सकते। इसके अति-
रण में भी झंझट उपस्थित होगा।

मराठी आदि भाषायें बहुलता के अनुसार
, और भारतवर्ष भर में व्यापक भी नहीं
उनकी ओर भी ध्यान नहीं दिया जा

न सब कारणों को देखकर कोई भी सहृ-
न मनुष्य निष्पक्ष भाव से यह कहने
न मोड़ेगा कि "देव नागरी भारतवर्ष
लिपि" होने की योग्यता रखती है अथवा
भारतवर्ष की राष्ट्र भाषा होने की योग्यता
देश का नाम "हिन्दू", जहां के निवासियों
"हिन्दू" हैं, वहां की "राष्ट्रभाषा" हिन्दी
न्य है। हिन्दी में राष्ट्र-भाषा की योग्यता
। को न केवल हिन्दू ही कहते हैं किन्तु
भाषी जन भी अब हिन्दी का महत्त्व
र हैं और मुक्त कण्ठ से हिन्दी का गुण
रहे हैं। बंगाल का एक-लिपि-विस्तार
आय की हिन्दू-सभा, महाराष्ट्र का साहित्य
आदि भी हिन्दी में अपना अनुराग दिखाकर
चित्त इस ओर आकर्षित कर रहे हैं।
ो हिन्दी की सरसता, मनोज्ञता, सुगमता,
ण में यथातथ्य मिलान, स्वरादि का वैज्ञा-
ग, सर्वथा प्रशंसनीय और अनुपमेय हैं।
तीय "राष्ट्र-भाषा" के स्थान को यदि कोई
ाभित कर सकती है तो वह हिन्दी ही है।
तक भारतवर्ष में 'हिन्दी' का प्रचार भी
के समान होता आया है। जब महाराष्ट्र-
र्यशिरोमणि महाराज शिवाजी भोंसले ने
ा में अपनी विजयपताका उड़ा रक्खी
थी और अपनी विजयध्वनि से संसार को कँपा
रक्खा था उस समय भी हिन्दी सोई नहीं थी।
महात्मा तुलसीदासजी ने रामचरित-मानस
रूपी प्रेमनीर से भारतवासियों का अभिषेक कर
दिया था, और भूषण, गोविन्द प्रमुख कवियों की
वीररस से सनी हिन्दी वाणी ने ही शिवाजी के
हृदय में वीररस का विद्युत्प्रवाह कर दिया था
जिस के कारण से उनका नाम भारतवर्ष में अजर
अमर हो गया। मुसलमानी राजत्व काल में भी
हिन्दी का ह्रास नहीं था। तात्पर्य यह है कि हिन्दी
यहां की बहुत प्राचीन भाषा है और इसका प्रभाव
सर्वदा रहा है। उस प्राचीन व्यापक अद्वितीय मातृ-
भाषा को छोड़ कर अन्य भाषा "राष्ट्रभाषा" की उपाधि
प्राप्त करे, क्या यह कभी उचित होगा?

भारत के सब प्रान्तों में (कहीं कुछ कम कहीं
ज़्यादा) हिन्दी व्याप्त है। इतनी व्यापकता भारतीय
अन्य किसी भाषा में नहीं पाई जाती। थोड़े ही परि-
श्रम से हिन्दी में योग्यता प्राप्त हो सकती है, और
हिन्दी काम काज के लायक़ अधिकांश भारतवासी
जानते भी हैं। जहां जहां हिन्दी का प्रचार नहीं है
वहां स्वल्पश्रम और व्यय से प्रचार हो सकता है।
गद्य पद्य सभी विषय हिन्दी में मनोहरता से कहे जा
सकते हैं। सब रसों का प्रत्यक्ष चित्र खींचने
के लिये हिन्दी में विपुल शब्द विद्यमान हैं।
सब भाषाओं की बातें हिन्दी में सरलता-
पूर्वक अनुवादित हो सकती हैं। और उनके
अर्थबोध में कदापि अड़चन नहीं हो सकती।
हिन्दी सर्वदा से हिन्दुस्तान की भाषा है, इस में
कभी प्रान्तीयता की दुर्गन्धि नहीं आई।
प्रत्यक्ष में हिन्दी कहने से सम्पूर्ण हिन्दुस्तान की
भाषा का ही बोध हृदय-पटल पर अनायास अङ्कित
हो जाता है। ये सब गुण हिन्दी में होने पर भी
कुछ सज्जन कहते हैं कि हिन्दी राष्ट्रभाषा इस
कारण से नहीं हो सकती कि उसमें साहित्य का अभाव
है। जैसा बंगला में साहित्य है, गुजराती, मराठी
आदि में साहित्य हो चला है, वैसा हिन्दी में साहित्य

कहाँ है? उन लोगों के प्रत्युत्तर में मेरी यह प्रार्थना है कि प्रथम तो साहित्याभाव का दोष हिन्दी पर दियाही नहीं जा सकता क्योंकि हिन्दी-साहित्य के मुख्य अङ्गों में पूर्ण है। हां! दो एक आधुनिक विषयों में अवश्यही हिन्दी साहित्य कुछ पीछे है किन्तु जैसे मराठी आदि में साहित्य बढ़ चला है उसी प्रकार क्या हिन्दी में नहीं बढ़ सकता? अवश्यही बढ़ सकता है। वरन् यह कहना अनुचित न होगा कि बढ़ चला है। काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा ने कोष और व्याकरण रचना का भार उठाही लिया है जो शीघ्र पूर्ण हो जायगा, और अवश्यही उत्तम होगा। इसी प्रकार जब हिन्दी "राष्ट्र-भाषा" रूप में स्वीकृत हो जायगी तब साहित्य के किसी अंग का भंग रहना कदापि संभव नहीं! जैसेही पांच चार सुलेखक महोदय लेखनी उठावेंगे, वैसेही तुरन्त उन अवशिष्टांशों की पूर्त्ति हो जायगी। वर्त्तमान समय में जो थोड़ी सी कमी है, उसे देख कर 'हिन्दी' को "राष्ट्र-भाषा" होने के अयोग्य सिद्ध करना ठीक नहीं। क्या "एकोहि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः" के समान एक दोष गुणस अभी छिप नहीं सकता? विशेष कर उस में जब कि थोड़ेही काल में वह दोष भी मि वाला हो? बहुतेरे सुलेखकों की दृष्टि इ आकर्षित हो चुकी है। जिसका फल अत्यन्त योगी हो चला है।

निःसन्देह विना विलम्ब हिन्दी का यह दूर होगा। इस अवस्था में उक्त सज्जनों के दोष में कदापि सार नहीं है।

वङ्गदेश के पूर्वाञ्चल से सिन्ध, राजपू मध्यप्रदेश, युक्तप्रदेश, बम्बई, गुजरात, मह इत्यादि सभी देशों में हिन्दी का प्रचार ध्या मात्र ही से हो सकता है और थोड़े ही दिनों में भ वर्ष के कोने २ में हिन्दी सूर्य्य के प्रकाश के समान सकती है। इतनी शीघ्रता से भारत की अन्य भाषा सार्वभौमिक नहीं हो सकती। इन बाते यह स्पष्ट है कि केवल हिन्दी में राष्ट्रभाषा होने योग्यता विद्यमान है और अन्य भाषाओं में योग्यता का अभाव है।

स्त्री-समाज और हिन्दी-साहित्य।

——:०:——

[लेखिका—श्रीमती सावित्री देवी]

—:०:—

आज कल भारत में एक नई ज्योति का आविर्भाव हो रहा है, आज प्रत्येक हिन्दी प्रेमी सम्मेलन के आनन्द में मग्न है, प्रत्येक हिन्दी प्रेमी-अपनी प्यारी मातृ-भाषा हिन्दी को उच्चासन पर आरूढ़ करना चाहता है। क विद्वान् की हार्दिक इच्छा यही है कि हिन्दी-हत्य का प्रचार बढ़े और नागरी ही भारत की लिपि और हिन्दी ही एक-भाषा हो। देश के बड़े प्रसिद्ध विद्वानों का मत है कि यदि भारत की भाषा कोई हो सकती है तो केवल हिन्दी ही। कल इस विषय का आन्दोलन प्रायः सर्वत्र हुआ है और यह सबही जानते हैं कि हर एक की राष्ट्र भाषा वही हो सकती है जिस भाषा उस देश में प्रचार अधिक हो। यह देख हर्ष है कि भारत की इस अवनति दशा में भी अपने अनेक उत्तम गुणों के कारण प्रति दिन ती आ रही है। अब देश के सब विद्वानों तथा प्रेमियों का कर्त्तव्य हिन्दीसाहित्य की वृद्धि है। सब ओर हिन्दी को उभड़ते देख खेद अपनी ललनाओं की गिरी दशा पर होता है बिलकुल अंधेरे में पड़ी, अपने भाग्य को टटोल है। भारत ललनाएँ इन दिनों ऐसी मूर्खता में हैं कि उनको किसी प्रकार की उन्नति से कुछ नहीं रहता और न वे किसी प्रकार की हानि को कुछ जानती ही हैं। जब हमको किसी तरह से उठने का सहारा नहीं दिया जाता है न हम में विद्या की रोशनी ही पहुँचाई जाती है तब ऐसा होना कौन अचरज है।

संसार के समस्त सभ्य देशों में स्त्री और पुरुष दोनों के मिल कर काम करने से ही आज वे देश प्रचण्ड सूर्य के प्रताप की तरह चमक रहे हैं। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हमारे देश के बगल में जापान का है जहाँ केवल स्त्रियों ही के कारण आज दिन इतनी उन्नति हुई तथा हो रही है। जापान में स्त्री जाति स्वयं अपने मान की आप रक्षा करती हैं और उनका ध्यान सर्वदा अपने गौरव को क़ायम रखने पर रहता है। यही सब कारण है जिससे प्रत्येक समाज उन्नति को पहुँच सकता है, परन्तु यहाँ उसके विपरीत ही है। यह किसी से छिपा नहीं है कि वर्त्तमान समय में हिन्दीसाहित्य में कितनी त्रुटि है और हिन्दी-भाषा के प्रचार का कितना अभाव है। भारत-माता के कुछ सपूतों के ध्यान देने ही से अब इस अभाव में कदाचित् कुछ कमी हो परन्तु स्मरण रहे कि जब तक स्त्री और पुरुष दोनों मिल कर इस आन्दोलन में भाग न लेंगे तब तक भारत में एक-लिपि वा एक-भाषा के प्रचार करने में कुछ न कुछ अड़चन पड़ी ही रहेगी। प्यारी भारत-ललनाओ, अब तो आँखें खोलो और देखो तुम किस ओर जा रही हो। अपने को सीधे रास्ते पर ले आओ नहीं तो पग पग पर तुम ठोकर खाओगी।

देखो ! तुम्हारी मातृ-भूमि तथा मातृभाषा की क्या दशा है । तुम्हारे बेख़बर सोने से वे कैसी अधीर हो विलाप कर रही हैं । उठो ! अब देर मत करो । आज इस सम्मेलन में सब मिल कर अपनी प्यारी माता से क्षमा मांगो और आज ही से हिन्दी-साहित्य के प्रचार में कटिबद्ध हो जाओ ।

प्रत्येक पढ़ी लिखी स्त्री जानती है और भविष्य में जितनी पढ़ी लिखी होंगी वे भी जानेंगी कि पूर्व समय की ललनायें अपने देश तथा भाषा के लिये क्या नहीं करती थीं ।

अब मुझे सम्मेलन तथा अपने उन देश भाइयों से कुछ प्रार्थना करनी है जो कि देश में सुधार का बीज बो रहे हैं । प्यारे भाइयो ! सम्मेलन के संचालको, आप सब लोगों को ध्यान रखना चाहिये कि जब तक आप लोग दोनों अंग से देश के प्रत्येक कामों में भाग न लेंगे तब तक किसी प्रकार भी भलाई होना सम्भव नहीं; क्योंकि आप सब लोगों को भली भांति विदित होगा कि प्रत्येक सभ्य देश में देश के हर एक कामों में स्त्रियों को अवश्य भाग दिया जाता है । यहां की ललनायें स्वयं तो कुछ न समझेंगी; अब आप ही लोगों का कर्त्तव्य है कि स्त्री-समाज के बीच हिन्दीसाहित्य का प्रचार करें । जब तक भारत-ललनाओं के हृदय-मन्दिर में हिन्दी-साहित्य के प्रेम का बीज न बोया जायगा तब तक भारत में आधा ही नहीं वरन् यों कहना चाहिये कि चौथाई हिस्सा ही साहित्य का प्रचार होगा क्योंकि गवर्नमेंट की मर्दुमशुमारी से स्त्रियों की संख्या पुरुषों से अधिक प्रतीत होती है । यदि यह बात सत्य है तो स्वयं ही समझ में आ जाता है कि इने गिने भारत-भाइयों के किये कुछ न होगा । साथ हम ललनाओं को भी इस ओर अवश्य ध्यान [illegible] चाहिये ।

अब सम्मेलन के संचालकों से मेरी एक अति प्रार्थना और भी है कि इस हिन्दीसाहित्य सम्मे[illegible] का उद्देश अन्य कान्फ़रेंसों के समान दो तीन [illegible] जलसा कर उनमें अच्छे अच्छे लेक्चरों का कर[illegible] ही न रक्खें, वरन इसके द्वारा अपने कर्त्तव्य [illegible] यथार्थ पालन करें । इसके बीज को सर्वत्र फैला[illegible] इसके क्षेत्र को विस्तृत करना, हिन्दी [illegible] को [illegible] सबों के हृदय में फैलाना इस सम्मेलन का मु[illegible] धर्म होना चाहिये । लोगों में जितना इसका प्रच[illegible] बढ़ेगा तथा इसका प्रभाव लोगों के हृदय में प्र[illegible] लित होगा और जितने ही इसके अनुयायी बढ़[illegible] उतना ही शीघ्र यह क्षेत्र हरा भरा होकर लहलह[illegible] लगेगा । यदि आप लोग हिन्दी-भाषा की वृ[illegible] चाहते हैं, यदि भारतीय हिन्दी-प्रेमियों को पूर्ण री[illegible] से हिन्दीसाहित्य के प्रेम-पाश में बांधना चाहते [illegible] तो स्त्रियों को अवश्य इस महा यज्ञ में भाग दे[illegible] चाहिये क्योंकि जब तक इसका प्रेम बहुत लोगों [illegible] न फैलेगा तब तक इसके प्रचार में अवश्य ही कुछ [illegible] कुछ विघ्न बना ही रहेगा । स्त्री-समाज के बीच इस[illegible] बीज को बोने ही से हिन्दी-भाषा अपने भारती[illegible] स्वरूप में रह सकती है और स्त्रियों के द्वारा हिन्दी का प्रचार भारत भर में होगा । यदि इसके विपरीत सम्मेलन इस छोटे से लेख पर ध्यान न देगा तो स्त्री जाति पर बड़ा ही अन्याय होगा । अन्त में मैं सब विद्वानों से अपने इस तुच्छ लेख के भेंट करने की ढिठाई के लिये क्षमा मांग अपने कथन को समाप्त करती हूँ ।